श्रमणत्व के क्षितिज

प्रथमाचार्य चारित्र चक्रवर्ती

श्री शांतिसागर जी महाराज

सौजन्य –

1. सौ.लीला देवी– पारसमल पाटनी, मनोज, विकास, अंशुल व रिशांत पाटनी परिवार इचलकरणजी महाराष्ट्र।
2. स्व. बालचंद जी के सुपुत्र प्रदीप कुमार पौत्र नमन कुमार काला रेण मेड़ता सिटी हावड़ा।

प्रकाशक / लेखक की अनुमति के बिना इस पुस्तक को या इसके किसी अंश को संक्षिप्त, परिवर्धित कर प्रकाशित करना या फ़िल्म आदि बनाना कानूनी अपराध है।

श्रमणत्व के क्षितिज

प्रथमाचार्य चारित्र चक्रवर्ती

श्री शांतिसागर जी महाराज

लेखक

ब्र. सुनील जैन सांधेलिया

भारतीय ज्ञानपीठ

ISBN 978-93-94212-63-3

श्रमणत्व के क्षितिज

(जीवन वृत्त)

ब्र. सुनील जैन सांधेलिया

प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ

18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-110 003

© आचार्य शांतिसागर फांउडेशन

SHRAMANATVA KE KSHITIJ
(Jeevan Vrit)
by Br. Suneel Jain Sandheliya

Published by
Bharatiya Jnanpith
18, Institutional Area, Lodi Road, New Delhi-110003
Ph.: 011-24626467; 41523423 Mob.: 9350536020, 9810015517
e-mail: sales@jnanpith.net, gmbharatiyajnanpith@gmail.com
website: www.jnanpith.net

Second Edition : 2025
Price : Rs. 320

—: परमआराध्य योगी :—

२० वीं शताब्दी के महाश्रमण, योगीन्द्र-चूड़ामणि, आत्मविद्या के महाज्ञानी, परमतपस्वी, जीवन्तसमयसार, रत्नत्रय त्रिवेणी के प्रयागराज, आध्यात्मिक ज्योतिर्धर, तपः तेज से सूर्यवत् तेजस्वी, प्रशमगुण के महाधिक्य से चन्द्रसम शीतलता प्रदायी, मेरुवत् अचल उन्नत चारित्र के धारयिता, जिनधर्मशासन प्रभावना के सम्यक् दीपक, धृतिकम्बल या धैर्यकवच के धारी, अखण्डस्वाध्यायी, सहस्रों तपों के तपयिता, पूर्वाचार्यों की श्रुतबगिया के माली, षडावश्यक के निरालस पालयिता, पंचपरमेष्ठी वाचक णमोकार मंत्र के आत्मचिन्तन के साथ करोड़ों जाप्याकर्ता, भगवान ऋषभदेव से भगवान महावीर पर्यन्त वर्तमानकालिक चतुर्विंशति तीर्थंकरों द्वारा धारित- प्रतिपादित अनादि-निधन जैन संस्कृति की प्राणपण से रक्षा करनेवाले, अनासक्ति के सर्वोच्च शिखर, श्रमणों के परम आराध्य क्षमाशील, निरभिमानी बीसवीं सदी के प्रथम दिगम्बराचार्य चारित्रचक्रवर्ती

"श्रमणराज"

'श्री शान्तिसागरजी महाराज' के जन्म से लेकर सल्लेखना पूर्वक समाधि मरण तक उनके द्वारा जैन श्रमण संस्कृति के महान् उपकारों प्रकटित करने वाले अनेक छोटे व बड़े ग्रन्थों को आधार बनाकर औपन्यासिक विधा से अपनी लेखनी और चिन्तन बल से यह "श्रमणत्व के क्षितिज" उपन्यास श्री ब्र. सुनीलजी सांधेलिय ने बड़े श्रम पूर्वक लिखा है जिसे पढ़कर 'चारित्र-चक्रवर्ती' के चरित्र एवं कार्यों जिज्ञासु जन अपनी जिज्ञासा को सन्तुष्टी पूर्वक शान्त कर सकेगें ऐसी हमारी भावना है। गुरुभक्ति स्वरुप लिखे गये ग्रन्थ के लिए सांधेलिय जी को हमारे अनेकशः मंगल आशीर्वाद।

आ. वर्धमानसा.

सत्यमेव जयते

अध्यक्ष, लोक सभा
SPEAKER, LOK SABHA
INDIA

संदेश

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई है कि आचार्य शांतिसागर फाउंडेशन द्वारा 20वीं शताब्दी के महानतम जैन आचार्य पूज्य श्री शांतिसागर महाराज जी के आचार्यत्व के 100 वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य में "आचार्य पद प्रतिष्ठापना शताब्दी समारोह" का आयोजन किया जा रहा है और इस पावन अवसर पर उनके विराट व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर औपन्यासिक शैली में लिखित जीवनी को प्रकाशित किया जा रहा है।

महापुरुषों की जीवनी उनके अनुयायियों के लिए प्रकाश पुंज की तरह होती है, जो उन्हें गहनतम अंधकार से निकाल कर प्रकाश की ओर ले जाती है। आचार्य श्री शांतिसागर जी ऐसी ही एक दिव्य आत्मा थे जिन्होंने अपना संपूर्ण जीवन धर्म, समाज, संस्कृति और राष्ट्र के उन्नयन के लिए समर्पित किया था। समाज में व्याप्त कुरीतियों और अंधविश्वास को दूर करने में वे सदैव सचेत रहे। उनका महान व्यक्तित्व एवं कृतित्व पीढ़ियों को प्रेरित करता आया है और करता रहेगा। मुझे खुशी है कि वरिष्ठ साहित्यकार श्री सुनील सांधेलिया जी ने उनकी जीवनी को कलमबद्ध करने का सराहनीय कार्य किया है।

मैं आचार्य श्री शांतिसागर जी का आचार्यपद प्रतिष्ठापना शताब्दी समारोह (अक्तूबर 2024 से अक्तूबर 2025) के सफल आयोजन की कामना करता हूं। इस पुनीत अवसर पर प्रकाशित होने वाली आचार्य श्री शांति सागर जी की जीवनी के सफल प्रकाशन की कामना करता हूं।

शुभकामनाओं सहित।

(ओम बिरला)

प्रस्तावना

बीसवीं शताब्दी के महान ऋषि चारित्र-चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी में श्रमण-साधना एवं मानवीय संवेदनाओं का अलौकिक संगम था। यद्यपि आचार्यश्री के जीवन-दर्शन पर विपुल साहित्य उपलब्ध है तथापि भारतीय साहित्य जगत के सशक्त हस्ताक्षर ब्र. सुनील भैया जी द्वारा आपकी जीवन-गाथा को औपन्यासिक शैली में धाराप्रवाह रूप से प्रस्तुत करना श्रमण एवं सहित्य जगत के लिए बहुत बड़ी उपलब्धि है।

आचार्य शांतिसागरजी के बचपन का नाम सातगौड़ा था। नाम के अनुरूप आप बड़े शांत स्वाभावी एवं गंभीर थे। आपने कुछ वर्षों तक लौकिक शिक्षा ग्रहण की किन्तु अत्यंत मेधावी होने पर भी अपने छोटे भाई कुंभगौड़ा की देखरेख हेतु स्कूली शिक्षा को अलविदा कह दिया। आपकी वय जैसे-जैसे बढ़ती रही, नए-नए साहसिक कार्य आपकी दिनचर्या के अंग बनते गए। एक बार आपने उफान मारती वेदगंगा एवं दूधगंगा के संगम पर तैराकी कर प्रशिक्षित तैराकों को भी विस्मित कर दिया था। आप निशानेबाजी में भी अत्यंत दक्ष थे किन्तु आपने एक विशिष्ट अवसर पर एक बार मात्र ही बंदूक का प्रयोग किया फिर यावत् जीवन के लिए उससे विरक्त हो गए।

आप पारिवारिक संबंधों के प्रति तो संवेदनशील थे ही, आप मित्रों के मित्र भी थे। आपने गैर-धर्मी रुद्रप्पा के साथ ऐसी गहरी मित्रता निभाई कि वह इतिहास के पन्नों पर अमर हो गई। आप युवावस्था से ही सामाजिक कुरीतियों के प्रबल विरोधी रहे हैं। हरिजनों को जब सवर्णों के कुआं पर पानी पीने का निषेध था, तब सामाजिक-विरोध की अवहेलना करते हुए आपने हरिजनों को अपने कुआं पर पानी पिलाकर उन्हें मुख्य धारा में जोड़ने का महान कार्य किया। साधु बनने के उपरांत आपकी प्रेरणा से दक्षिण-भारत

में बाल विवाह जैसी कुत्सित परंपरा पर अंकुश लगा। आप यावत्-जीवन साम्प्रदायिक सौहार्द के संवाहक रहे फलत: अनेकानेक अन्य-धर्मियों को भी आपकी निकटता का लाभ मिलता रहा।

आपने श्रवण कुमार की भाँति अपने माता-पिता की प्राणपन से सेवा की तो श्रीराम की भाँति मर्यादाओं के उच्चतम मानदंड स्थापित किये। एक ओर आपने बालपन से ही साधुओं के प्रति अतिशय भक्ति प्रदर्शित की तो दूसरी ओर स्वयं साधु बनकर श्रमण परंपरा को चिरस्थायी बना दिया।

आपके जीवन मार्ग में पग-पग पर घनघोर संकट आते रहे किन्तु आपके मनोबल के समक्ष वे सदैव बौने ही रहे। आपने अपने साधुकाल में उत्साह पूर्वक हजारों निर्जल उपवास किए, हजारों किलोमीटर की पद-यात्राएँ की और हजारों पद-दलितों का उत्थान किया किन्तु पद प्रतिष्ठा की कामना में सदैव अनुत्साहित रहे। जीवन के समापन सत्र में अंतत: आप साधक-अवस्था के सर्वोच्च सोपान रूप समाधि स्थान को प्राप्त हुए।

इस तरह आचार्य श्री शांतिसागर महाराज के ऊपर इस जीवन वृत्त को भैया जी ने विशिष्ट शैली में लिखकर जीवन्तता प्रदान कर दी है। जिससे यह ग्रंथ सुबोध एवं रुचि पूर्ण बन गया है। आदरणीय भैया जी की मुनि भक्ति एवं चहुँमुखी ज्ञान की द्योतक यह कृति अवश्य ही साधकों एवं पाठकों के ह्रदय को स्पंदित करेगी। आदरणीय बाल ब्रह्मचारी सुनील भैया जी के लिए नमन पूर्वक बहुत शुभकामनाएँ।

प्रदीप जैन "विश्व परिवार"
सदस्य-13th प्रेस काउंसिल ऑफ इंडिया, रायपुर

लेखक की कलम से

जिनके चित्र का अवलोकन मात्र ही साधु-पुरुषों के चित्त और चरित्र को पवित्रता से सराबोर कर देता है ऐसे युगपुरुष बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्र चक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महामुनिराज इस युग की अनमोल देन हैं। आप बीसवीं सदी के ही नहीं अपितु वृहत्तर कालखण्ड के महानायक हैं। जो दिव्यता आपश्री के व्यक्तित्व में थी, उसे शब्दांकित करना हमारे जैसे अबोधों की सामर्थ्य-बाह्य कार्य है किन्तु आप समान महायोगी की स्तुति पाप-क्षयंकरी एवं पुण्य-वर्धनी है इस भाव से प्रस्तुत ग्रंथ का सृजन हुआ है।

इस ग्रंथ हेतु वात्सल्य वारिधी आचार्य श्री वर्धमानसागर जी महाराज का आशीर्वाद संजीवनीवत अनवरत प्राप्त होता रहा अत: आचार्य महाराज ससंघ को कोटिश: नमोऽस्तु। पूज्य मुनिश्री हितेंद्रसागर जी महाराज ने प्रारंभिक क्षणों से समापन तक तथा सामग्री उपलब्ध करवाने से लेकर दिशा-निर्देशन तक के सम्पूर्ण कार्यों में अपनी महती भूमिका निभाई है। क्षु. श्री ध्यानसागर जी महाराज जिनके द्वारा हमने जिनागम का अ से अरिहंत का ज्ञान पाया उन्होंने स्वयं एवं प्रतिष्ठाचार्य जय निशांत भैया ने इस ग्रंथ का अवलोकन कर उचित दिशा-निर्देशन प्रदान किये, यह हमारे लिए गौरव की बात है।

सुरेखा दीदी, भोज पूज्य आचार्य शांतिसागर जी महाराज के गृहस्थ जीवन के अनुज कुंभगौड़ा जी की चौथी पीढ़ी से हैं, उनसे पूज्यश्री के अनेक नए संस्मरण एवं स्थानीय परंपराओं और शब्दावली का भरपूर भंडार मिला। आदरणीय पारसमल पाटनी जी जो आचार्य-संघ की सेवा में सतत संलग्न रहते हैं, आचार्य-संघ से जुड़े रहने में एक समर्थ सेतु सिद्ध हुए। भाई अंकुर जैन सी.ए. की भूमिका उस नींव के पत्थर की भाँति रही जो नहीं दिखने पर भी अपना अतुलनीय स्थान रखता है। इस ग्रंथ के लेखन में पंडित सुमेरचन्द्र दिवाकर जी कृत चारित्र चक्रवर्ती ग्रन्थ का अविस्मरणीय योगदान रहा है। लेखन के समय आपके वर्तमान परिजनों एवं हमारे अग्रज आदरणीय शैलेष

भैया, सत्येन्द्र भैया, शैलेन्द्र भैया आदि को लेकर परिवार के सभी सदस्यों का भी भरपूर सहयोग प्राप्त हुआ है।

इस ग्रंथ का कार्य प्रारंभ हुए कुछ ही समय हुआ था कि मेरा रायपुर स्थानांतरण हो गया। तब ग्रंथ कार्य समय सीमा पर पूर्ण हो सकेगा कह पाना बहुत कठिन था। बीच में बहुत समय तक स्वास्थ्य भी प्रतिकूल रहा, ऐसे समय में हमारी आदरणीय श्रीमति कमला मौसीजी ने 81 वर्ष की उम्र में भी हमारे साथ रहकर, हमें भोजन आदि की व्यवस्थाओं से निश्िंचत रखा। इसी समय रायपुर का एक परिवार जिसे दुनिया विश्व-परिवार नाम से जानती है हमारे लिए देवदूत बन गया। इस परिवार के प्रत्येक सदस्य की सेवा भावना हमारे सगे संबंधियों से कमतर नहीं है। जब यह लग रहा था कि ग्रंथ का कार्य छूटने ही वाला है तब विश्व परिवार के आधार स्तंभ स्वरूप आदरणीय प्रदीप जी, जो रायपुर में हमारे पालक का भी स्थान रखते हैं ने हमारा हाथ थामा और फिर उनकी सक्रिय सहभागिता से अंततः इस ग्रंथ ने अपनी यात्रा पूर्ण कर ली। ग्रंथ प्रकाशन में टाइपिंग एक दुरूह कार्य होता है, जिसे विश्व परिवार के चिराग प्रियेश एवं प्रसंग भाई ने अपने जिम्मे लेकर अत्यंत सहज कर दिया। टाइपिंग का यह कार्य मुकुंद साहू जी ने जिस शुद्धता और दक्षता से किया वह अति प्रशंसनीय है। श्री विजय कस्तूरे जी, रायपुर ने शुद्धतम प्रूफ-रीडिंग कर ग्रंथ की गुणवत्ता वृद्धिंगत करने का एक महत्तर कार्य किया है। प्रथम संस्करण शीघ्रता में प्रकाशित हुआ था अतः उसमें कुछ त्रुटियाँ शेष रह गई थीं। इन त्रुटियों को चिह्नित कर दूर करने में ब्र जितेन्द्र भाई गुरुग्राम, श्री अमित भैया गोइल रायपुर एवं स्वाध्याय मंडल शंकर नगर रायपुर का भरपूर सहयोग रहा।

शंकरनगर, रायपुर के मूलनायक श्री चंद्रप्रभ भगवान की कृपा दृष्टि से ग्रंथ का कार्य तो सरलतापूर्वक हुआ ही, मन में जो-जो शुभ भाव आये वह भी पूर्ण होते रहे। ऐसे अतिशयकारी श्री चंद्रप्रभ भगवान एवं रायपुर के सभी जिन भगवंतों को अक्षय अनंत नमोऽस्तु। छत्तीसगढ़ जैन समाज के भामाशाह आदरणीय विनोद (भैया) बड़जात्या जी, शंकर नगर मंदिर अध्यक्ष, मनीष भैया सहित संपूर्ण कार्यकारिणी, स्वाध्यायी श्रावकगण एवं सकल रायपुर जैन समाज ने भी प्रशस्त धार्मिक वातावरण प्रदान कर बुंदेलखण्ड और छत्तीसगढ़ के भेद को समाप्त कर दिया, अतः आप सभी के लिए साधुवाद। विशिष्ट

व्यक्तियों के शुभकामना संदेश में अग्रणी भूमिका निभाने वाले श्री सुनील जी जैन, संचय ललितपुर, 'श्री शांतिसागर महाराज ट्रस्ट' तथा प्रकाशक भारतीय ज्ञानपीठ को भी उनके सहयोग के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद।

हमारे आराध्य आचार्य गुरुवर श्री विद्यासागर जी महामुनिराज जिनकी कृपा के बिना हम एक शब्द का भी लेखन करने में असमर्थ थे, जिनकी साधना के प्रभाव से ग्रंथ-लेखन कार्य के दौरान उत्पन्न हुई व्याधि से हम बिना किसी सर्जरी के स्वस्थ होकर यह कार्य कर सके। वे परमगुरु अब मोक्ष की महायात्रा पर प्रयाण कर चुके हैं, उनके एवं उन्हीं के तुल्य पंचाचारों को सुशोभित कर रहे आचार्य श्री समयसागर जी महाराज ससंघ के श्री चरणों में कृतज्ञतापूर्वक हमारा बारम्बार नमोऽस्तु। नि. श्र. मुनिपुंगव श्री सुधासागर जी महाराज एवं नि. श्र. मुनि श्री विद्यासागर जी महाराज का भी इस कार्य हेतु भरपूर आशीर्वाद प्राप्त होता रहा अत: आपश्री के चरणों में भी नमोऽस्तु । संपूर्ण सहयोगियों एवं संदर्भित ग्रंथों के रचनाकारों का बहुत-बहुत आभार।

चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज के आचार्यत्व के 100 वर्ष पूर्ण होने पर उन्हीं के श्रीचरणों में सविनय नमोऽस्तु पूर्वक समर्पित।

ब्र. सुनील जैन सांधेलिया

1

इतना विशाल जलस्थान! दिशा-विदिशा की भेदरेखा से रहित सागरतुल्य अगाध जलराशि को धारण किए हुए कैसा अनुपम सरोवर है। सरोवर में प्रवेश के लिए निर्मित सीढ़ियाँ भी कम आकर्षक नहीं हैं। सूर्य-रश्मियों का योग पाकर उनका धरातल रत्नमयी वेदिका की भाँति शोभायमान हो रहा है। शनैः शनैः पग नीचे की ओर बढ़ रहे हैं। लंबा मार्ग तय किया था, सरोवर की सीढ़ियाँ भी बहुत हैं किन्तु शरीर में क्लांति के कोई चिन्ह नहीं हैं। मन प्रारंभ से लगातार निर्देश दे रहा था कि गर्भवती स्त्री को एकांकी, अज्ञात, निर्जन स्थान की ओर नहीं जाना चाहिए था किन्तु वह अन्तरात्मा की अवहेलना नहीं कर सकती थी। उनके कदम बढ़े जा रहे थे, बुद्धि प्रयोग से संयुक्त मन की चेतावनी एवं सघन वृक्ष समूह की ओर से सुनाई पड़ता पक्षियों का कलरव भी निश्चय को विचलित नहीं कर पा रहा था। सीढ़ियाँ कब समाप्त हो चुकी थीं उन्हें ज्ञात ही नहीं हुआ, जब दृष्टि नीचे हुई तो अथाह जलराशि। सामने-पीछे, आजू-बाजू, सर्वत्र जल-जल और जल।

मन ने कहा ''कितना समझाया था किन्तु सत्य है स्त्री-हठ के समक्ष देवता भी विवश हो जाते हैं।''

किन्तु माता सत्यवती के मुखमण्डल पर भय, पछतावा इत्यादि लक्षणों से रहित एक अपूर्व शांति थी क्योंकि वे अन्तरात्मा का अनुसरण जो कर रही थीं।

मन ने कहा ''तुझे तैरना नहीं आता है।''

''जब भयंकर संसार-सागर में संसारी प्राणी तैरने की विद्या सीखे बिना ही प्रविष्ट हो जाता है, तब यह तो उपलब्धियों का सरोवर है।'' अन्तरात्मा से आवाज आ रही थी ''संसारार्णव में डूबने पर अंनत दुःखों की प्राप्ति सुनिश्चित होने पर भी जीव निर्भय बना रहता है तब फिर यहाँ तो तैरने और डूबने दोनों में ही कोई अलौकिक आनंद है।''

पैरों की गति जिस गंध स्रोत की ओर थी वह अब मानो निकट ही था, प्रभु की भाँति। गंध से न केवल नासिका तृप्त हो रही थी किन्तु उथल-पुथल मचा रहा मन भी आह्लादित हो रहा था।

''एक, दो, पाँच, पचास, पाँच सौ, हजार? नहीं पूरी एक हजार आठ पाँखुड़ी!'' मन ने सहयोग दिया तो निमिष मात्र में नेत्रों ने गिनती कर ली।

भानु की स्वर्णिम किरणों से कमल की शोभा द्विगुणित हो गई थी।

''यदि ऐसा पुष्प प्रभु के चरणों में समर्पित कर सकूँ तो जीवन धन्य हो जायेगा।'' सोचते हुए माता सत्यवती ने उस सहस्रपत्र को हाथों में लेना चाहा कि तभी ''मैं जा रहा हूँ।'' पतिदेव की आवाज से उनकी निद्रा भग्न हो गई।

आवश्यक कार्य पूर्ण कर जब भीमगौड़ा जी साँझ हुए घर पहुँचे तो धर्मपत्नी की उदास मुखमुद्रा देख उन्होंने उसका कारण पूछा। पत्नी का स्वप्न सुनकर वे बड़े हर्षित हुए।

''मैं स्वप्न में भी प्रभु को सहस्रदल कमल समर्पित न कर सकी और आप हैं कि प्रसन्न हुए जा रहे हैं।'' माता सत्यवती के वाक्य में उलाहना कम खेद अधिक था।

''स्वप्न में क्यों तुम्हें तो यथार्थ में प्रभु चरणों में वैसा कमल अर्पित करना चाहिए।'' भीमगौड़ा जी ने मनोविनोद किया।

''अर्थात् आप प्रात: काल मुझे वह कमल लाकर देंगे।''

''अवश्य।''

''किन्तु कहाँ से?'' माता सत्यवती के मन में आया किन्तु वे मौन रहीं।

पत्नी के मन का भाव जानकर भीमगौड़ा जी सस्मित बोले ''अवश्य, आज रात्रि के स्वप्न में।'' प्रतिउत्तर में माता सत्यवती कुछ न बोलीं।

भीमगौड़ा जी को लगा, रात्रि व्यतीत होते ही गृहिणी की उदासी भी समाप्त हो जायेगी किन्तु दो दिन व्यतीत हो गए उन्होंने जैसा सोचा था उसके विपरीत हुआ। इन दो दिनों में सत्यवती देवी की काया इतनी कृश हो गई कि जितनी दो सप्ताह निराहार रहने पर भी न होती। बहुत बड़ी चुनौती आन खड़ी थी भीमगौड़ा जी के समक्ष।

''पत्नी की शुभेच्छा पूर्ण करना मेरा धर्म है, उसके शरीर को स्वस्थ रखना मेरा दायित्व है इसलिए कि वह मेरी जीवन संगिनी है और इसलिए भी कि उसकी कोख में न जाने कौन भव्यात्मा वास कर रही है।'' भीमगौड़ा जी कर्तव्य-बोध से भावित हो चुके थे किन्तु मंजिल सुनश्चित होने पर भी मार्ग अदृश्य था।

पड़ोसियों से पूछा तो उन्होंने पति-पत्नी दोनों को समझाया ''स्वप्न के विषय, कल्पनाओं के समान वास्तविकता से दूर होते हैं इसलिए बहू सत्यवती को अपना आग्रह छोड़ देना चाहिए एवं पाटिल जी को भी भावनाओं में नहीं बहना चाहिए।''

पीहर वालों को ज्ञात हुआ तो येलगुल से वे दौड़े-दौड़े चले आए। सहस्र कमलों की टोकनी सामने रखते हुए बोले ''हमारी बिटिया की इच्छापूर्ति के लिए हम हजार क्या, लाखों कमल ला सकते हैं।'' किन्तु इष्ट जनों का यह स्नेह सत्यवती देवी के मन को रिझा न सका।

जैसे-जैसे विशिष्ट परिचितों तक यह समाचार पहुंच रहा था वे माता सत्यवती की प्रसन्नता के लिए सामान्य से लेकर विशिष्ट तक के न जाने कितने उपक्रम कर चुके थे। दोनों पक्षों के परिजन बहुत चिंतित थे। ''जो संभव नहीं वह कैसे हो सकता है, हे प्रभो! अब आप ही शरण हैं।''

दो दिन और व्यतीत हो गए। अब तो सत्यवती देवी को भोजन से भी अरुचि हो गई। भीमगौड़ा जी पिछले 48 घंटों में बहुत अन्वेषण कर चुके थे। उनकी इस यात्रा में मित्र, परिजन एवं पुरजन अपेक्षा से अधिक सहयोग कर रहे थे किन्तु अपेक्षित सफलता न मिल सकी थी। अपनी सर्वाधिक प्रिय खाद्य वस्तु घी एवं घी से निर्मित व्यंजनों के त्याग के उपरांत आज भीमगौड़ा जी ने पादत्राण का परित्याग कर दिया था। ''अब ये पैर तब तक नहीं थमेंगे जब तक मैं अपनी पत्नी के हाथों में सहस्रदल कमल नहीं थमा देता।'' संकल्प के ऊपर संकल्प। रूप, बल, सामर्थ्य, प्रभाव, क्षत्रियत्व इत्यादि में अतुलनीय भीमगौड़ा जी की, आज उनके मित्र शिवाजी से तुलना कर रहे थे। सहस्रदल कमल के लिए भीमगौड़ाजी की सहस्रों मील की यात्राएँ हो चुकी

थीं पर उपलब्धि शून्य थी किन्तु उनका विश्वास अकंप था। ''वे रुकेंगे नहीं, वे हारेंगे नहीं, चाहे तो ये यात्रा लाखों मील की क्यों न हो जाए।''

कोल्हापुर के सभी जलाशयों का अनेक बार निरीक्षण कर लिया था किन्तु घूम-घाम कर एक बार पुन: कदम कोल्हापुर की ओर बढ़ गए। इस बार जब वे प्रथम सरोवर पर पहुँचे तो उन्होंने जलराशि पर दृष्टि फैला दी। उनके ध्येय से कमल हट चुका था, वे स्रोत के प्रति अहोभाव से भर गए। उनके नेत्र खुले थे या बंद न वे समझ सके और न निकटवर्ती लोग, स्वत: स्फूर्त प्रेरणा से बस उन्होंने जिस कमल का स्पर्श किया वही उनकी धर्मपत्नी का इष्ट कमल था। एक, दो नहीं पूरे एक सौ आठ सहस्रदल कमल उनकी झोली में थे। असंभव सा दिखने वाला कार्य जो कठोर परिश्रम से भी निष्पन्न नहीं हो सका था वह आज इतनी सरलता से सिद्ध हो गया कि किसी को विश्वास ही नहीं हो रहा था स्वयं भीमगौड़ाजी एवं सत्यवती देवी को भी। आने वाले पुण्यशाली जीव के प्रभाव से कथंचित पद्म-सरोवर की अधिष्ठात्री श्री-देवी ने ही उनके मनोरथ को पूर्ण किया था या दंपत्ति के पुण्य परिणामों के प्रभाव से कार्य की सिद्धि हुई थी या यह भीमगौड़ाजी के पुरुषार्थ का सहज फल था। ग्राम-ग्रामांतरों में खूब चर्चाएँ हो रही थीं किन्तु पाटिल-युगल निरंतर श्रीजिनेन्द्र प्रभु की दिव्य-अर्चना में तल्लीन थे।

माता सत्यवती के दोहला पूर्ण होने की प्रसन्नता में दोहले-जीवन का भव्य कार्यक्रम आयोजित हुआ। कोठी ही नहीं अपितु पूरे ग्राम को दुल्हन की भाँति सजाया-संवारा गया। हजारों की संख्या में आगंतुकों की उपस्थिति ने कार्यक्रम को मेले का रूप दे दिया। वस्त्राभरणों से अलंकृत सत्यवती देवी की शोभा अतुलनीय थी। गोद भराई की रस्म पूरी करते समय स्त्रियाँ अपने भाग्य की सराहना कर रही थीं, उन्हें ऐसा प्रतीत हो रहा था कि जैसे वे साक्षात् जिनमाता की गोद भराई ही कर रही हों।

इस तरह हर्षोल्लास के साथ दिन व्यतीत हो रहे थे। माता सत्यवती को तो आए दिन स्वप्न में कभी जिन-पूजा, तो कभी साधुओं की आहारचर्या, कभी तत्त्व-चर्चा, तो कभी तीर्थ-यात्रा का लाभ होता रहता था। पहिले तो

ज्योतिष-ज्ञानी अनुमान ही लगा रहे थे कि सत्यवती देवी किसी विशिष्ट व्यक्तित्व की जननी होंगी किन्तु वह अनुमान जन-जन के लिए अर्हंत देव के समीचीन अनेकांत की भाँति सत्य भासित होने लगा। माता के साथ-साथ संबंधियों एवं पुरवासियों को भी शुभ-स्वप्न दर्शन एवं शुभ शकुन हो रहे थे, इतिहास एक अपूर्व अध्याय जो लिखने वाला था।

जिस क्षण की प्रतीक्षा थी अन्ततः वह आ ही गया। नानी बिल्कुल निकट ही थीं, उन्हें गहन रात्रि में एक दिव्य आकाशीय प्रकाश का अनुभव हुआ। वे हतप्रभ थीं। कक्ष में सुईन बाई के अलावा अन्य कोई नहीं था, बिटिया को अकेला छोड़कर कक्ष से बाहर जाने का प्रश्न ही नहीं था। उनके मन में भय, आशंका जैसे नकारात्मक भाव नहीं थे अपितु वे उस प्रकाश-पुंज पर मुग्ध हो रही थीं। ''जो होगा वह आने वाले महाभाग के पुण्य प्रभाव से सुखद ही होगा'' ऐसा सोचकर वे प्रभु का नाम स्मरण कर बिटिया की परिचर्या में संलग्न हो गईं। येलगुल से चारमील दूर भोज में बाबा भीमगौड़ा को कोई अलौकिक मेघ-गर्जना सुनाई दे रही थी, जिसे अज्जा ने भी सुना, गाँव के अनेक लोगों ने भी सुना और जो-जो उस समय जागृत थे स्वयं के कानों से और मन से भी उन सबने ही वह जो पहिले कभी नहीं सुनी थी ऐसी ध्वनि सुनी। बहुत समय से धरती प्यासी थी किन्तु अब जब वर्षा हुई तो अनगिनत जीवों को मानो जीवन का आधार मिल गया।

शिशु की किलकारी सुनते ही मामा के घर में हर्षोल्लास छा गया। शिशु के पुण्य प्रभाव से प्रकृति अपना भरपूर सहयोग दे रही थी। कुछ समय के उपरांत वर्षा थम गई, बादलों के छट जाने से आकाश मुनि-मन के समान निर्मल हो गया। चंद्रदेव ने सपरिवार शिशु का अवलोकन किया और फिर पीछे से सूर्यदेव आ गए। सूर्योदय होते ही भोज से येलगुल तक लोगों की कतारें लग गईं।

पुत्र के रूप पर मुग्ध माता सत्यवती उसे देखते-देखते अतीत में पहुंच गईं। ''दश वर्ष पूर्व प्रथम पुत्र देवगौड़ा का जन्म हुआ था, वह बल, रूप,

ओज, माधुर्य इत्यादि अनेक गुणों का पुंज होने से देवतुल्य ही लगता था। तदोपरांत मेरे पुण्योदय से पुण्यशाली आदिगौड़ा की किलकारी गूंजी, उसकी नटखट लीलाओं को देखते-देखते नेत्र तृप्त ही नहीं होते थे। हम श्रावकों पर भगवन् जिनसेनाचार्यजी की बड़ी कृपा रही जो आपने गर्भाधान की तिरेपन क्रियाएँ बतलाईं। पूर्व में भी हम पति-पत्नी ने उन क्रियाओं को आचरण में लाने का यथासंभव प्रयत्न किया, संभवतः यही कारण है कि हमें एक से बढ़कर एक गुणवान पुत्रों की प्राप्ति हुई।''

भीमगौड़ा जी की दृष्टि मुस्कुराते हुए बालक पर पड़ी तो उनका मन आनंद से विभोर हो गया। ''यह तृतीय पुत्र, जो बहुमूल्य रत्न तुल्य है या मुनियों को प्रिय रत्नत्रय के समान हम सबका परम प्रिय है के निमित्त हमने श्री आदिपुराण में कहे अनुसार अर्हन्त देव की महार्चना करते हुए गर्भावतरण पूर्व समीचीन आधान क्रिया की थी। तदोपरांत प्रीति को वृद्धिमान करने वाली प्रीति, सुप्रीति, मोद आदि क्रियाएं सानंदपूर्वक सम्पन्न हुई थीं। सत्यवती के दोहला पूर्ण होने पर उन्हें जो आनंद आया था वह शब्दातीत है किन्तु जिनदेव के लिए सहस्रदल कमल अर्पित करते हुए मुझे जो अनुभूति हुई थी वह मैं कैसे भूल सकता हूँ। आज पुनः उसी आनंद के ये क्षण।'' भीमगौड़ा जी अत्यंत भावुक हो गए थे वे बालक को अपलक देखते ही रहना चाहते थे किन्तु तभी बच्चों की टोली आ पहुंची और साथ में थे बाबा अतः संकोचवशात वे वहाँ से चले गए।

''सोनुल तू थोड़ा बड़ा हो जायेगा तो तुझे हम अपनी टोली में शामिल कर लेंगे।'' देवगौड़ा ने बालक को हाथों में ले लिया था। बालक ने भी मुस्कुरा दिया।

''नहीं ये मेरी टोली में रहेगा, हम इसे अच्छे-अच्छे खेल खिलायेंगे।'' आदिगौड़ा ने बड़े भाई की बात को काटते हुए कहा।

''लेकिन वह मेरी टोली में आना चाहता है ?'' देवगौड़ा ने बड़े विश्वास के साथ कहा।

''जैसे उसने तुमसे स्वयं कहा हो।'' आदिगौड़ा ने थोड़े बिगड़ते हुए कटाक्षपूर्वक कहा।

''हाँ, उसने मुझसे खुद कहा है।''

अज्जा जो बच्चों की बातों का आनंद ले रहे थे, उनके मुखमंडल पर आश्चर्य झलकने लगा।

''मेरी बात के समर्थन में देखो सोनुल कैसे मुस्कुरा रहा है।''

''दादा बेईमानी मत करो।''

''मैंने क्या किया, मैं भी तो सुनूं भला।''

''तुमने सोनुल को गुदगुदी करके हंसाया है।''

''तो तू भी हंसा ले।''

आदिगौड़ा बालक को छीनने का प्रयास करता है तो कहीं कोई दुर्घटना न हो जाए ऐसा सोचकर अज्जा उसे अपनी गोद में लेकर बोलते हैं ''सोनुल मेरी टोली में रहेगा, क्यों सोनुल।'' अज्जा के पुचकारने से बालक के मुख पर पुनः मुस्कान छा जाती है।

आदिगौड़ा, देवगौड़ा को अंगूठा दिखाकर चिढ़ाता है।

''अज्जा, सोनुल आपकी टोली में कैसे शामिल हो सकता?'' देवगौड़ा ने साश्चर्य पूछा।

''क्यों, क्यों नहीं हो सकता?'' अज्जा पूरे बच्चा बन चुके थे।

''आप वृद्ध हो गए हैं, अज्जा।''

''किसने कहा मैं बूढ़ा हो गया हूँ?'' अज्जा ने छद्म रोष दिखलाते हुए कहा।

''आपके बालों ने।'' कुछ समय पूर्व बड़े भाई से रुष्ट आदिगौड़ा ने भाई के पक्ष में कहा।

''तो इसका अर्थ यह हुआ तुम्हारी अज्जी, बूढ़ी नहीं हुईं।'' पति की चुहल पर इस वार्तालाप से निरपेक्ष अज्जी को भी हंसी आ जाती है।

मामा के द्वारा अपने भांजे के नाम-संस्कार की न भूतो न भविष्यति वाली तैयारियाँ हो रही थीं। बारह दिन होते-होते येलगुल दुल्हन की भाँति सज-संवर गया था। हजारों-हजार लोग इस तेजस्वी बालक की प्रथम नाम-

घोषणा को अपने कानों से सुनने आए थे। जन्म के समय सूचना देने के निमित्त ही वह रोया था अन्यथा वह तो जिन-बालक के समान अत्यंत शांत एवं गंभीर था। ऐसे में नामकरण को लेकर न ज्योतिष और पंडित को दुविधा थी और न ही पितृपक्ष एवं मातृपक्ष को। **सातगौड़ा नामोच्चारण होते ही सहस्रों नर-नारियों की करतल-ध्वनि ने वातावरण में ऐसी मधुरता घोली कि प्रतीत हुआ मानो भारत गुलामी की जंजीरों से मुक्त हो गया हो।** हाँ यह युगपुरुष भविष्य में न केवल निजात्म देश को बंधनों से मुक्त करने की दिशा में अग्रसर हो गया था अपितु भारत राष्ट्र की वास्तविक स्वतंत्रता का भी पक्षधर बना था।

सातगौड़ा का विकास ज्ञानियों के सुख की तरह दिन प्रतिदिन ऊपर की ओर था। माता-पिता को लग रहा था कि मानो उनका पुत्र पलक झपकते ही एक वर्ष का हो गया हो। पूर्व के उत्सव ननिहाल में हुए थे अत: भीमगौड़ा जी ने आगमोक्त पद्धति से सातगौड़ा के वर्षवर्धन दिवस को किसी वैवाहिक स्तर के तुल्य धूमधाम से मनाने की योजना बनाई थी।

''केशवापन क्रिया भी साथ में कर लेना।'' पड़ोसी ने भीमगौड़ा जी को सुझाव दिया।

''किन्तु वह तो एक वर्ष के बाद की क्रिया है।''

''हाँ परंतु एक साथ यदि दोनों काम हो जाएँ तो फिर बार-बार कार्यक्रम आयोजित करने का श्रम नहीं करना पड़ेगा।'' अयोग्य शब्द उसके मुंह पर आते-आते रह गए।

''मान्यवर पुत्र के उत्सव मनाने में पिता को आनंद आता है। इसमें श्रम भले ही लगता हो किन्तु वह उसके लिए झंझट नहीं हो सकता।'' भीमगौड़ा जी पड़ोसी के भाव पढ़ चुके थे।

''पाटिल, इनका तर्क भले ही असंगत हो किन्तु सुझाव तो उचित प्रतीत हो रहा है।'' भीमगौड़ा जी के मित्र ने कहा।

''कैसे?''

''राष्ट्रवादी नेता फिरंगी सत्ता के विरुद्ध एकत्रित हो रहे हैं। ऐसे में यदि

हम बार-बार बड़े-बड़े उत्सव रचेंगे तो देश में क्या संदेश जायेगा?''

''कि भोज के पाटिल ब्रिटिश सरकार के पिट्ठू हैं। कहीं तुम ऐसा तो नहीं कहना चाह रहे थे, भीमगौड़ा जी उत्तेजित हो चुके थे। मित्र को मौन देख वे ही आगे बोले ''सरकार कभी हमारे विरोध में नहीं गई इसका यह अर्थ तो नहीं कि हम अंग्रेजी सत्ता और उसकी दमनकारी नीतियों के समर्थक हैं। अपने गाँवों को सरकार की कुदृष्टि से बचाकर रखना ही हमारी एकमात्र आकांक्षा रही है।''

मित्र ने भीमगौड़ाजी के कंधे पर हाथ रखा। ''हम चाहते हैं कि भविष्य में भी हमारे गाँव, सरकार के प्रकोप से बचे रहें।'' मित्र ने याद दिलाया। ''आपके पूर्वजों का मूलस्थान कर्नाटक का शालबद्री (बीजापुर) था। वे पहले देसाई उपनाम से जाने जाते थे। अपने विशिष्ट प्रभाव के कारण अज्जा पद्मगौड़ा, रत्नगौड़ा इत्यादि अनेक पीढ़ियों का इतिहास वहां अभी भी सुरक्षित है किन्तु फिर क्यों पश्चातवर्ती पूर्वजों को भोजग्राम आना पड़ा? सत्ता के कारण ही न?''

''किन्तु हम अंग्रेज सरकार के नहीं राष्ट्र और राष्ट्रवादियों के साथ हैं। यदि राष्ट्रवादियों को हमारी राष्ट्रभक्ति में संशय है तो हम सदा के लिए पारिवारिक उत्सवों पर विराम भी लगा सकते हैं।'' भीमगौड़ा जी अपने भावोद्रेक को सम्हाल नहीं पा रहे थे।

पड़ोसी माहौल बिगड़ता देख वहाँ से नौ-दो-ग्यारह हो गया।

''मित्र तुम्हारी देशभक्ति से हर कोई परिचित है इसलिए उसका प्रमाण देने के लिए कुछ कहने करने की आवश्यकता नहीं है। हम लोग सातगौड़ा के सभी उत्सव धूमधाम से करेंगे।''

''तुम्हारे मित्र का सुझाव उचित था।'' अज्जा ने वहाँ से गुजरते हुए कहा ''वर्षवर्धन एवं केशवापन क्रिया के लिए एक ही कार्यक्रम आयोजित करना उचित है।''

भीमगौड़ा जी पिता के वचनों को जीवन का सार समझते थे अत: उन्होंने मन के विकल्पों को विराम दे दिया।

वर्षवर्धन हेतु बड़े अंग्रेज अफसर, राष्ट्रवादी नेता एवं अन्य अनेक गणमान्य व्यक्तियों के शामिल होने की संभावना को देखते हुए अन्य व्यवस्थाओं के साथ-साथ सुरक्षा व्यवस्था का विशेष प्रबंध किया गया था। भोजग्राम की शोभा किसी राज्य की राजधानी से कम नहीं थी। **सातगौड़ा आज पूरे एक वर्ष का हुआ था किन्तु वह बिना सहारे ऐसे चलने लगा था जैसे आत्मज्ञानी योगी अध्यात्म मार्ग पर निरपेक्ष होकर चलते हैं।** कार्यक्रम का मुख्य आकर्षण बालक सातगौड़ा के पाद-संचालन का प्रस्तुतीकरण था। विशालकाय मंडप के मुख्य मंच पर विशिष्ट अतिथिगण आसनस्थ थे तो उनके दोनों ओर थोड़ा आगे की ओर बनाए गए स्थान पर परिवार एवं संबंधी नजर आ रहे थे। सातगौड़ा को पिता भीमगौड़ा ने गोद से उतारकर नीचे खड़ा कर दिया। दूसरी ओर माता सत्यवती खड़ी हुई थीं। माता ने सातगौड़ा को देखकर मंदस्मित पूर्वक अपने निकट आने का संकेत किया तो वह ठुमक-ठुमक कर माता की ओर चलने लगा। बालक के पैरों में बंधी पैजनियों की मधुर झंकार सुनकर कृष्ण भक्तों को नंददुलारे दिखने लगे। बालक की सस्मित, शांत एवं गंभीर मुखमुद्रा को निहारकर कितने लोगों को तुलसी के राम याद आने लगे। सामने दूर-दूर से आया विशाल जन-समुदाय प्रभु महावीर की वंश परंपरा के इस दिव्य-रूप का दर्शन लाभ पाकर स्वयं कृतकृत्य अनुभूत कर रहा था। बालक धीमे-धीमे माता की ओर बढ़ रहा था किन्तु लोगों की तालियों से उसका ध्यान इधर-उधर भटक जाता था। बीच में ऐसा लगा कि वह गिर जायेगा अत: एक अंग्रेज अधिकारी से रहा नहीं गया और वह यीशु को आँखों में बसाए सा भावनातिरेक में उस ओर भागा। सभी अधिकारी की भावना से प्रभावित हुए किन्तु उस अंग्रेज अधिकारी को देखकर सातगौड़ा थोड़ा मुस्कुराया और फिर उसने माँ की ओर दौड़ लगा दी।

एक वर्ष के बालक की ऐसी अद्‌भुत चेष्टाएँ देखकर दर्शक चकित थे उन्हें यह दृश्य देवलीला लग रही थी। सत्यवती माता ने शिशु को ममतामयी गोद में भर लिया। **ज्ञानी सोच रहे थे कि समीचीन मार्ग पर बढ़ते हुए पथिक को इसी तरह जिनवाणी माता अपने वात्सल्यमयी आंचल में भर**

लेती है। इस उत्सव में भी वह सब कुछ हुआ था जो किसी अन्य भव्य कार्यक्रम में होता है किन्तु बालक सातगौड़ा की अनुपम प्रस्तुति ने इसे बहुत विशिष्ट बना दिया।

अगले ही दिन केशवापन संस्कार होने थे किन्तु सन्ध्या होते-होते पता चला नाइयों ने कल सामूहिक अवकाश की घोषणा कर दी है।

''मैं ये क्या सुन रहा हूँ।'' मित्र ने साश्चर्य भीमगौड़ा जी से पूछा।

भीमगौड़ा जी ने मुस्कुरा दिया। मित्र को लगा यह उनका क्रोध है अत: वह बोला ''चिंता की कोई बात नहीं है, पुश्तैनी नाई बाबू तो आ ही जायेंगे।''

भीमगौड़ा जी के चेहरे पर फिर से मुस्कान बिखर गई।

''उसे तो जैसे सामूहिक अवकाश का पूर्वाभास था अत: वह पहले से अपनी असामर्थ्य व्यक्त कर चुका था।'' अज्जा ने निराशा मिश्रित स्वर में कहा।

इस मुहूर्त में केशवापन की हठात प्रेरणा उसने ही दी थी अत: वह मित्र अपराध बोध से ग्रस्त तो हो ही चुका था किन्तु अपने मित्र भीमगौड़ा की स्मित उसे और भी परेशान कर रही थी। वह स्वयं आशाविहीन था फिर भी बोला ''पाटिल परिवार के लिए पचास-पचास नाई तैयार खड़े होंगे।''

''पचास नहीं इस क्षेत्र के पूरे नाई तैयार हैं किन्तु यहां आने के लिए नहीं अपने धरना-प्रदर्शन के लिए।'' वह पड़ोसी इस अवसर पर पुन: अपनी भूमिका निभाने आ चुका था।

भीमगौड़ा जी के आनन पर फैली स्मित, मित्र को रहस्यमयी लग रही थी कि ऐसे में सेवक ने संदेश दिया एक नाई आया है, वह आपसे मिलना चाहता है।''

''अंदर भेजो।'' भीमगौड़ा जी ने कहा किन्तु मित्र खुशी से उछलता हुआ द्वार की ओर भागा एवं उसे तत्काल अंदर ले आया।

''तुम अवकाश पर नहीं हो?'' भीमगौड़ा जी ने पूछा।

''आम से मतलब रखो मित्र, गुठलियाँ गिनने से क्या प्रयोजन?'' मित्र ने कहा। वह भीमगौड़ा जी के इस व्यवहार पर विस्मित था।

''फिर भी कुछ पूछताछ तो अनिवार्य है न।'' भीमगौड़ा जी एक

मुखिया की हैसियत से बोले।

''बिल्कुल सुरक्षा के दृष्टिकोण से भी।'' पड़ोसी ने अपना अभिमत दिया।

मित्र को डर था कि ''ज्यादा पूछताछ के चक्कर में यदि ये हाथ से निकल गया तो कल का कार्यक्रम?'' सोचकर उसने अज्जा की ओर सहायता की अपेक्षा से देखा।

''भाई तुम समय पर आ जाना।'' कहते हुए अज्जा ने सभी को आराम करने का आत्मीय निर्देश दिया। निर्धारित मुहूर्त पर केशवापन क्रिया प्रारंभ हो गई। लोगों का ध्यान सातगौड़ा की अपेक्षा नाई पर अधिक था। उसने सातगौड़ा को प्रणाम किया। उसकी विधि कुछ हटकर थी। वह एक हाथ अपने मस्तक तक ले गया, फिर हृदय पर लगा दिया। उसके मुख पर ऐसी प्रसन्नता थी मानो वह अपने जीवन की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि के सम्मुख हो। उस्तरा चलाते समय उसके हाथ कांप रहे थे जिससे माता सत्यवती कुछ अधिक ही घबरा रही थीं किन्तु उसकी प्रफुल्लित भावदशा पर अन्यजन मुग्ध हुए जा रहे थे।

मुंडन अभी प्रारंभ ही हुआ था कि फड़फड़ाता हुआ एक दूसरा नाई उपस्थित हो गया। ''मुझे दस्तूर देकर इससे संस्कार करवा रहे हैं ये तो न्याय नहीं हुआ मालिक।'' वह बड़बड़ा रहा था।

भीमगौड़ा जी ने दोनों को ध्यान से देखा तो वे स्वयं की स्मरण शक्ति पर विस्मित हुए। उन्होंने मित्र की ओर देखा।

''हाँ, मेरा भी इस ओर ध्यान नहीं गया।'' उसने स्पष्टीकरण दिया।

पहले वाले नाई ने उस्तरा फेका और अज्जा की गोद में जा चुके सातगौड़ा को खींच लिया। कुछ क्षण के लिए वहां भय का वातावरण बन गया।

''मैं ही बच्चे का मुंडन करूंगा। पहले वाले नाई ने अधिकार-पूर्वक किन्तु बहुत कठिनाई से कहा।

''तू? ऐसे-कैसे करेगा, मैं करूंगा।'' दूसरे नाई ने उससे बालक झपटने का असफल प्रयास किया। भीमगौड़ा जी ने समय की नजाकत को समझते हुए दोनों के ऊपर स्नेहभरा हाथ रखा। दोनों शांत हो गए। भीमगौड़ाजी के मित्र ने झट से सातगौड़ा को अपने अधिकार में ले लिया।

दोनों नाई पाटिलजी की हिरासत में आ चुके थे।

''तुम कौन हो?''

प्रश्न पहले वाले नाई से किया गया था किन्तु दूसरा नाई कुछ अधिक ही भयभीत हो गया था। इसलिए शीघ्रता में वह बोला ''पाटिल साहब, मैं।'' उसने छद्म वस्त्राभरण अलग कर दिए।

''अरे! ये तो ज्योतिषाचार्य हैं।'' अज्जी के मुख से अनायास निकल गया।

''लेकिन आपको भेष बदलने की आवश्यकता क्यों आन पड़ी?''

भीमगौड़ा जी के शब्दों में कठोरता थी किन्तु हृदय कुछ और ही कह रहा था।

''पाटिल साहब मैंने आज तक सैकड़ों बच्चों की कुंडली बनाई होगी किन्तु अपने निजी बालक की कुंडली न बना सका।''

अपने मूल रूप में आते ही ज्योतिषी वापिस ज्योतिषी बन गया। वह बोला ''लग्नेश बुध कर्क राशि में है, कर्क का स्वामी चन्द्र कुम्भ राशि में है और कुम्भ का स्वामी शनि केन्द्र में है अत: पारिजात योग यह द्योतन कर रहा है कि यह बालक दया का सागर, धर्मप्रणेता एवं राजाओं से वन्दनीय होगा। राजयोग, शंखयोग, अधियोग, केदारयोग, राहुतुंगयोग, कलानिधि योग, अनेक तीर्थकृद्योग, उत्तम समाधियोग इत्यादि ऐसे अनेकानेक योग बालक की कुण्डली में देखकर ऐसा लगा कि ये असाधारण व्यक्तित्व का धनी कोई अलौकिक पुरुष है।''

जन्म के समय जब कुण्डली बनी थी, तब भी अनेक लोगों ने सातगौड़ा का राशिफल सुना था। उनमें से बहुत लोग अभी उपस्थित थे किन्तु वे भी

आज किसी अपूर्व अनुभूति से गुजर रहे थे। उसने आगे बड़ी आशा और भक्ति से कहा ''इस महामना बालक के बालों को अपने घर में रखकर अपने लिए बाल-बच्चों की उत्पत्ति के चमत्कार की आशा कर रहा था।''

कुछ क्षण पूर्व का व्यग्र वातावरण अब सभी को मुग्ध किए जा रहा था। उस पहले वाले नाई से सुरक्षाकर्मी की पकड़ ढीली हो चुकी थी, किसी का ध्यान भी उस ओर नहीं था किन्तु उसने भागने का प्रयत्न नहीं किया। ज्योतिषाचार्य से नाई की बात अभी पूरी हो भी नहीं पाई थी कि तभी कहीं से अंग्रेजी में एक गीत सुनायी देने लगा। गीत पहले वाले नाई द्वारा गाया जा रहा था। एक दृश्य एवं उससे जुड़े पारलौकिक से लगने वाले घटनाक्रम का पटाक्षेप अभी हुआ ही था कि यह एक नवीन घटना।

''इसका अर्थ ?'' भीमगौड़ा जी ने पूछा।

''इस जग ने न सही,
इस दिल ने तुझे पहचान लिया।
इस जीवन में आकर तुमने,
हम पर बड़ा अहसान किया।
इस दिल ने तुझे पहचान लिया।
कहाँ-कहाँ न ढूंढा तुझे, क्या-क्या न किया अरे।
जब थक थककर हार चुका था मैं,
तब भारत ने स्थान दिया।
इस दिल ने तुझे पहचान लिया।''

उपस्थित अधिकांश लोगों की आँखों से आँसुओं की झड़ी लगी हुयी थी। पूरा वातावरण भावनात्मक हो चुका था। जब उन महाशय का परिचय प्राप्त हुआ तो सभी बहुत विस्मित हुए, वह एक बड़ा अंग्रेज अधिकारी था। कल के उत्सव में वही सातगौड़ा को सम्हालने के लिए दौड़ा था। उसने बतलाया कि ''जब मैं इंग्लैंड में था तब एक अत्यंत क्रूर अधिकारी था। मेरी हिंसक वृत्ति को देखकर मुझे आज से ठीक एक वर्ष पूर्व भारत भेज दिया

गया। किन्तु भारतभूमि पर प्रथम कदम रखते ही न जाने ऐसा क्या चमत्कार हुआ कि मन से क्रूरता एवं हिंसक विचार विलुप्त होने लगे। दिन-प्रतिदिन मैं शांत होने लगा किंतु मुझे अपने जीवन में कुछ कमी लगती थी। मुझे लगातार ऐसा प्रतीत होता था कि कोई मुझे आवाज दे रहा है किन्तु कौन?'' सभी चुम्बक की भाँति घटनाक्रम से जुड़े हुए थे। अंग्रेज अधिकारी ही आगे बोला ''मैं पूरे भारत में भ्रमण करता रहा किंतु जब इस बालक को देखा तो ऐसा लगा मेरी यात्रा पूरी हो गयी है।''

लोगों के द्वारा स्वत: स्फूर्त तालियाँ बजने लगीं। अब किसी को कुछ कहने-सुनने की आवश्यकता नहीं रही। दोनों ने मिलकर सातगौड़ा की केशवापन क्रिया सम्पन्न की।

इस तरह बालक सातगौड़ा के जीवन की छोटी-मोटी घटनाएँ भी अलौकिक बन जाती थीं। उसको स्वस्थ एवं हष्ट-पुष्ट शरीर, दैहिक सौंदर्य, नेतृत्व क्षमता, दृढ़ता, गांभीर्य, शौर्य इत्यादि पुरुषोचित गुण पिता से धरोहर के रूप में मिले थे तो धार्मिकता, शांत-वृत्ति, मधुरता, सम्मोहन शक्ति उदारता इत्यादि गुण माता से प्राप्त हुए थे। इस बालक के अंदर बालकों जैसी कोई चपल-वृत्ति नहीं दिखती थी बल्कि बचपन से ही महापुरुषों जैसा विवेक परिलक्षित होता था। तीन वर्ष की उम्र तक सातगौड़ा में सर्दी-जुकाम जैसे आम रोग भी देखने में नहीं आए किन्तु इसके बाद न जाने सातगौड़ा को किसकी नजर लगी कि उसे एक भयानक रोग हो गया। रोग की भयावहता इस रूप में मापी जा सकती थी कि सातगौड़ा को रक्त विरेचन होने लगा। जिसने जो बतलाया वह सारे उपचार हो गए किन्तु सातगौड़ा की स्थिति बिगड़ती जा रही थी। जब उस अंग्रेज अफसर को यह समाचार मिला तो उसने कहा ''हम इन्हें लंदन लेकर जाएँगे।''

उसने तो विदेश जाने की औपचारिकताएँ प्रारंभ भी करवा दीं। इस बीच भारत के बड़े से बड़े डॉक्टर सातगौड़ा का निरीक्षण कर चुके थे। तभी एक दिन सुबह-सुबह किसी ने पाटिल साहब के घर पर दस्तक दी।

''देखना तो भला कि इतने सबेरे-सबेरे घर पर कौन आ गया।'' सत्यवती देवी ने सेविका से कहा।

''जी।'' कहकर वह बाहर आयी और एक पुड़िया लेकर अंदर पहुँच गई। सेविका ने सत्यवती देवी को पुड़िया सौंपी।

''ये क्या है?'' सत्यवती देवी ने साश्चर्य पूछा।

''मालकिन दवाई।'' सेविका ने सहजता से उत्तर दिया।

''पर किसकी?'' सत्यवती देवी ने प्रेमपूर्वक पूछा।

''छोटे बाबा की।'' सेविका सरलतापूर्वक एक-एक प्रश्न का उत्तर दे रही थी।

''किसने दी?'' माता सत्यवती यद्यपि अपनी धार्मिक क्रियाओं में संलग्न होना चाहती थीं किन्तु उन्हें सेविका पर खीझ नहीं आ रही थी।

''जो अभी आया था।'' सेविका सहज ही मालकिन के धैर्य की जैसे परीक्षा ले रही थी।

''हाँ वही, कौन था?'' सत्यवती देवी ने बहुत शांति से पुनः पूछा।

सत्यवती देवी भी वास्तविक धर्मात्मा थीं। उन्होने धर्म को मात्र क्रिया में नहीं आचरण में भी उतारा था। चिड़चिड़ापन, क्रोध, उत्तेजना, संक्लेश इत्यादि से उनकी बहुत दूरी थी।

''उसकी कमर झुकी नहीं थी पर फिर भी हाथ में लाठी थी। उसकी वेशभूषा स्त्री की थी किन्तु...।''

सेविका के इस किन्तु ने सत्यवती देवी की उत्सुकता बढ़ा दी। ''किन्तु क्या?'' उन्होंने पूछा।

''किन्तु उसके सारे लक्षण पुरुषोचित थे।'' वह आश्चर्य से भरी थी।

''अर्थात् दाढ़ी-मूंछ?'' सत्यवती देवी ने जैसे वाक्य पूरा किया या मनोविनोद किया, सेविका को स्पष्ट नहीं हो सका।

''नहीं मालकिन।'' सेविका बोली ''ढांचा स्त्री का ही था किन्तु वह बड़ी सबल और निर्भीक दिख रही थी, उसकी वाणी में दृढ़ता थी, शारीरिक शक्ति-सामर्थ्य में वह मल्ल की भाँति लग रही थी।''

''तूने मुझे बाहर बुलाया क्यों नहीं।''

''मैंने आपको बुलाने के लिए अंदर की ओर पैर बढ़ाए किन्तु उसने

मुझे रोक दिया। मैंने आपको वहीं से आवाज देनी चाही पर उसने मुझे वैसा करने से भी मना कर दिया।''

''पर क्यों?''

''वह बोली इसकी आवश्यकता नहीं है।''

''फिर?''

सेविका तो बोल रही थी किन्तु वार्ता में शामिल हो चुकीं अज्जी की उत्सुकता चरम पर थी अत: वे सम्पूर्ण घटनाक्रम को बहुत शीघ्र जान लेना चाहती थीं।

''बड़ी मालकिन उन्होंने मुझे ये पुड़िया थमाते हुए कहा। सोनुल को एक घंटे के अंदर खिला देना, वह शीघ्र स्वस्थ हो जायेगा।''

''सोनुल?'' अज्जी के मुख से मानो विस्मय निकल रहा था।

''नामकरण के पूर्व हम लोग सातगौड़ा को सोनुल नाम से पुकारते थे। पर आज उसे सोनुल से संबोधित करने वाला कौन आ गया?'' सत्यवती देवी ने सारे संबंधियों का स्मरण किया। पुरा-पड़ोसी, जान-पहिचान वाले अन्य सभी को भी ध्यान में लाने का प्रयत्न किया किन्तु उससे लाभ क्या था। इस वृद्धा को पहिले कभी किसी ने देखा ही नहीं था।

घर के सभी लोग जागृत हो चुके थे।

''सातगौड़ा को यह पुड़िया खिला देनी चाहिए।'' सत्यवती देवी ने कहा।

''पुड़िया में औषधि है या कुछ और?'' भीमगौड़ा जी ने आशंका व्यक्त की।

''वैद्य से परीक्षण करवा लेते हैं।'' अज्जा ने कहा।

''किन्तु समय सीमा?'' सत्यवती देवी बोलीं '' मैं इसका परीक्षण किए देती हूँ।'' उन्होंने थोड़ी सी औषधि को अपनी जिव्हा पर रख दिया।

फिर क्या था पाटिलजी ने स्वयं ही सातगौड़ा को औषधि खिला दी। क्षपक श्रेणी की विशुद्धि के प्रभाव से जैसे योगी त्रयोदश गुणस्थान को प्राप्त कर लेते हैं वैसे ही इस औषधि के प्रभाव से बालक सातगौड़ा स्वस्थ अवस्था

को प्राप्त हो गया। इसके उपरांत फिर कभी किसी ने उसे अस्वस्थ होते हुए नहीं देखा।

हाँ एक बार सातगौड़ा को एक सज्जन ने देखा तो वे उसे देखकर देखते ही रह गये। वय में वृद्धि के साथ उसकी देहयष्टि से प्रस्फुटित सौंदर्य की किरणें जन-जन को मोहित जो कर रही थीं। वह घर-परिवार ही नहीं ग्राम-ग्रामांतरों में भी आकर्षण का केन्द्र बना हुआ था। उम्र बहुत कम थी किन्तु शारीरिक सौष्ठव, रूप, कांति इत्यादि में वह किसी देवकुमार से कम नहीं लगता था, ऐसे में उन सज्जन ने मन ही मन एक स्वप्न संजो लिया ''इस बालक से अच्छा वर मेरी पुत्री के लिए और दूसरा कौन होगा?''

''तुम पागल हो गये हो क्या?'' तत्काल उसकी प्रज्ञा ने कहा।

''क्यों?'' उसने अनभिज्ञ बनकर पूछा।

''तुम्हें इसकी वय पता है?'' प्रज्ञा ने जैसे उसके कान पकड़ने के उद्देश्य से पूछा।

सातगौड़ा की नौ वर्ष और मेरी बिटिया की छह वर्ष।'' सज्जन ने बहुत उत्साह के साथ बतलाया।

वे अभी छोटे बच्चे हैं। पढ़ना-लिखना, भोजन-पान, खेल-कूद, बचपन यदि यहीं तक सीमित रहे तो अच्छा है।'' प्रज्ञा ने उसके प्रज्ञाचक्षु खोलना चाहे।

''हाँ विवाह भी तो एक प्रकार का खेल है।'' सज्जन ने कुछ वक्र हास्य के साथ कहा ''पहले अकेले-अकेले खेलते थे फिर एक साथी मिल जाने से दोनों मिल-जुलकर खेलेंगे।''

''क्या तुम विवाह का उद्देश्य जानते हो?'' प्रज्ञा ने अन्य तरीके से उसे सचेत करने का उपक्रम किया।

''तुम्हें जीवन का उद्देश्य ज्ञात है?''

प्रतिप्रश्न सुनकर प्रज्ञा चकित थी। वह कुछ नहीं बोली। ''मैं बतलाता हूँ।'' सज्जन जी बोले ''जो भी वस्तुएँ प्राप्त हो सकती हैं उन्हें पा लेना।''

प्रज्ञा चकित थी और निरुत्तरित भी। ''सातगौड़ा संसार की अमूल्य निधि है। उसे हर कोई पाना चाहता है फिर तो यह साधारण संसारी प्राणी है।

यह अपनी कन्या के बहाने उस महाविभूति का लाभ चाहता है, तब फिर मैं उसे रोकने वाली कौन?''

उस सज्जन ने अपनी प्रज्ञा का साथ पाकर पाटिल परिवार के समक्ष ऐसा प्रस्ताव रखा कि सातगौड़ा की अनिच्छा होने पर भी उस छह वर्षीय कन्या के साथ सातगौड़ा की वैवाहिक क्रियाएँ सम्पन्न हो गईं। सातगौड़ा का विवाह अवश्य हो गया था किन्तु उनका मन उससे बहुत ऊपर था। कोई तार्किक यह सोच सकता है कि उस उम्र में वे विवाह की उपलब्धि को क्या जानें?'' **यदि उनका यह विवाह उन्नीस वर्ष या उन्तीस वर्ष में भी होता तो भी वे विवाह को उपलब्धि नहीं उपसर्ग समझते। नौ वर्ष में भी उनका बौद्धिक स्तर किसी युवा से कम न था और युवावस्था में भी उनका मन सद्योजात बालक के समान निर्विकार था। तीनों लोकों पर विजय का उत्सव मनाने वाले मदन ने उनके समक्ष कभी शक्ति-प्रदर्शन का दुस्साहस नहीं किया। वे सदा ब्रह्मचारी रहे, अखण्ड ब्रह्मचारी, तीर्थंकर महावीर प्रभु के समान।** सज्जन प्रसन्न थे कि उन्होंने अब सातगौड़ा को पा लिया है किन्तु वे अपनी कन्या के गौना होने तक निश्चिंत नहीं थे। उनकी इच्छा शीघ्रातिशीघ्र कन्या को ससुराल भेज देने की थी। इस हेतु वे निरंतर प्रयत्नशील थे किन्तु कन्या की घर से विदाई होने के पूर्व ही जग से विदाई हो गई। एक क्षुद्र जीव के कष्ट को देखकर भी द्रवित होने वाले सातगौड़ा उस कन्या की मृत्यु से जैसे निरपेक्ष थे।

विषयजन्य सांसारिक संबंधों से असंपृक्त होने पर भी सातगौड़ा की संबंधों के प्रति गहरी संवेदनशीलता थी। एक बार छोटा भाई कुंभगौड़ा खेलते-खेलते पानी से भरे गड्ढे में गिर गया। सातगौड़ा की वय अभी कुछ अधिक नहीं थी, चौथी कक्षा के छात्र थे किन्तु उसने अपने जीवन की चिंता किए बिना तत्काल उस विशाल गड्ढे में छलांग लगा दी। अन्य लोग सहायतार्थ वहाँ पहुंचे उसके पूर्व ही सातगौड़ा कुंभगौड़ा को पानी से बाहर सुरक्षित ले आये।

इस घटना को लेकर माता सत्यवती तो बहुत आकुल-व्याकुल थीं ही पूरा परिवार बड़ा चिंतित था। ''कुंभगौड़ा बड़ा चंचल बालक है आज एक

दुर्घटना से उसकी रक्षा सातगौड़ा ने कर ली लेकिन आगे .... ?'' परिजन की इस चिंता ने सातगौड़ा के मन पर ऐसा प्रभाव डाला कि चौथी कक्षा के बाद उन्होंने विद्यालय जाना ही बंद कर दिया। माता-पिता ने बहुत समझाया, शिक्षक भी अपने मेधावी विद्यार्थी को किसी भी मूल्य पर विद्यालय में रखना चाहते थे किन्तु उस अपरिपक्व उम्र में भी सातगौड़ा के निर्णय वज्र की तरह होते थे। दीर्घकाल तक अपने अग्रज की छत्रछाया पाकर कुंभगौड़ा भी शांत, गंभीर एवं धर्मात्मा बन गया।

सातगौड़ा ने भले ही लौकिक शिक्षा से विदा ले ली थी किन्तु जैसे-जैसे उनकी वय बढ़ रही थी उनके गुण भी वर्धमान थे। धार्मिक ज्ञानाचरण के प्रति सदैव उत्साहित रहने वाले सातगौड़ा लौकिक क्षेत्र में भी अग्रिम स्थान रखते थे। उन्होंने देख-देखकर ही तैराकी सीख ली थी। प्रारंभ में नदी के किनारे-किनारे तैराकी करते थे किन्तु फिर एक दिन उनके मन में वेदगंगा एवं दूधगंगा के संगम में तैराकी का विचार आया। उन्होंने मार्ग पर मित्रों को बतलाया तो एक मित्र ने सोचा ''इसके मन में जो बात आ गई वह ये करके ही रहेगा। इसके चक्कर में कहीं हम बेमौत न मारे जाएँ।'' किन्तु उसने कहा ''पाटिल मुझे कुछ आवश्यक काम याद आ गया है इसलिए मैं जा रहा हूं।''

जबकि दूसरा मित्र संकोच में चाह कर भी लौट न सका किन्तु मन ही मन भयभीत हो रहा था।

''क्या तुम्हें भी कोई आवश्यक काम करना है ?'' सातगौड़ा ने मुस्कुराते हुए पूछा।

''नहीं, हां, नहीं।'' मित्र स्वयं नहीं समझ पा रहा था कि वह क्या कह रहा है।

''इतने भयभीत क्यों हो रहे हो।'' सातगौड़ा ने उसके कंधे पर हाथ रखा।

''संगम पर नदी का कितना वेग होता है इसकी जानकारी है तुम्हें ?'' अंततः मित्र ने संकोच छोड़कर अपनी बात कही।

''वह तो संगम में जाने पर ही मिलेगी न।'' सातगौड़ा खिलखिलाकर हंस पड़े।

''पाटिल तुम्हें घर से स्वतंत्रता मिली है तो उसका अनावश्यक दुरुपयोग नहीं करना चाहिए।'' मित्र रुका फिर आगे बोला ''और न अपने साहस को दु:साहस की सीमा तक ले जाना चाहिए।''

पीछे आते हुए भीमगौड़ा जी ने यह बात सुन ली। वह सातगौड़ा की ओर देखते हुए बोले ''मित्र के परामर्श पर कहीं विचार बदल तो नहीं दिया।''

बाबा की अनुमति मिलते ही सातगौड़ा का जोश दोगुना बढ़ गया। वह सावधानी पूर्वक तैरते हुए संगम के निकट पहुंच गये।

''मित्र का कहना सत्य था। यथार्थ में वेग बहुत अधिक है।'' सातगौड़ा के मन में विचार आया।

''डर गए क्या?'' बिंब ने कटाक्ष किया।

''सत्य के आकलन और भय में बड़ा अंतर होता है महोदय।'' सातगौड़ा ने उसी की शैली में उत्तर दिया।

''कथंचित ठीक कहा तुमने किन्तु यह भी अवश्य ध्यान रखना, सत्य के आकलन और सत्य से साक्षात्कार में भी उतना ही अंतर होता है।''

''हाँ मैं भी सहमत हूँ किन्तु सत्य का अनुभव किए बिना उसका साक्षात्कार भी तो नहीं हो सकता।'' सातगौड़ा संगम के मध्य में पहुंच चुके थे।

बिंब ने किसी अनहोनी की आशंका से आँखें मींच ली। जल का वेग बहुत अधिक था। सातगौड़ा ने सोचा **''जिस तरह पाप का वेग अधिक होने पर बिना घबराए शांत रहना श्रेयस्कर होता है उसी तरह यहां वेग की तीव्रता में उसके विरोध में शक्ति नष्ट करने की अपेक्षा शांति से मार्ग बना लेना ही उचित है।''**

''इस संगम में तैराकी करने बड़े-बड़े तैराक आए और असफल होकर पीछे हट गए किन्तु ये एक नौसिखिया आया और प्रथम ही अवसर में विजयी हो गया।'' ग्राम-ग्रामांतरों में चर्चा का विषय बना हुआ था।

''सातगौड़ा पुण्यात्मा जीव है इसलिए बिना श्रम किए प्रकृति भी उसके अनुकुल हो जाती है।'' एक अन्य ग्रामीण ने अपना विचार व्यक्त

किया।

''हाँ भैया तुम्हारा कहना सच है। इसका जीवन तो प्रारंभ से ही चमत्कारों से भरा हुआ है। देवी-देवता जैसे उसकी सेवा की प्रतीक्षा में ही रहते हैं।'' दूसरे ने अपना मंतव्य प्रकट किया।

''यह तो पाटिल की योग्यता के साथ न्याय नहीं हुआ जी।'' एक पुरुषार्थवादी ग्रामीण जो बहुत समय से ये सब बातें सुन रहा था ने कहा ''भाग्य नहीं होता ऐसा मैं नहीं कह रहा, दैविक शक्तियाँ यदि उपस्थित भी होती हैं तब भी वे हम सबके लिए अदृश्य ही रहती हैं किन्तु जो प्रत्यक्ष है, जिसे देख सकते हैं, जिसे हम पकड़ सकते हैं, उसकी अवहेलना करना उचित है क्या?''

''तुम क्या कहना चाह रहे हो?'' पहिले वाले व्यक्ति ने प्रश्न किया।

''एक, पचासों बार अभ्यास करता है किन्तु अपनी पिछली त्रुटियों से शिक्षा लेकर उसे अपनाने में बहुत काल व्यतीत कर देता है और एक कब, कहाँ, कैसा, कितना कार्य करना है यह एक-दो अभ्यास में ही समझ लेता है।'' वह व्यक्ति एक कुशल आधुनिक प्रवक्ता की भाँति अपनी व्याख्या कर रहा था। **''श्रम, सामर्थ्य, साहस, समय के साथ-साथ यदि परिपक्व पर्यवेक्षण जहाँ एक साथ पाए जाएँ उसे हम सातगौड़ा कह सकते हैं।''**

सातगौड़ा के कानों तक भी अपनी प्रशंसा के गीत पहुंच जाते थे किन्तु वह प्रशंसा उनके लिए महत्वपूर्ण नहीं होती थी। सामान्य संसारी प्राणी, जिस तरह अपनी निंदा से दूर भागते हैं सातगौड़ा उसी भाँति स्वभावत: अपनी प्रशंसा की अवहेलना कर देते थे। भद्र-स्वभावी होने के साथ-साथ सातगौड़ा पर जिनवाणी माता की कृपा भी बरसने लगी थी, सातगौड़ा नियमित स्वाध्याय करते थे। मलगौड़ा, सातगौड़ा की स्वाध्याय कक्षा का नियमित श्रोता था। सदा प्रसन्न रहने वाले मलगौड़ा के ललाट पर पिछले अनेक दिनों से सातगौड़ा को विषाद की रेखाएँ दिख रही थीं। सातगौड़ा ने अनेक बार उससे कारण जानना चाहा किन्तु वह हंसकर बात टाल देता था। उसकी धर्म-क्रियाओं में कोई कमी नहीं थी। बल्कि इन दिनों वह कुछ लंबे समय तक पूजा-पाठ करता

रहता था। खेत में जाता तो वहां कृषि-कर्म की जगह चिंतन-मुद्रा में बैठा रहता। बस स्वाध्याय के उपरांत उसे वहां से निकलने की शीघ्रता होती। ऐसा लगता था कि एकाकी होना अधिक पसंद करने लगा था वह।

मलगौड़ा स्वाध्याय पर नियमित आता था पर बिना पूर्व सूचना के आज स्वाध्याय प्रारंभ भी हो गया किन्तु वह नहीं आया। सातगौड़ा शास्त्र-वाचन कर रहे थे परंतु उनका मन मलगौड़ा के विषय में चिंतनशील था। ''उसे आर्थिक परेशानी तो है नहीं। बीघाओं उपजाऊ भूमि है, अथाह पैतृक धन-संपत्ति है फिर ?''

''भैया एक बार फिर से बतला दीजिए।'' श्रोता ने कहा।

''क्या ?'' सातगौड़ा की चिंतनधारा भंग हुई। ''आपने क्या कहा, जरा फिर से....।''

श्रोता ने अपना वाक्य दुहरा दिया किन्तु वह स्वयं चिंतनमग्न हो गया ''सदैव प्रसन्न रहने वाले हमारे भैया आज कुछ चिंतामग्न दिखलाई पड़ रहे हैं।''

सातगौड़ा ने अपने उपयोग को जिनवाणी में एकाग्र करने का प्रयास किया किन्तु वह फिर से मलगौड़ा की ओर चला गया।

''उसके माता-पिता हैं नहीं, पत्नी न केवल धर्मात्मा है अपितु वह पति की प्रत्येक बात को सर आँखों रखती है। बच्चे भी सुशील एवं संस्कारी हैं तो फिर ...... ?''

''भैया आपका स्वास्थ्य तो ठीक है ?'' एक अन्य श्रोता ने पूछा।

''हां बहुत उत्तम।'' सातगौड़ा का यह अर्ध-वाक्य सुनकर श्रोता कुछ संतुष्ट हुआ किन्तु यदि वह पूर्ण वाक्य बोलते तो ''हाँ बहुत उत्तम प्रश्न पूछा।'' ऐसा होता।

सातगौड़ा ने सरस्वती माता से क्षमा मांगते हुए स्वाध्याय बीच में ही बंद कर दिया। वे सीधे मलगौड़ा के घर पहुँचे।

''काका.......।'' सातगौड़ा ने आवाज दी।

''भैया, वे तो घर पर नहीं हैं, स्वाध्याय में नहीं पहुँचे क्या ?'' मलगौड़ा

की धर्मपत्नी ने ही प्रतिप्रश्न कर दिया।

''काका वासा करके कब निकले?''

''कह रहे थे आज व्रत है।''

''अर्थात् वह खेत पर हो सकते हैं।'' सातगौड़ा के मन में आया। उनका स्थिर मन किसी अनिष्ट की आशंका से कुछ विचलित हो रहा था अत: वे तुरंत खेत की ओर भागे। खेत पहुंचते ही जो दृश्य सामने था वह यथार्थ में भयावह था। क्षण एक के लिए जैसे सातगौड़ा का विशाल मन-सागर विचारों के जल से रिक्त हुआ जान पड़ा। बिना कुछ सोचे उन्होंने मलगौड़ा को कसकर पकड़ लिया।

''भैया, मुझे मत रोको।'' मलगौड़ा ने करुण निवेदन किया।

फंदे की रस्सी गले से हटाते हुए वह बोले ''सृष्टि स्वत: चल रही है। उसे न मैं रोक सकता हूँ और न ही आपको रोकने का प्रयत्न करना चाहिए काका।'' सातगौड़ा ने सस्नेह पूछा ''काका जीवन अमूल्य है ऐसा जानते हुए भी आप उसे क्यों कर समाप्त करना चाहते थे?''

''भैया..........।'' मलगौड़ा के मुख से कठिनाई पूर्वक इतना ही निकल पाया।

''प्रचुर धन संपदा, पारिवारिक अनुकूलता, सामाजिक पद प्रतिष्ठा होने पर भी आपके जीवन में ऐसी क्या कमी थी अथवा कौन सी समस्या थी जिसने आपको आत्मघाती कदम उठाने के लिए विवश कर दिया?''

'' हाँ भैया।'' मलगौड़ा ने मानों दीर्घ श्वांसों के द्वारा साहस बटोरना चाहा था। वह बोला ''एक साधारण व्यक्ति सुख सुविधाओं के जिन साधनों की अपेक्षा करता है, वह सब मेरे पास हैं। किन्तु भैया साधनों में तो सुख नहीं होता?'' जैसे मलगौड़ा ने प्रश्न किया, पर उसके ओंठ बंद नहीं हुए। ''मैंने सब प्रकार के साधनों का भाव एवं बुद्धि पूर्वक उपभोग किया किन्तु उनमें मुझे अभी तक कोई रस नहीं आया। इस हेतु मैंने सभी धर्मायतनों पर श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक दस्तक भी दी किन्तु कहीं कुछ सारभूत पदार्थ नहीं मिला। हाँ भैया मुझे अभी तक जीवन में ऐसा कुछ नहीं मिला जो आत्मिक तृप्ति प्रदान कर सके।''

''तो क्या मृत्यु में सार है ?'' सातगौड़ा समझ चुके थे कि मलगौड़ा गहरे अवसाद में है।

वह नि: शब्द हो गया। लगा कि उसके जड़ विचारों पर किसी शक्ति ने दृढ़ प्रहार कर उसमें गति पैदा कर दी हो। ''तो क्या जीवन में सार भी है ?'' उसने आशा के साथ पूछा।

''हाँ'' मलगौड़ा को अवसाद से निकालने के लिए सातगौड़ा ने इस हाँ में अपनी पूरी सकारात्मक ऊर्जा भर दी।

''कहाँ।'' वह जानने के लिए अधीर था अत: सातगौड़ा वाक्य पूर्ण करें उसके पूर्व ही मलगौड़ा के मुख से निकल गया।

''स्वयं में।'' सातगौड़ा की वाणी में गहन गांभीर्य था।

मलगौड़ा ने साश्चर्य देखा।

सातगौड़ा आगे बोले ''इस जीवन में, मृत्यु के परे अगले जीवन में, जीवन की अनंत शृंखलाओं में जो एकमात्र स्थायी वस्तु है, वह है हमारा जीव तत्त्व। उसी जीव के अंदर सुख का अक्षय स्रोत है। काका आपने जो अभी कहा था कि साधनों में सुख नहीं होता तो आपका कहना बिल्कुल सत्य है। यह जीव अज्ञान दशा में आत्मिक सुख से अपरिचित रहकर बाह्य साधनों में सुख की खोज करता है, जहाँ उसे निराशा हाथ लगती है।''

''भैया सारभूत वह वास्तविक सुख कैसे मिल सकेगा ?''

''जिन वचनों पर श्रद्धान, ज्ञान तदोपरांत उनको आत्मसात करने से, जीव अपने साध्य को प्राप्त कर सकता है।''

''आपके वचन मुझे अमृत के समान लग रहे हैं।'' मलगौड़ा को जीवन जीने का आधार जो मिल गया था अत: वह अहोभाव से ओतप्रोत था।

''काका ये मेरे नहीं जिनेन्द्र प्रभु के वचन हैं जो अमृत ही हैं। जो इन्हें ग्रहण कर लेता है वह निश्चय एक दिन अमरता को प्राप्त कर लेता है।''

इस तरह सातगौड़ा, मलगौड़ा को न केवल यमराज के मुख से खींचकर बाहर ले आए अपितु उसे गृहीत अगृहीत मिथ्यात्व रूपी महामल्ल के चंगुल से भी छुड़ाकर ले आए।

मलगौड़ा सपत्नीक आभार व्यक्त करने सातगौड़ा के घर पहुंचा तो समस्त वृत्तांत जानकर परिजनों को हर्ष भी हुआ किन्तु पिताजी कुछ खेद

खिन्न नजर आए।

''बेटे की प्रशंसा सुनकर प्रसन्नता नहीं हुई?'' कक्ष में पहुंचने पर सत्यवती देवी ने पूछा।

''ऐसा कौन पिता होगा जिसका मन संतान की प्रशंसा और प्रसिद्धी से रोमाञ्चित न होता हो? मेरा भी रोम-रोम पुलकित हो रहा है किन्तु ......।'' भीमगौड़ा जी ने नि:श्वास छोड़ा।

''किन्तु क्या?'' सत्यवती देवी ने साश्चर्य पूछा।

''कुंभगौड़ा की देखरेख के नाम पर लौकिक शिक्षण छूट गया। दुकान भेजा तो वहाँ शास्त्र-सभा चलने लगी और अब ये समाज-सेवा?''

''मलगौड़ा अपना ही संबंधी है। उस एक की रक्षा से कितने लोगों का भला हो गया। देखा नहीं उसकी पत्नी की आँखों में, कैसी खुशी दिख रही थी। वह जाते-जाते कह रही थी कि सातगौड़ा भैया ने हमारे पति को ही नहीं बचाया अपितु हमें एवं हमारे बच्चों के भविष्य को भी सुरक्षित कर दिया है।''

''किन्तु तुम्हारे लाडले का भविष्य?'' भीमगौड़ा जी की ध्वनि में किंचित रोष था। ''दुकान पर कोई ग्राहक आता है तो कह देता है, कपड़ा लेना है तो अपने मन से पंसद कर लो, अपने हाथ से नाप लो और जो देना हो बही में लिखकर तिजोड़ी में डाल दो।'' सत्यवती देवी को हँसी आ जाती है।

''कहीं हमारी ही जग-हंसाई न हो जाए।'' भीमगौड़ा जी को धर्मपत्नी की हंसी पर क्रोध कम निराशा अधिक हुई।

''हम सब जानते हैं। वह तो बचपन से ही दयालु प्रवृत्ति का है।'' सत्यवती देवी ने गंभीरता पूर्वक कहा।

''किन्तु हमें उसे देवता नहीं मनुष्य बनाना है।'' भीमगौड़ा जी स्वयं ही नहीं समझ पाए कि वे कितनी ऊंची आवाज में बोल गए। घर परिवार के सदस्यों के एकत्रित होने पर सत्यवती देवी ने सभी को यह कहकर विदा कर दिया कि ''इन्होंने कोई स्वप्न देख लिया था।'' वह गंभीरतापूर्वक किन्तु सहजता में अपने पति से बोलीं ''उसे खेत भेज दिया करिए।''

''स्थान परिवर्तन से क्या होगा, मन तो उसका वही है।'' भीमगौड़ा जी

ने ऐसा सोचा किन्तु बोले ''ऐसा भी करके देख लेते हैं।''

पति के निराशा मिश्रित वचन सुनकर सांत्वना देती हुई सत्यवती देवी बोलीं ''प्राय: स्थान बदलने से मन भी बदल जाता है।''

भीमगौड़ा जी ने सोचा ''इसने मेरे मन का भाव जान लिया।'' अत: उनके चेहरे पर मुस्कान छा गई।

सत्यवती देवी सोच रही थीं कि ''पतिदेव को उनका सुझाव अच्छा लगा है अत: उनकी मुस्कान उनकी संतुष्टि की द्योतक है।''

किसने किसके मन की बातें जानी यह शोध का विषय है किन्तु खेत पर जाने से सातगौड़ा को बोध हुआ कि वहां जाति-पाति के नाम पर वह सब हो रहा है जो नहीं होना चाहिए। वे अपने खेत पर कृषि कार्य सीख रहे थे तो उन्हें गणू ज्योति दमाले के खेत से कुछ आवाजें सुनाई दीं।

''तुमने मेरे कुआं की पाट पर चढ़ने का साहस कैसे किया।'' दमाले ने क्रोध में कहा।

''मालिक बहुत जोरों की प्यास लगी थी।'' हरिजन ने विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया।

''तुझे प्यास लगी है तो मैं क्या करूं?'' वह तमतमाकर बोला ''यदि मेरी नजर इस ओर न पड़ती, तो तू मेरे कुआं के पानी को अपवित्र कर चुका होता। दुष्ट कहीं का, चल भाग यहाँ से।'' दमाले ने डंडा दिखाया।

''ऊँ ची जाति में क्या कोई मनुष्य पैदा नहीं होता?'' कहता हुआ दु:खी मन से हरिजन वहां से भागा तो पाया सामने सातगौड़ा पाटील खड़े हैं। उसे लगा ''आज वह नहीं बचने वाला।''

''काका प्यास लगी है?'' सातगौड़ा की वाणी में आत्मीयता थी।

हरिजन आश्चर्यचकित था, मुंह से कोई शब्द न निकल सका किन्तु आँखों ने अपनी बात कह दी।

''अरे! तो अपना कुआं है न यहीं। चलो।''

उस हरिजन को न केवल वहाँ आत्म-सम्मानपूर्वक पानी पीने मिला अपितु सातगौड़ा ने अपने लिए लाए भोजन को उसे खिला दिया। हरिजन का

मन सातगौड़ा के लिए श्रद्धा से भर गया। उसे अपने उस वाक्य पर खेद भी था कि उसने पूरी उच्च जाति को कठघरे में खड़ा कर दिया था। वह कुछ शब्दों से और कुछ संकेत से कृतज्ञता ज्ञापित करता हुआ वहां से चला गया किन्तु यह सब दृश्य देख रहे दमाले के मन में आग सी लग गई।

''सातगौड़ा ये तुमने ठीक नहीं किया?'' दमाले ने सातगौड़ा के निकट आते हुए कर्कश वाणी में कहा।

''काका, प्यासे को पानी पिलाना अनुचित है ?'' सातगौड़ा के प्रतिप्रश्न की दृढ़ता ने दमाले को जैसे टक्कर दी।

दमाले बोला ''आज तुमने उसे अपने कुआं पर आने की अनुमति दी, कल वह बलात् मेरे कुआं पर आयेगा।'' बात यहीं समाप्त नहीं होगी, आगे वे हमारे घरों में प्रवेश चाहेंगे, समझे।

''काका आप कितना सोचते हैं।'' सातगौड़ा ने एक मुस्कान दी और अपने काम पर लग गया। इससे दमाले का क्रोध शांत होने के स्थान पर और बढ़ गया। उसने सातगौड़ा के घर जाकर माता-पिता से शिकायत की तो वहाँ भी मनोनुकूल प्रतिक्रिया नहीं मिलने पर उसके मन में सातगौड़ा से प्रतिशोध लेने का भाव जागृत हो गया।

बुद्धि की संकीर्णता से उत्पन्न हुआ प्रतिशोध एक ऐसा विकारी भाव है जो तब उत्पन्न होता है जब हम सामने वाले को किसी न किसी स्तर पर अपने समकक्ष मान लेते हैं। **सामने वाला गलत है इस धारणा से प्रेरित होकर क्रोध उत्पन्न हो जाता है जो क्षणिक होता है अत: उतना अहितकारी नहीं होता है किन्तु सामने वाला मेरा गलत चाहता है ऐसी एकांत धारणा बना लेने से उत्पन्न प्रतिशोध की भावदशा से अधिक हानिकारक संसार में न कोई दूसरा भाव है और न वस्तु।** किन्तु तब दमाले को समझ नहीं आया। जबकि उसे यह भलीभाँति पता था कि वह बुद्धि, वैभव, सामर्थ्य, पुण्य इत्यादि में किसी भी प्रकार सातगौड़ा से बहुत दूर है।

एक दिन सातगौड़ा प्रात:काल की शौच क्रिया के उपरांत लौट रहे थे तभी सामने से दमाले भी आ रहा था। सातगौड़ा ने उसे सस्मित नेत्र देखा किन्तु दमाले ने कलुषित चित्त हो आँख फेर ली। सातगौड़ा के मन में आया

कि **''सर्प के मुख में जाते हुए मेंढक की रक्षा तो की जा सकती है किन्तु प्रतिशोध से इस प्राणी की रक्षा करना बहुत कठिन है।''** वे ऐसा सोच ही रहे थे कि तभी उन्हें पगडंडी पर एक सर्प दिखा। सामने ही एक छोटा सा मेंढक फुदक रहा था। उन्होंने ध्यान पूर्वक सांप के मुख को देखा तो उन्हें लगा कि ''यदि तत्काल कोई उपाय नहीं किया गया तो मेंढक का जीवन ..... ?'' वह हाथ में एक लोटा लिए हुए थे जो उन्होंने वहीं पास में पड़े एक पत्थर पर पटक दिया। नागराज भय से ही भागा हो ऐसा एकांतत: नहीं कहा जा सकता है, कथंचित वह सातप्पा स्वामी (सातगौड़ा) की दयाभावना को समझकर वहां से चला गया हो, ऐसा भी हो सकता है। मेंढक भी अपनी विधि से अपने रक्षक के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित कर जा चुका था किन्तु दमाले के प्रतिशोध ने प्रतिहिंसा का रूप धारण कर लिया। कुछ ही दिन बाद दमाले को खेत पर एक सर्प दिखा, किन्तु तब दमाले ने उस ओर अधिक ध्यान नहीं दिया। वह अपने काम पर लग गया। संयोग से उसी समय दमाले को सातगौड़ा के पदचाप सुनाई दिए। उसने तत्क्षण हिंसक भाव से एक लोह-शस्त्र सर्प पर दृढ़तापूर्वक फेंका। तब तक सातगौड़ा भी वहां पहुँच चुके थे। इस दृश्य को देखकर उनका मन द्रवित हो गया। वे भीगे स्वर बोले ''यह कुलीन मनुष्य का काम नहीं है काका। आपने यह अच्छा नहीं किया।'' कहकर सातगौड़ा वहां से चले गए किन्तु दमाले के मन में विचारों का बवंडर उठ गया।

''अहो! मैंने यह क्या कर दिया?'' वह वहीं मृत सर्प के निकट बैठ गया। ''भैया मैंने सचमुच अच्छा नहीं किया। मैंने एक प्राणी के जीवन को नष्ट कर दिया, तब जब वह मुझे कोई हानि नहीं पहुंचा रहा था।'' उसके नेत्रों से पश्चाताप के आंसू बरसने लगे।

''तुम्हारी अल्पकाल की संगति के प्रभाव से अन्यमती रुद्रप्पा ने भी अहिंसा को हृदय से स्वीकार कर लिया है और मैं? मैं कितने दीर्घकाल से तुम्हारे सदाचरण को निकटता से देख रहा हूँ किन्तु........।'' दमाले के स्मृतिपटल पर पिछली घटनाएँ चलचित्र की भाँति चलने लगीं। ''जब पहिले

दिन तुम खेत पर आए थे तब मैंने अपने खेत के पक्षियों को उड़ाया तो वे तुम्हारे खेत पर चले गए। वे तुम्हारे खेत की फसल चुग रहे थे और तुम उन्हें सस्नेह देख ऐसे संतुष्ट हो रहे थे कि जैसे कोई माता अपने बच्चों के भोजन करने पर होती है।'' ज्येष्ठ की कड़क धूप हो चुकी थी किन्तु उसका मन वर्तमान में नहीं था उसे पता ही नहीं चल रहा था कि वह पसीने से तरबतर हो चुका है और संवेदनाओं से भी।

''जब उनकी इस वृत्ति को देखकर अनेक दिन हो गए तो मुझसे रहा नहीं गया। मैंने कहा पाटील। हाँ उस समय तक मेरे मन में उनके प्रति कोई दुर्भाव उत्पन्न नहीं हुआ था। मैं एक सामान्य कृषक था और वे यथार्थ में गांव के मुखिया के पुत्र।''

''हम सदैव अपने खेत के सब पक्षियों को तुम्हारे खेत पर भेजा करेंगे।''

वे सस्मित बोले ''तुम भेजो।''

वे अपना वाक्य पूरा करते उसके पूर्व ही मैंने आतुरतापूर्वक कहा ''वे तुम्हारे खेत का सब अनाज खा लेंगे।'' उनके चेहरे पर मंद-मुस्कान थी। सातगौड़ा की इस मधुर मुस्कान के स्मरण से दमाले के खेदखिन्न मन को कुछ शांति मिली। अत: वह पुन: स्मृति सरोवर में डुबकी लगाने लगा।

''यदि कमी पड़ जायेगी तो फिर कोठे से निकालकर ले आयेंगे।'' हालांकि वे कुछ बोले नहीं किन्तु उनकी मुख-मुद्रा देखकर मैंने ऐसा अनुमान लगा लिया। उन्होंने पक्षियों के पानी पीने की भी उचित व्यवस्था कर रखी थी। पक्षी निर्भय होकर अनाज खाते और जी भर कर पानी पीते। मैंने उन्हें छेड़ते हुए कहा '' पाटिल, यदि तुम यथार्थ में पक्षियों पर दया रखते हो तो झाड़ पर पानी क्यों नहीं रख देते?''

''ऊपर पानी रख देने से पक्षियों को दिखेगा नहीं इससे नीचे रखते हैं।'' उन करुणावतार के इस उत्तर को सुनकर जाने तो कैसा लगा था मुझे। पर क्यों कर मैं दुर्बुद्धि भटक गया।

दमाले को अपने कृत्य पर बहुत खेद था अत: वह छटपटा रहा था कि तभी किसी ने उसके कंधे पर हाथ रखा।

''भैया......।'' मुख से तो उसके बस यह एक शब्द ही निकला किन्तु भावना के स्तर पर हृदय से बहुत कुछ निकल गया था।

''चलो।'' सातगौड़ा ने सस्नेह कहा।

''भैया कहां......... ?'' दमाले का यह प्रश्न नहीं था बल्कि वह कहना चाह रहा था कि भैया कहां चलना है चलो, मैं तैयार हूँ।

''अहिंसा धर्म की ओर।'' रुद्रप्पा जो अपने मित्र सातगौड़ा से मिलने खेत चला आया था ने सातगौड़ा की ओर से कहा।

सातगौड़ा के नेत्रों में एक अलौकिक प्रकाश था, उनके आनन पर फैली स्मित भी अपूर्व थी। अहिंसा धर्म की शरण में आकर दमाले को जैसे जीवन का स्थायी आधार मिल गया। साथ ही साथ सत्य-भाषण, अचौर्य, सदाचरण इत्यादि से भी दमाले को प्रीति हो गई।

''सातगौड़ा की सन्निधी से जैसे आज दमाले का जीवन परिवर्तित हो गया वैसे ही मेरा भी....।'' रुद्रप्पा को अतीत के झरोखे में सब कुछ स्पष्ट दिखने लगा।

''सातप्पा की शास्त्र सभा चल रही थी। मैं अपने पड़ोसी के साथ यूं ही उसमें पहुँच गया।''

''जो-जो वस्तुएँ हमें दिख रही हैं वे हमारे देखते-देखते भी मिट ही रही हैं।'' बहुत करुणाबुद्धि से सातप्पा ने आगे कहा'' प्रति समय चल रही जगत् की इस विनाशलीला को देखकर भी यह जीव क्यों कर उससे मुख मोड़े रहता है।'' उन्होंने संसार की अनित्यता की बहुत मार्मिक व्याख्या की ''हाँ, बिल्कुल सत्य है कि स्वप्न के सत्य की भाँति जगत् का सत्य, मिथ्या है। हमने भी अपने मत में यही तो पढ़ा है कि जगत् के क्रियाकलाप मात्र माया हैं किन्तु मैं अद्वैत ब्रह्मस्वरूप हूँ, सदाशिव हूँ।'' मेरे चिंतन से बाहर आते ही मुझे सुनाई दिया कि सातप्पा आज की सभा का उपसंहार कर रहे हैं।

''इस पर्यायबुद्धि को छोड़कर जीव को द्रव्यदृष्टि का आश्रय लेना चाहिए।''

''पर्यायबुद्धि और द्रव्यदृष्टि ये दो शब्द मेरे लिए बिल्कुल नए थे किन्तु जिज्ञासा होने पर भी संकोचवशात पूछ न सका और फिर इस जिज्ञासापूर्ति

के लिए क्रम चालू हो गया शास्त्र सभा में प्रतिदिन आने का। और अब तो वर्षों व्यतीत हो गए। अब उसके लिए सातप्पा सामान्य व्यक्ति नहीं रहे वे स्वामी जैसे हो गए हैं। वह अपने स्वामी के साथ जगत् और शिवस्वरूप पर घंटों चर्चाएँ करता एवं फिर एकांत में उनका चिंतन करता।''

रुद्रप्पा स्मृतियों से बाहर निकला तो उसने वर्तमान का अभिनंदन किया। जगत् माया और जीव शिव-स्वरूप होते हुए भी वह क्रिया निरपेक्ष नहीं हो सकता था। द्रव्य एवं भाव दोनों प्रकार से वह अहिंसा धर्म धारण कर चुका था। रात्रि में भोजन नहीं करना, पानी छानकर पीना, भोजन की शुद्धि इत्यादि क्रियाएँ सातप्पा को देख-देखकर स्वत: ही उसके आचरण का हिस्सा बन चुकी थीं। वह व्यर्थ के आलापों से दूर रहने के लिए एकांत का आश्रय लेता था।

सातगौड़ा एवं रुद्रप्पा दोनों के बीच वैचारिक साम्य होने से मित्रता का भाव स्थापित हो गया था। उनके मध्य जीव विषयक चर्चाएँ घंटों-घंटों तक होती रहती थीं। व्यवधान से बचने के लिए वे एकांत की तलाश में कहीं दूर निकल जाते थे। सवेरे-सवेरे भोज से आठ मील दूर पट्टनकुडी जाकर पार्श्वनाथ उपाध्याय से जिनागम का अध्ययन करते एवं जब लौटकर आते तो खेत पर मात्र औपचारिकता के लिए जाते। भीमगौड़ा जी ने देखा कि उनका यह प्रयोग भी असफल हो गया है तो उन्हें बड़ी निराशा हुई।

''यूं हताश होकर बैठने से कुछ नहीं होगा।'' सत्यवती देवी ने कहा।

''हमारा होनहार बेटा, हमारी आँखों के सामने हमसे दूर होता जा रहा है और हम कुछ नहीं कर पा रहे हैं।'' भीमगौड़ा जी का फौलादी शरीर एवं कठोर मन आज बिल्कुल ढीला और निस्तेज दिख रहा था।

सत्यवती देवी ने पति की ऐसी अवस्था कभी न देखी थी, तब जब बड़ी-बड़ी प्रतिकूल परिस्थितियाँ निर्मित हुई थीं और तब भी जब सातगौड़ा की मरणासन्न अवस्था हुई थी। उन्हें जीवन में पहली बार अनुभव हुआ था कि माँ की ममता से पिता का स्नेह अल्पतर नहीं है।

''उसका विवाह करवा दें तो ?'' सत्यवती देवी स्वयं भी अपने समाधान

से आश्वस्त नहीं थीं फिर भी पति में आशा जगाने के उद्देश्य से उन्होंने कहा ''गृहस्थी का भार पड़ते ही स्वयमेव उसकी दिशा बदल जायेगी।''

''क्या ऐसा संभव है?'' भीमगौड़ा जी ने बड़ी-बड़ी आँखों से अपनी पत्नी की ओर देखा।

''आज्ञाकारी पुत्र है वह आपका।''

भीमगौड़ा जी को पत्नी के वाक्य पर हंसी आ गई। सत्यवती देवी पति को प्रसन्नमुख देखना चाहती थीं। अत: वार्ता का उद्देश्य पूर्ण हो गया था। हालांकि उन्हें भी ज्ञात था कि किसी डिबिया में प्रकाश को बंद करके रखने जैसी ही कल्पना है यह, किन्तु माता-पिता अपने कर्त्तव्य से पीछे भी तो नहीं हट सकते थे।

घोड़े के पदचापों की आवाज सुनकर भीमगौड़ा जी द्वार से बाहर आ गए। पिता के चेहरे की मुस्कान देखकर सातगौड़ा को आश्चर्य हो रहा था। ''आज क्या बात है? मेरे विलंब से आने पर जो सदैव अप्रसन्न रहते थे वे आज मानो मेरा किसी विशिष्ट अतिथि की तरह स्वागत कर रहे हैं।'' सोचते हुए सातगौड़ा घोड़े से नीचे उतर गए।

''जब नया-नया आया था तो कितना परेशान करता था लेकिन अब तो तुम्हारा बिल्कुल पक्का साथी हो गया है।'' भीमगौड़ा जी ने घोड़े की ओर घास डालते हुए कहा।

''जी......।'' सातगौड़ा के चरम विस्मय ने उनके शब्दों को जैसे नियंत्रित कर लिया था।

सातगौड़ा से इधर-उधर की चर्चाएँ करते हुए, भीमगौड़ा जी बोले ''कल कुछ अतिथि आने वाले हैं इसलिए घर पर रहना।''

''जी कौन?''

भीमगौड़ा जी के संकोच को समझते हुए निकट आती सत्यवती देवी ने उनका परिचय दिया।

''बेटा, हम लोगों का वृद्धावस्था में प्रवेश हो चुका है। श्वासों का कोई भरोसा नहीं, जाने कब थम जायें। भीमगौड़ा जी ने सातगौड़ा की गंभीर होती

मुखमुद्रा को देखा, फिर आगे बोले ''यद्यपि तुम भाइयों में परस्पर में बड़ा प्रेम है लेकिन भविष्य किसने देखा। इसलिए तुम भी अपना परिवार बसा लो।''

''बाबा आपने सत्य कहा श्वासों पर विश्वास नहीं किया जा सकता। मृत्यु न वृद्ध को देखती है, न बालक को और न युवा को। जीवन जब अत्यंत अविश्वसनीय एवं विनाशीक ही है तब फिर हम किसके विश्वास पर उसे स्थायी मानने का साहस करें।'' सातगौड़ा दृष्टि माता की ओर करते हुए बोले ''संसार का यह शाश्वत सत्य है कि यहां न माता-पिता का सदा साथ मिल सकता है और न भाई-बहिनों का। पति-पत्नी एवं पुत्र-पुत्रियों के संबंध भी काल की चपेट से सुरक्षित नहीं रह पाते।'' सातगौड़ा अपनी बात के सार रूप में आगे बोले ''जगत् का स्वरूप समझते हुए भी कौन विवेकी उसमें फंसना चाहेगा।''

माता की आँखें भर आयीं किन्तु पिता ने अपनी भावनाओं पर नियंत्रण रखा। वे सस्नेह बोले ''सातप्पा, कभी-कभी कुछ कार्य कर्त्तव्य निर्वहन की अपेक्षा भी किए जाते हैं। अत: ऐसे कार्य करते हुए भी जीव उनसे निर्लिप्त रह सकता है। आगम प्रसिद्ध महापुरुषों ने भी गृहस्थ धर्म को स्वीकार किया है। वे महापुरुष तो हमारे आदर्श हैं अत: तुम भी उनका अनुसरण करते हुए गृहस्थ जीवन को स्वीकार कर लो।''

''बाबा वे गृहस्थी के दलदल से सुरक्षित बाहर निकल आए इसलिए महापुरुष थे और हमारे आदर्श भी। हम तो साधारण मनुष्य हैं, एक बार संसार चक्र में फसने के बाद उससे निकलना? असंभव जैसा कार्य है। आई-बाबा इसलिए आप दोनों से मेरा निवेदन है कि मुझे मुनि-मार्ग पर बढ़ने की अनुमति प्रदान करें।''

सातगौड़ा के ये वचन सुनते ही भीमगौड़ा जी विचलित हो गए। हृदय में भरा भावनाओं का प्रवाह नेत्रों के बहाने निकल पड़ा। प्राणप्रिय पुत्र के वैराग्यमयी वचन सुन और दृढ़ संकल्पी पति की ऐसी अवस्था देख सत्यवती देवी मूर्च्छित होकर धम्म से गिर पड़ीं। भीमगौड़ा जी के मुख से चीख

निकली तो सब भागे-भागे वहाँ पहुँच गए। परिस्थिति देख किसी को कुछ बताना नहीं पड़ा, सब लोग सब समझ गए। कुछ परिजनों ने सातगौड़ा को डांटा, तो कुछ ने समझाया। कुछ ने चेतावनी दी, तो कुछ ने भावनात्मक दबाव बनाया। अंततः यही सहमति बनी कि न माता-पिता उन पर विवाह के लिए दबाव बनाएँगे और न सातगौड़ा माता-पिता के रहते हुए मुनि-मार्ग पर बढ़ने की बात करेंगे। इसी समय सुयोग से सातगौड़ा को सिद्धप्पा स्वामी का सान्निध्य प्राप्त हो गया। सिद्धप्पा स्वामी का जीवन बड़ा अद्‌भुत था। वे बचपन में पंगु थे किन्तु श्रीसिद्ध नामक मुनि के चमत्कारिक आशीर्वाद से उनके पैरों में ऐसी सामर्थ्य आ गई कि वे भविष्य में महामुनि बनकर मोक्ष-मार्ग पर बढ़ गए।

एक बार सिद्धप्पा गौशाला में थे। जब वे एक हाथ जमीन पर रखे थोड़ा आगे झुककर दूसरे हाथ से एक बैल के पाँव तले का गोबर निकाल रहे थे कि तभी उस बैल ने उनके हाथ पर अपना खुर धंसा दिया। बैल को कष्ट न देना पड़े अतः उसके पैर उठने की प्रतीक्षा करते रहे। जब वहां का पटवारी उस स्थान पर आया और उसने यह दृश्य देखा तो उन्होंने बैल को धक्का दिया। वह पटवारी इस घटना को देखकर तो भाव-विभोर था ही किन्तु जब आज वह इसका निरूपण सातगौड़ा के सामने कर रहा था तब भी उसकी आँखें छलछला आईं। सातगौड़ा भी सिद्धप्पा स्वामी की दया एवं सहनशीलता से अत्यंत प्रभावित हुए।

सिद्धप्पा स्वामी एक बार हनगंडी गाँव के निकट ही एक पहाड़ी पर ध्यान कर रहे थे कि तभी कुछ ग्वाल बालकों की दृष्टि उन पर गई। ग्वालों के मस्तिष्क में व्याघ्र का भूत भरा हुआ था अतः उन्हें लगा कि ये व्याघ्र है। बाघ आया रे, बाघ आया रे कहते हुए वे पत्थरों की घनघोर वर्षा करते हुए वहाँ से भाग निकले। एक श्रावक ने जब स्वामीजी की रक्त से लथपथ काया को देखा तो उपचार करने के उपरांत यह घटना गाँव के देसाई जी को बतलाई। देसाई जी ने उन लड़कों को पकड़वाकर जेल में डलवा दिया। यह समाचार ज्यों ही स्वामी जी के कानों तक पहुँचा वे स्वंय ही देसाई जी के पास आ गए।

''अरे वे बालक हैं, निरपराध हैं। वे जानते नहीं हैं कि उनसे क्या हो गया? आप तो प्रजापालक हैं अत: अपने ही बच्चों पर यह दण्ड उचित नहीं है।'' स्वामी जी दयार्द्र चित्त बोले।

''जिन्होंने एक साधु को लहूलुहान कर दिया वे निरपराधी कैसे हो सकते हैं महाराज, उन्हें तो कठोर सजा मिलनी ही चाहिए।''

उन ग्वालों के प्रति देसाई की कड़कता देख सिद्धप्पा स्वामी बोले ''देसाई यह मेरे ही पापकर्म का उदय था, इसी से संयोगवशात् यह घटना घटी। दूसरी बात यह है कि फलदार वृक्ष को पत्थर मारो तो वह फल देता है किन्तु मैं ठहरा दिगम्बर, मेरे पास देने के लिए क्या है? मात्र क्षमा न?'' स्वामी जी ने देसाई की ओर दृष्टि करते हुए कहा ''इसलिए इन्हें क्षमा दे दीजिए।''

स्वामी जी की इस करुणा दृष्टि को देख देसाई नतमस्तक हो गया, उसने बालकों को तो मुक्त कर ही दिया स्वयं भी स्वामीजी का परम भक्त बन गया।

सातगौड़ा को दिन-प्रतिदिन सिद्धप्पा स्वामी के जीवन की ऐसी घटनाएँ सुनने का सौभाग्य प्राप्त होता। कैसे नाग जैसे प्राणी निर्भय होकर स्वामी जी की देह से क्रीड़ा करते, कैसे कीड़े-मकोड़े के उपसर्ग में भी स्वामी समता रस का पान करते रहते। नग्नत्व की कठिनाईयों के समक्ष भी स्वामी जी का धैर्य ऐसा होता कि बड़े-बड़े नास्तिक और विधर्मी भी दण्डवत हो जाते। महामंत्र रूपी औषधि के माध्यम से कैसे वे परोपकार करते हुए भी अपनी आत्मा में तिष्ठते।

सातगौड़ा को उन सिद्धसागर मुनिराज से न केवल ब्रह्मचर्य व्रत की निधि प्राप्त हो गई अपितु भविष्य की रूपरेखा भी प्राप्त हो गई। आत्म-कल्याण मुनिमार्ग से ही संभव है किन्तु यह मार्ग उपसर्ग और परिषहों से भरा होते हुए भी सिद्धप्पा स्वामी के समान समता के साथ आनंदपूर्वक तय किया जा सकता है। परिजन पुत्र के दृढ़ वैराग्य के समक्ष स्वयं को विवश महसूस कर रहे थे **तो सातगौड़ा परिजनों की मोह परिणति से अपने वैराग्य भावों**

को और ऊँचाईयाँ दे रहे थे। सातगौड़ा चाहते तो उस परिस्थिति में भी घर का त्यागकर संन्यास ले सकते थे किन्तु वे दया के सागर जो थे अत: उन्होंने यह विचार किया कि ''हमारे माता-पिता, भाई-बंधु आदि कुटुंबीजन अन्य संसारी जीवों से अलग नहीं हैं अत: उनके कार्य उनके अनुरूप हैं किन्तु उन्होंने न केवल जन्म देकर एवं पालन पोषण करके मेरे ऊपर उपकार किया है किन्तु सुसंस्कारों का बीजारोपण करके मुझे इस योग्य भी तो बनाया है इसलिए मेरा भी कर्त्तव्य बनता है कि उन्हें यथा संभव धर्म-मार्ग की ओर प्रेरित करूं।

❀❀❀

2

एक ओर सातगौड़ा के निमित्त उनके पिता भीमगौड़ा जी धर्म की ओर बढ़ने लगे थे तो दूसरी ओर व्यवसायी एवं विदेशी प्रवासियों के निमित्त भारत एक महामारी की ओर बढ़ रहा था। चीन के युन्नान प्रांत से उत्पन्न प्लेग के पिस्सू हांगकांग होते हुए यात्रियों के माध्यम से भारत में भी पहुँचने लगे। प्रारंभ में ब्रिटिश सरकार ने व्यापारिक लाभ को दृष्टिगत कर, न तो सामुद्रिक सीमाएँ बंद कीं और न स्वास्थ्य सुविधाओं एवं जन-जागरूकता आदि को लेकर विशेष गंभीरता दिखलाई। कुछ समय बाद संक्रमण ने महामारी का रूप धारण कर लिया तो सरकार ने सारा दोषारोपण अशिक्षा, कुरीतियों एवं भारतीय जनता को ही देना प्रारंभ कर दिया। सरकार ने जब तक प्रयास प्रारंभ किए तब तक बहुत बड़ी जनहानि हो चुकी थी। सरकारी आंकड़ों के अनुसार ही बारह लाख से अधिक भारतीय, प्लेग के कारण जीवन से हाथ धो चुके थे।

प्लेग से भोजग्राम भी अछूता नहीं रहा। अत: पाटिल परिवार येलगुल पहुँच गया। येलगुल, भोज के निकट ही था किन्तु वह अभी तक इस रोग से सुरक्षित था। मामा परिवार का घर भी बहुत बड़ा था और घर से ही लगी हुई कई बीघा विस्तार वाली भूमि भी थी। किसी को किसी भी काम के लिए घर से बाहर जाने की न अनुमति थी और न आवश्यकता। अत: सब लोग मिलकर खूब धर्म भी करते और यथा योग्य मनोरंजन भी। वे आपस में विनोद कर रहे थे।

''मामा सुना है सरकार ने आपके प्रभाव के चलते आपको बंदूक दी है।'' देवगौड़ा ने पूछा।

''हां अप्पा, आसपास के क्षेत्रों में डाकुओं का आतंक था इसलिए

प्रशासन ने गांव की सुरक्षा के लिए बंदूक आदि अनेक अस्त्र-शस्त्र दिए हैं।'' मामा ने उत्तर दिया।

क्या हम भी बंदूक देख सकते हैं?'' देवगौड़ा ने उत्सुकतावश अपनी अभिलाषा व्यक्त की।

''अभी मनोरंजन के बीच हिंसक उपकरणों का क्या काम, फिर कभी दिखा दूंगा।'' कहकर मामा ने बात टालना चाही।

''हमारे मालिक ने कुछ ही समय में ऐसा अभ्यास कर लिया है कि उस कठिन लक्ष्य (पेड़ पर लगे नारियल) का भी निशाना लगा सकते हैं।'' सेवक जो भीमगौड़ा परिवार के बच्चों से घुल-मिल गया था उसने बच्चों की इच्छापूर्ति को उद्देश्य में रखकर अपने मालिक की प्रशंसा की।

''अच्छा...!'' भीमगौड़ा जी के मुख से सहजता में ही निकल गया। मामा को अपने जीजा के शब्द में व्यंग्य की ध्वनि लगी अवश्य किन्तु उन्होंने उसे परिहास का हिस्सा मान अनदेखा कर दिया। पीछे से कुंभगौड़ा ने छेड़ा ''मामाश्री क्या आप सचमुच बंदूक चला लेते हैं?''

भानजे ने तो स्पष्टत: उनकी क्षमता पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया था फिर भी मामा इन सबको मनोविनोद मानकर इस खेल में शामिल थे किन्तु उनके बेटे ने इसे अपने परिवार की प्रतिष्ठा का विषय मान लिया। वह क्रोध में वहां से उठा और बंदूक लाकर पिता के समक्ष रख दी। वह बोला कुछ नहीं किन्तु सभी समझ गए कि वह कहना चाह रहा है कि ''बाबा निशाना लगाइए।''

''बेटा हम लोग मात्र हास-परिहास कर रहे हैं।'' भीमगौड़ा जी ने उसके कंधे पर हाथ रखते हुए कहा।

''हाँ अप्पा तुम्हारे फूफाजी सही कह रहे हैं। गुस्सा छोड़ो और प्रसन्नतापूर्वक पुन: इस मनोविनोद में शामिल हो जाओ।'' सत्यवती देवी ने बहुत प्रेमपूर्वक उसे समझाना चाहा।

देवगौड़ा, आदिगौड़ा, उसकी माँ, फूफी इत्यादि भी उसे समझाने का प्रयत्न कर रहे थे किन्तु कुंभगौड़ा ने देखा सातगौड़ा की दृष्टि बंदूक पर टिकी हुई है।

''ये बंदूक को ऐसे देख रहे हैं जैसे बस कुछ ही देर में उसे चलाने वाले हैं किन्तु हम चारों भाईयों को बंदूक चलाना तो क्या उसे पकड़ना भी नहीं आता।'' बंदूक चलने की आवाज सुनी तो कुंभगौड़ा की विचारधारा भग्न हो गई। अन्य लोग भी आश्चर्य से भरे हुए थे। बंदूक चूंकि सातगौड़ा के हाथ में ही थी अत: अन्यों को भी संदेह नहीं था कि बंदूक उन्हीं ने चलाई है जबकि कुंभगौड़ा की आँखें तो कब से अपने अग्रज सातगौड़ा पर ही टिकी हुई थीं। अविश्वास के लिए कोई स्थान नहीं था किन्तु घटना अविश्वसनीय थी। सातगौड़ा का निशाना दुर्लभ लक्ष्य भेद चुका था।

''सेवक ने जिस नारियल की ओर संकेत किया था यह वही था।'' मामा सोच रहे थे ''संभव है मैं भी इतना सटीक निशाना न लगा पाता। सचमुच मेरा ये भांजा अद्‌भुत प्रतिभाशाली है।'' अंतिम वाक्य उनके मुख से निकल गया। अनेक दिनों तक इस घटना की चर्चा होती रही किन्तु अनेक बार प्रोत्साहित करने पर भी फिर कभी उन्होंने बंदूक को हाथ में नहीं लिया। इस बीच सभी ने सातगौड़ा की अश्वारोहण कला की कुशलता भी देखी तो उनके शारीरिक बल का भी आकलन किया। पंजा लड़ाने के खेल में उनके सामने कोई टिक नहीं पाता था। जिसका पंजा सातगौड़ा के पंजे में जकड़ गया, बिना हार माने उसे छुड़ाना असंभव ही था। सातगौड़ा की लंबी कूद की चर्चा तो समूचे भोजग्राम में पहले से ही थी किन्तु साक्षात् अपने नेत्रों से देख कर ननिहाल वालों को भी अपने इस अप्पा पर बड़ा गर्व हो रहा था। जब कबड्डी चलती थी तो हम उम्र छह-छह लोगों को घसीट कर ले आते थे। एक दिन तो गजब ही हो गया। अच्छे हष्ट-पुष्ट बैलों की जोड़ी पानी की मोट खींच रही थी, सातगौड़ा ने दयाभाव से उन्हें अलग किया और स्वयं उसमें जुट गए। देखने वाले देखते ही रह गए किन्तु सातगौड़ा के मन में न अपने शरीर बल का किञ्चित मद था न अतिशय दैहिक सौंदर्य और प्रतिस्पर्धनीय बुद्धि एवं कला कौशल का।

इस तरह प्लेग के कठिन समय में भी पाटिल परिवार का अपने संबंधियों के साथ समय अच्छे से निकल रहा था किन्तु इसी बीच कहीं से

समाचार आया कि रुद्रप्पा का स्वास्थ्य प्रतिकूल हो गया है। पिछले 12-13 दिनों से बुखार चल रहा है। उसने अस्पताल की सेवा लेने से मना कर दिया है और घर में सेवा के लिए कोई है नहीं। प्लेग के सारे लक्षण हैं अत: अन्य कोई निकट आने का साहस भी कैसे करता। अनेक दिनों के तेज ज्वर से शरीर वैसे ही दुर्बल हो चुका है, उस पर कुछ खाते ही उल्टी का ताण्डव। ऐसी विकट शारीरिक स्थिति एवं भयानक सिरदर्द में भी उसका मन व्यग्र नहीं होता।

मित्र की स्थिति जानकर सातगौड़ा का मन द्रवित हो गया फिर उन्हें न ननिहाल की चहारदीवारी रोक सकी और न माता-पिता का स्नेह। अन्य संबंधियों ने भी बहुत समझाया किन्तु अंतत: सातगौड़ा पहुँच ही गया अपने मित्र की सेवा के लिए। रुद्रप्पा के शरीर में रक्तस्रावी दाने निकल चुके थे। पूरा शरीर काला पड़ गया था किन्तु उसके मन की निर्मलता देख सातगौड़ा को बड़ा संतोष हुआ।

''मित्र.............।''

अपने सातप्पा स्वामी का ये एक शब्द सुनकर ही रुद्रप्पा को लगा जैसे किसी ने अमृत का सिंचन कर दिया हो। ''तुम्हें याद है एक बार तुमने मुझसे वचन लिया था कि जब तुम्हारा अंत समय निकट हो तब मैं तुम्हारे निकट रहूँ।''

रुद्रप्पा ने बोलने का प्रयास किया किन्तु दुर्बलता के कारण मुख से शब्द नहीं निकल सके पर उसकी मुखमुद्रा देखकर सातगौड़ा उसके भाव समझ गए। अत: वे बोले ''अब तुम अपने भी निकट आने का प्रयत्न करो। इस शरीर को पाने की सार्थकता इसी में है कि शरीर त्याग के पूर्व शरीरादिक के प्रति ममत्व का त्याग हो सके। बाल्यकाल से ही तुम समाधि में स्थित रहने की साधना करते रहे, अब उस अभ्यास की पूर्णता का समय आ चुका है।

रुद्रप्पा ने नेत्रों से संकेत दिया कि वह अपने इष्ट मित्र की बात न केवल समझ रहा है अपितु भावपूर्वक धारण भी कर रहा है।

सातगौड़ा को लगा कि जैसे रुद्रप्पा ने कहा ''तुम अपने प्रभु का नाम नहीं सुनाओगे।''

''हाँ-हाँ रुद्रप्पा अरहंता बोलो।'' सातगौड़ा के मुख से सहज ही

निकल गया।

रुद्रप्पा ने थोड़ा प्रयास किया तो उसके मुख से ''अरहंता, अरहंता, अरहंता...।'' की मंद-मंद ध्वनि निकलने लगी। सातगौड़ा को सुखद आश्चर्य हो रहा था। वे रुद्रप्पा को लगातार सारभूत संबोधन दे रहे थे। रुद्रप्पा भी अपने मोक्षमित्र का ब्रह्म विषयक आध्यात्मिक उद्‌बोधन पाकर कृतकृत्य महसूस कर रहा था। धर्म का सही स्वरूप समझकर रुद्रप्पा का चित्त इतना गदगद हुआ कि उसे लगा मानो वह व्याधि से ही नहीं देह से भी मुक्त हो रहा है। और फिर देखते ही देखते अरहंता-अरहंता ध्वनि के साथ रुद्रप्पा मानो परम समाधि में लीन हो गया। रुद्रप्पा के देवलोक गमन के साथ ही प्लेग का भी भारत भूमि से गमन हो गया। यदि पर्याय बुद्धि से देखें तो सातगौड़ा ने महामारी की इस विभीषिका में अपना एक सच्चा और अच्छा मित्र खोया था किन्तु धर्म दृष्टि से देखें तो रुद्रप्पा ने मृत्यु के बहाने चूँकि जीवन का सार ही पा लिया था अत: सातगौड़ा के जीवन में कुछ रिक्तता उत्पन्न होने पर भी परिपूर्ण संतुष्टि थी।

भोज का एक युवा, रत्नप्पा जो स्वयं धार्मिक था एवं सातगौड़ा की धार्मिक वृत्ति से भी परिचित था, उसने जब सातगौड़ा द्वारा अपने मित्र रुद्रप्पा की सेवा एवं समाधि का घटनाक्रम साक्षात् देखा तो वह सातगौड़ा से बड़ा प्रभावित हुआ। उसे लगा कि ''हजारों सांसारिक मित्रों की अपेक्षा सातगौड़ा जैसा एक धर्म मित्र श्रेष्ठ है।'' रत्नप्पा स्वभाव में थोड़ा कड़क था किन्तु हृदय सुकोमल एवं निष्कलंक था अत: सातगौड़ा को भी उसके साथ तत्त्व-चर्चा में आनंद आता था। रत्नप्पा का प्राय: बोरगांव आना-जाना होता रहता था अत: सातगौड़ा भी बोरगांव की गुफाओं में रहने वाले महामुनि श्री आदिसागर जी महाराज के दर्शनार्थ जाने लगे। जब प्रथम बार वहाँ पहुँचे तो महाराज की आहार-चर्या प्रारंभ हो रही थी।

''भोजन के प्रारंभ में ही गन्ने का रस?'' सातगौड़ा के मन में आया ''भीषण गर्मी जो है।'' तत्काल मन ने मन को एक समाधान दे दिया।

''आहार कब चालू होंगे?'' उन्होंने रत्नप्पा से पूछा।

रत्नप्पा बोरगांव तो बहुत बार आया था, महाराज के दर्शन भी अनेक बार किए थे किन्तु महाराज के आहार प्रथम बार ही देखे थे। सातगौड़ा का आहार से तात्पर्य रोटी आदि खाद्य पदार्थों से है रत्नप्पा यह समझ गया था अत: उसने अनुमान से कहा ''अभी थोड़ी देर में हो जाना चाहिए।''

किन्तु क्या कुछ ही समय उपरांत महाराज ने अंजुली छोड़ दी।

''अच्छा आज अक्षय तृतीया है। आदिनाथ भगवान् ने आज ही के दिन इक्षु रस से पारणा कर राजा श्रेयांस को कृतकृत्य किया था।'' महाराज की आहारचर्या देखकर सातगौड़ा को आदि प्रभु का स्मरण हो आया था। जब वे स्मृति से बाहर आए तो उनके मन में भाव आए ''आप भी प्रथम तीर्थंकर के नाम को धारण कर रहे हैं अत: आज प्रभु का आहार पर्व मनाने के उद्‌देश्य से मात्र इक्षु रस को ग्रहण किया है।''

दोनों महाराज को आहार देने की अभिलाषा से ही वहाँ पहुँचे थे किन्तु किन्हीं कारणों से विलंब हो चुका था अत: वे आज मात्र आहार-चर्या देख ही पाए थे। इसलिए उन्होंने अगले दिन तक रुकने का निर्णय लिया। दिनभर महाराज से तत्त्व-चर्चा की, उनकी वैय्यावृत्ति का भी लाभ मिला। इस तरह धर्म-ध्यान करते हुए एक दिन, एक घड़ी की भाँति बीत गया। नया सवेरा हो गया। दोनों को बहुत उत्साह था कि आज महाराज श्री को आहार देने का सौभाग्य मिलेगा किन्तु मुनिराज आहार पर नहीं उठे। सातगौड़ा को कुछ अधिक निराशा हुई किन्तु उन्होंने सोचा ''कोई बात नहीं महाराज जी का आज उपवास है, हम कल तक की प्रतीक्षा करेंगे लेकिन उन्हें आहार देकर ही जायेंगे।'' अगला दिन भी आ गया किन्तु वे योगिराज आहार पर उठने के लिए रुचि ही नहीं दिखा रहे थे। तीसरा, चौथा करते-करते सात दिन निकल गए जब कहीं आठवें दिन वे तपोधन आहार के लिए निकले। दोनों मित्रों का मन इन ऋषिराज की महान तपस्या को देखकर उनके प्रति अगाध भक्ति से ओतप्रोत हो चुका था। सातगौड़ा को तो ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो ''ये चतुर्थकालीन तप-ऋद्धि संयुक्त महामुनि ही हों।'' और फिर जब मुनिराज ने आहार में मात्र गन्ने का रस लिया तब तो सातगौड़ा के हृदय में उमड़ी

मुनिभक्ति का कोई पार ही नहीं था। रत्नप्पा को भी जैसे परम आनंद आ रहा था। दोनों साथियों को मुनिराज के पास ही रुकने का बहुत मन था किन्तु सातगौड़ा के परिवार से संदेश पर संदेश आ रहे थे अत: सातगौड़ा के साथ रत्नप्पा ने भी वापिस लौटने की सोची। लौटते-लौटते सातगौड़ा ने करबद्ध हो महाराज से निवेदन किया। ''महाराज जी आप भोजग्राम भी पधारिये।''

''किस लिए ?'' महाराज ने सस्मित पूछा।

''आपके तप के प्रभाव से वहाँ का भी अंधकार दूर हो सके भगवन।''

सातगौड़ा की विनीत मुद्रा देख, महाराज मुस्कुरा देते हैं और उनकी स्मृति को धारण किए दोनों साथी भोज को निकल पड़ते हैं।

''पिछले सोमवार को हमें मुनिराज की आहार चर्या सम्पन्न कराने का सौभाग्य मिला था।'' मंदिर से पूजन पूर्ण कर घर लौटते समय सातगौड़ा का मन, आदिसागर महाराज की स्मृतियों में ही डूबा हुआ था कि तभी रत्नप्पा दौड़े-दौड़े आए। ''जानकारी मिली है कि महाराज जी आहार की मुद्रा में हमारे गांव की ओर बढ़ रहे हैं।''

अभी तो समाचार सुनिश्चित भी नहीं हुआ था किन्तु सातगौड़ा के मन में खुशी की ऐसी लहर दौड़ी कि जैसे स्वयं महावीर स्वामी जी चंदना के द्वार की ओर बढ़ रहे हों।

''आप महाराज को लेने जाइए और मैं पड़गाहन की तैयारी करता हूँ।''

''हे स्वामी! नमोऽस्तु, नमोऽस्तु, नमोऽस्तु...।'' ग्राम के अनेक परिवारों के मुखारविंद से निकल रहे इस नाद से समूचा भोज गुंजायमान हो गया और मुनिराज की नवधा-भक्ति प्राप्त होने से सातगौड़ा एवं समूचा पाटिल पारिवार धन्य हो गया। सातगौड़ा को आशा थी कि महाराज का भोज में कुछ प्रवास होगा किन्तु उन एकांतप्रिय साधक ने अगले दिन बड़े सवेरे-सवेरे ही विहार कर दिया। सातगौड़ा गमन से कुछ दुखी भी हुए और उनकी निरीहवृत्ति देखकर भाव-विभोर भी। जैसे ही दूधगंगा-वेदगंगा का तट आया महाराज के कदम ठहर गए। महाराज ने चारों ओर दृष्टि की किन्तु उन्हें दूर-दूर तक कोई नजर नहीं आया जबकि सातगौड़ा की दृष्टि महाराज पर ही टिकी हुई

थी। सातगौड़ा परिस्थिति समझ गए। उन्होंने महाराज को अपने कंधे पर बैठाया और नारायण कृष्ण को धारण किए हुए वसुदेव की भाँति वे नदी में प्रवेश कर गए। इसके उपरांत पारणा के निमित्त जब कभी भी महाराज का भोज आगमन हो जाता। न आने का कोई क्रम निर्धारित था और न कोई पूर्व सूचना मिल पाती थी अत: प्रस्थान की बेला में सातगौड़ा पूरे समय उनके साथ विहार करते। प्रथम बार जब सातगौड़ा ने महाराज को अपने कंधे पर विराजमान कर नदी पार करवाई थी तब महाराज यद्यपि सातगौड़ा की शक्ति और भक्ति पर प्रसन्न थे पर बोले कुछ नहीं थे किन्तु एक बार उनके मुखारविंद से सहज ही निकल गया। ''इतना भारी शरीर उठाकर चलने में बड़ा कष्ट होता होगा?''

महाराज के शब्द, सातगौड़ा के कान में पड़े तो उनके नेत्रों से आंसू निकल आए। वह सातगौड़ा जो बचपन में भी न रोता था वह सातगौड़ा, हाँ, वह परिपक्व युवा आज मुनिराज के इस वाक्य से द्रवीभूत हो गया। कुछ समय उपरांत अपनी भावनाओं को शब्दों का रूप देते हुए वे बोले ''जिनके चरणों की रज पाकर महर्द्धिक देवता भी अपने भाग्य की सराहना करते हों, उन जगत्पूज्य आप मुनिराज की वैय्यावृत्ति करने का अवसर मेरे किसी सातिशय पुण्य के उदय से ही प्राप्त हुआ है। अधिक क्या कहूँ भगवन आपको कंधों पर धारण करके मुझे ऐसा लग रहा है कि जैसे मैंने रत्नत्रय को धारण कर लिया है।'' ऐसा कहते-कहते सातगौड़ा का गला भर आया एवं नेत्र रूपी सरोवर से पुन: जल धाराएँ फूट पड़ीं।

मुनिराज के मन में आया ''यह कोई साधारण जीव नहीं है। निकट भविष्य में यह न केवल मुनियों के निर्दोष व्रतों को धारण करेगा अपितु जिनशासन की कालजयी प्रभावना भी करेगा।'' वह आशीर्वाद रूप में बोले ''तुम्हें भी शीघ्र ही रत्नत्रय की प्राप्ति हो।'' मुनिराज के सामीप्य से सातगौड़ा की दीक्षा लेने की भावना प्रबल हो गई। वह अपने मित्र रत्नप्पा के साथ दीक्षा ले ही लेता किन्तु तभी अचानक पिताजी का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। रत्नप्पा को दीक्षोपरांत आदिसागर ही नाम प्राप्त हो गया और वे उसी के

अनुरूप अपना आचरण भी करने लगे। कठोर तपश्चरण करते हुए आप सदैव ध्यान अथवा स्वाध्याय में लीन रहते थे।

इधर सातगौड़ा पिताजी की सेवा में संलग्न हो गए। ''उनके जीवन में बहुत परिवर्तन आ चुका था। जबसे गोम्मटेश्वर बाहुबली स्वामी के दर्शन करके लौटे थे भीमगौड़ा जी दूध, घी इत्यादि षटरसों का त्यागकर मात्र एक बार आहार करने लगे थे। पिछले सोलह वर्षों से नीरस भोजन करते रहने से सौ से अधिक व्यक्तियों का बल धारण करने वाला उनका शरीर अत्यंत कृश हो गया था किन्तु पिछले वर्षों से शुद्ध ब्रह्मचर्य को धारण करने से मन की अत्यंत निर्मलता के साथ-साथ शरीर की स्थिति भी बनी हुई थी। जब तक स्वास्थ्य अनुकूल रहा उन्होंने अनेक बार धर्म-यात्राएँ एवं तीर्थ-वंदना की। निरंतर त्यागी, व्रती एवं साधुओं की आहार-चर्या, विहार एवं वैय्यावृत्ति में संलग्न रहे। ध्यान में भी खूब रुचि रखते थे एवं स्वाध्याय भी निरंतर करते थे।''

एक दिन भीमगौड़ा जी बोले ''उपाध्याय को बुलाओ।''

''जी...।'' सातगौड़ा ने कहा।

''कुछ विशेष बात है क्या?'' पिताजी की भाव-भंगिमा समझ देवगौड़ा ने पूछा।

''हाँ...। कुछ दान भी करना है।''

''दान भी करना है अर्थात् बाबा के मन में कुछ और ही चल रहा है।'' कुंभगौड़ा के मन में विचार आया अत: वह बोले ''बाबा यदि कोई अन्य बात है तो हमें न सही किन्तु दादा को तो बता सकते हैं।'' कुंभगौड़ा ने सातगौड़ा की ओर संकेत किया।

भीमगौड़ा जी कुछ बोले नहीं। उन्होंने मात्र सातगौड़ा की ओर दृष्टि की तो वह पिताजी की तीव्र भावना समझ उपाध्याय को ले आए। उपाध्याय के आने पर भीमगौड़ा जी ने चर्चा करने के उपरांत अंत में अपनी समाधि की इच्छा प्रकट की तो घर का वातावरण दु:खमय हो गया। सत्यवती देवी के मुख से एक शब्द भी नहीं निकला किन्तु उनके आँसुओं के प्रवाह ने सबको द्रवीभूत कर दिया।

''बाबा अभी आपकी समाधि योग्य अवस्था नहीं है। आपका जीवन लंबा है इसलिए अभी कुछ ऐसा-वैसा न सोचें।'' आदिगौड़ा जो अभी तक मूकदर्शक थे ने उन्हें समझाया।

मृत्यु का तो वैसे भी भरोसा नहीं, उस पर मेरी शारीरिक स्थिति दिन-प्रतिदिन बिगड़ रही है न जाने श्वास कब रुक जाए इसलिए तुम लोग अधिक राग न करो।''

''दादा आप ही बाबा को समझा सकते हैं।'' कुंभगौड़ा सातगौड़ा के गले से लिपट गया।

''तुम लोग अधिक मोह करोगे तो फिर हमारी समाधि कैसे हो पायेगी।'' भीमगौड़ा जी ने नि:श्वास छोड़ते हुए कहा ''फिर हमें घर का त्याग करना होगा।''

''बाबा, समाधि तो जीवन का सार है। हम आपकी समाधि साधना में बाधक नहीं बनेंगे किन्तु इतना अवश्य कहेंगे कि आप मर्यादित काल वाली नियम समाधि ले लेवें।'' सातगौड़ा के शब्दों में गांभीर्य था। भीमगौड़ा जी को यह भलीभाँति ज्ञात था कि ''उनका पुत्र आगम से बाहर एक शब्द भी नहीं बोल सकता। उसका हृदय तो सदा साधकों के प्रति अनुकंपा से भरा रहता है।'' भीमगौड़ा जी का क्षणिक आवेश कब का समाप्त हो चुका था। वे सस्नेह बोले ''अब हमारे पास अधिक समय नहीं है अत: हमारे लिए यम समाधि ही योग्य है।''

भीमगौड़ा जी की समाधि की कठोर साधना प्रारंभ हो गई। उन्होंने एक कटोरी प्रमाण भोजन का नियम ले लिया। उनकी दृष्टि भी दिन-प्रतिदिन निर्मल होती जा रही थी। वे भोजन में इष्टानिष्ट बुद्धि से दूर हो चुके थे। कृश होता उनका शरीर कुछ समय और टिका रहे इस भावना से परिजन आहार में उन्हें नारियल का दूध देते थे किन्तु भीमगौड़ा जी ने अंत में उसका भी त्याग कर दिया। उन्हें धर्म की बातें सुनाने का कार्य निरंतर चल रहा था। दिन के समान रात्रि में भी धर्माराधना चलती रहती। काया के समान उनकी कषायें भी अत्यंत क्षीण हो गईं। उन्होंने एक दिन अपने हाथों से केशों को उखाड़ना

प्रारंभ कर दिया।

कुंभगौड़ा उनके पास ही थे, यह दृश्य देखकर वह घबरा गए तो उनके मुख से चीख निकल गई। घर के सभी लोग एकत्रित हो गए। सत्यवती देवी की तो बहुत बुरी अवस्था थी ही, अन्य भाई एवं परिजन भी उस हृदय को विदीर्ण करने वाले दृश्य को देखकर भाव-विभोर हो गए किन्तु सातगौड़ा को लगा कि ''जैसे वे मुनि बनने की साधना करना चाहते हों। हे प्रभु! मेरे जीवन में यह अवसर कब आयेगा। कब मैं केशलोंचन क्रिया करते हुए अपनी आत्मा से विकारी भावों का भी लोंचन कर दूंगा। हे जिनदेव! कब मैं आपके समान मुद्रा को धारण करूंगा।''

परिवार के लोग चाहते थे कि वे केशलोंच न करें। उनकी यह इच्छा उनके अनुरूप भी थी क्योंकि जिन्हें मक्खी भगाने के लिए भी हाथ उठाना कष्ट-साध्य हो उन्हें केशलोंच जैसे कठोर कार्य में कितना अधिक कष्ट हो रहा होगा, अकल्पनीय था। किन्तु भीमगौड़ा जी केशलोंच के बहाने मानो अपने कर्मों को ही उखाड़ फेंकने की इच्छा रखते थे एवं वे शीघ्रातिशीघ्र मुनियों की कोटि में आना जो चाहते थे।

फिर एक दिन भीमगौड़ा जी ने अपने आसन का त्याग कर दिया। घर के लोग पुन: भाव-विह्वल हो गए। उन्हें भय था कि बिना आसन के क्षपक को घाव न हो जाएँ किन्तु भीमगौड़ा जी साधना की ऊंचाईयों का स्पर्श कर रहे थे। शरीर के घावों से उत्पन्न दु:खों को सहन करते हुए भी वे आत्मा को विषय-कषायों के घावों से मुक्त कर शाश्वत सुख की इच्छा रखते थे। सातगौड़ा उन्हें पंच-नमस्कार मंत्र सुना रहे थे। तभी उन्होंने देखा कि पिताजी की पिछले कई दिनों से पूरी तरह से उठने में असमर्थ आखें एकाएक बहुत अच्छी तरह से खुल गई हैं। उनके मुख से बहुत धीमे-धीमे णमोकार के पद निकल रहे हैं। और फिर देखते ही देखते क्षणमात्र में वह दृष्टा अदृश्य हो गया। ''एक पथिक इहलोक की यात्रा पूर्ण कर किसी अन्य लोक का यात्री बन गया।'' अन्य परिजन शोकाकुल थे किन्तु सातगौड़ा जगत् के स्वरूप का चिंतन कर रहे थे। ''अहो! सम्यग्दर्शन के अभाव में पंच-परावर्तन रूप

संसार की अनंत यात्राएँ चलती रहीं किन्तु तनिक भी विश्राम नहीं। बाबा ने तो श्रेष्ठ समाधि मरण धारण कर मोक्ष की यात्रा प्रारंभ कर ली लेकिन मेरी यात्रा की दिशा?''

'' तो क्या तुम संन्यास के बारे में सोच रहे हो?'' बिंब ने जैसे प्रश्न नहीं कटाक्ष किया।

''सोचने मात्र से कुछ नहीं होता। बहुत देर हो चुकी है, अब तो आत्म-कल्याण के मार्ग का पथिक बनना ही चाहिए।''

''पिता की मृत देह का अभी अंतिम-संस्कार भी नहीं हुआ है और तुम्हारे ऐसे विचार? स्वयं शोक-संतप्त नहीं हो रहे हो तो मत होओ किन्तु जो शोकग्रस्त हैं उन्हें ढांढस तो बंधाओ।''

''अनंत पर्यायों से शोकाकुल मुझे मेरी आत्मा का करुण-क्रंदन सुनाई दे रहा है, अब मैं उसकी ओर देखूं या मोह से पराभूत हो इष्ट-वियोगज पीड़ा से आकुल-व्याकुल हो रहे इन परिजनों को सांत्वना दूँ।'' सातगौड़ा के मन में आया किन्तु वे मौन रहे।

''जो तुम्हारे मन में चल रहा है वह उचित है या अनुचित इसका निर्णय तुम्हें ही करना है किन्तु जो सामने-सामने ही घटित हो रहा है, उससे मुख मोड़ना? यह तो किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है।''

अर्थी उठने को हुई तो रुदन का स्वर तीव्र हो गया। भाई-बंधु विलाप कर रहे थे। कुंभगौड़ा अपने दादा सातगौड़ा से लिपट कर रो रहा था। माता सत्यवती की स्थिति तो बहुत ही करुण थी। वे विलाप करते-करते मूर्च्छित हो गईं। सातगौड़ा ने माँ का उपचार किया, भाइयों को समझाया, अन्य शोकाकुल परिजनों को भी सांत्वना दी। यह क्रम अनेक दिनों तक चलता रहा। इस बीच भी सातगौड़ा अपने आवश्यकों में संलग्न रहते थे। सूतक पूर्ण होते ही वे पुनः पट्टन जाने लगे। पार्श्वनाथ उपाध्याय उन्हें पद्मनंदि-पंचविंशतिका का अध्ययन करवा रहे थे।

''उपाध्याय, मेरा मन शीघ्र ही स्वामी बनने के लिए छटपटा रहा है।'' स्वाध्याय के बीच में ही प्रसंगवशात् सातगौड़ा ने कहा।

''पाटील हम आपके इस विचार की हृदय से प्रशंसा करते हैं किन्तु स्वामी बनना बहुत कठिन काम है।'' पार्श्वनाथ कुछ रुके फिर गंभीर होकर बोले ''उसके लिए आत्मा में बहुत शक्ति चाहिए, बहुत शक्ति।''

''जी, आपका कहना सर्वथा उचित है।'' सातगौड़ा बोले ''बहुत शक्ति के साथ सच्चा वैराग्य भी।''

सातगौड़ा के मन में मान कषाय को कोई स्थान नहीं था अत: गुणवान होने पर भी उन्होंने निरहंकार पूर्वक उपाध्याय के वाक्य को जैसे पूर्ण मात्र किया था। सातगौड़ा की इस अभिव्यक्ति से गंभीर उपाध्याय के मुखमंडल पर मंदस्मित छा गई।

''मैंने निश्चय कर लिया है और मैं उससे पीछे नहीं हटूंगा।'' सातगौड़ा ने अपने वाक्य को पूरा किया। सातगौड़ा की वाणी में उनके दृढ़तर संकल्प की शक्ति निहित थी। उनकी इस महत्तर भावना को जानकर उपाध्याय उनके समक्ष यतिधर्म का विशेष व्याख्यान करने लगे।

''उपाध्याय, आप मुनिधर्म की इतनी मधुर तथा मार्मिक प्रस्तुति करते हैं, आप भी मुनि बन जाएँ।'' सातगौड़ा ने एक दिन संकोचपूर्वक उपाध्याय से कहा।

''पाटील, सच कहते हो किन्तु हाय खेद है कि मैं अभी ऐसा करने में स्वयं को समर्थ नहीं पाता हूँ।'' उपाध्याय का न केवल कण्ठ अवरुद्ध हो गया था अपितु आँखें भी भीग गई।

''हाँ सुना है जब तक जीव के ऊपर मोहनीय कर्म का गहरा प्रभाव रहता है वह चाहकर भी निर्वाण मुद्रा को धारण नहीं कर पाता है।'' सातगौड़ा के मन में भाव उठे। ''जब कर्मभार हल्का होगा तब यह भद्र परिणामी आत्मा भी महाव्रतों को धारण करेगी।''

''आप स्वामी बनें तो मेरे लिए भी मार्ग प्रशस्त करेंगे, ऐसी छोटी सी भावना है।''

सातगौड़ा के मुखारविंद पर स्मित फैल जाती है। उपाध्याय का मन भी भावी-मुनिराज को देखकर गदगद हो जाता है। सातगौड़ा का वैराग्य दृढ़ से

दृढ़तर होता जा रहा रहा था किन्तु परिजनों को इस हाल में छोड़कर जाना संभव नहीं था अत: सातगौड़ा ने धर्मयात्रा का विचार किया। अनेक तीर्थ-स्थलों का स्मरण करते हुए उन्होंने सिद्ध क्षेत्र श्री सम्मेद-शिखर जी की यात्रा का मन बनाया।

''गिरिराज के स्मरण से ही जब विशुद्धि में ऐसी बढ़ोत्तरी हो रही है जैसे जन-सामान्य की स्नेहवृत्ति अपने इष्ट के स्मरण से होती है, तब उस पावन भूमि के साक्षात्कार का तो कहना ही क्या।'' सिद्धभूमि के निमित्त सिद्ध भगवंतों के गुणों का स्मरण करते-करते यात्रा की अवधि कैसे पूर्ण हो गई ज्ञात ही नहीं हुआ।

वैसे तो सातगौड़ा का संपूर्ण जीवन ही चमत्कारों का अजस्र स्रोत बना हुआ था किन्तु यहाँ एक अलग ही प्रकार का अतिशय हुआ। यहाँ सातगौड़ा को न अपने सहयात्रियों की सुध-बुध थी और न अन्य दृश्यों की ओर ध्यान था वे तो सिद्धक्षेत्र की वंदना करते हुए जैसे मानो सिद्ध प्रभु से एकाकार की ओर अग्रसर थे। किन्तु तभी उन्हें किसी के कराहने की आवाज सुनायी पड़ी। जब आगे की ओर देखा तो एक बूढ़ी दादी दिखलाई दी। वह थोड़ा ही चल पाती और फिर बैठ जाती।

''माँ जी क्या हो गया ?'' स्थिति स्पष्ट थी अत: सातगौड़ा ने ऐसा पूछा नहीं किन्तु दादी के समक्ष जैसे ही वे खड़े हुए तो दादी बोलीं ''कुछ नहीं हुआ बेटा ये गाड़ी पुरानी हो गई है, इसलिए इससे आवाज भी आ रही है और यह बार-बार रुक भी रही है।'' दादी ने जैसे अपने बैठने पर सफाई दी। उनके शब्दों में न दीनता दिख रही थी और न कोई आकांक्षा।

सातगौड़ा दादी के उत्तर और उनकी भद्रता से प्रभावित हुए। उन्होंने पूछा ''पर्वतराज की चढ़ाई कब प्रारंभ कर दी थी आपने।''

''एक प्रहर तो हो ही गया होगा।''

''जब एक प्रहर में दो मील नहीं चढ़ पाईं तब गिरिराज की इतनी लंबी चढ़ाई इनसे कैसे हो सकेगी।'' सातगौड़ा के मन में आया किन्तु उन्होंने पूछा

''आपके परिवार से कोई नहीं है।''

''बेटा यदि परिवार, संबंधी, साथी इत्यादि का बोझ लेकर चलेंगे तो कथंचित पर्वत की चढ़ाई हो जायेगी किन्तु परिणामों की चढ़ाई ?''

दादी ने आगे क्या बोला सातगौड़ा को सुनाई नहीं दिया, उनका उपयोग चिंतन में लीन हो गया। ''कितना सत्य कहा दादी ने। जब तक घर में थे तब तक परिवार था, जब तक संसार की ओर गति थी तब तक संबंधी थे, जब तक रागात्मक दृष्टि थी तब तक साथ की इच्छाएँ थीं। अब जब शाश्वत सिद्धभूमि की सन्निधि में आ गए हैं तब यदि व्यवहार दृष्टि से भी देखें तो अनंतानंत सिद्ध प्रभु ही हमारा परिवार है, हमारे आत्मीय गुण ही हमारे संबंधी हैं और निजात्मा ही हमारा साथी है। निश्चय दृष्टि से तो न ये व्यवहार है और न ये भेद-भिन्नताएँ। सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया।''

जब सातगौड़ा की चिंतन धारा पूर्ण हुई तो उन्होंने देखा दादी आगे बढ़ चुकी थीं। वे स्फूर्ति से आगे बढ़े। जैसे ही उन्होंने देखा कि दादी पुन: बैठने वाली हैं उन्होंने दादी से निवेदन किया ''मैं आपके साथ वंदना कर लूं।''

''बेटा, तुम मेरे लिए परेशान मत होओ, निश्चिंत होकर अपनी वंदना करो।''

''मुझे कैसी परेशानी, आप मेरी ओर से निश्चिंत रहें।''

''मेरी गति को देखकर तो तुम अनुमान कर सकते हो कि आज ये वंदना हो जाए, उसमें संशय है।''

''आज, कल, परसों चाहे जितने दिन लग जाएँ, मैं आपके साथ ही वंदना करुंगा।'' सातगौड़ा ने मीठा मनोविनोद किया।

दादी, सातगौड़ा की सहधर्मी के प्रति वात्सल्य भावना पर मुग्ध थीं तो सातगौड़ा को दादी भक्ति, संकल्प शक्ति, आध्यात्मिक दृष्टि आदि अनेक सद्गुणों की मूर्ति लग रही थीं अत: वह भी अब उनकी निकटता का लाभ लेना चाहते थे।

दादी कुछ समय विश्राम करके चलने लगीं किन्तु लगा ही नहीं कि वे

कुछ चलीं हैं। अब उनकी गति बहुत कम हो चुकी थी। ''इस गति से तो वास्तव में तीन दिन में भी वंदना न होगी।'' दादी को लगा कि सातगौड़ा ऐसा सोच रहे होंगे अतः बोलीं ''बेटा, तुम अपनी वंदना कर लो, मेरा क्या?''

''माँ जी वंदना में कितना समय लगेगा, इसकी मुझे परवाह नहीं है किन्तु आपके कष्ट को देखकर मुझे थोड़ी चिंता हो रही है।'' सातगौड़ा बड़ी विनम्रता से बोले ''यदि आपको आपत्ति न हो तो डोली ....।'' सातगौड़ा ने वाक्य अधूरा छोड़ दिया, जैसे उन्हें लगा कि उनने कोई त्रुटि कर दी हो।

''क्या अब डोली मिलेगी?'' दादी ने साश्चर्य-पूछा।

''प्रयत्न करके देख लेता हूँ, संभवतः सफलता मिल जाए।'' सातगौड़ा ने साशा कहा।

दादी ने मुस्कुरा दिया ''जैसे कह रही हों कि कर लो जितना भी प्रयत्न करना है, इस समय, यहाँ डोली का मिल पाना असंभव है।''

कुछ समय के अन्वेषण के उपरांत जब खाली डोली नहीं मिली तो सातगौड़ा बोले ''माँ जी, आइए।'' उन्होंने दादी को अपनी पीठ पर बैठने का निवेदन किया किन्तु दादी संकोच कर रही थीं। वे बोलीं ''बेटा, यहाँ तो अपना भार उठाना ही कष्ट साध्य होता है फिर तुम मेरा इतना भार कैसे वहन कर सकोगे।''

दादी ने सातगौड़ा के भाव पढ़ने का प्रयत्न किया। ''ये सोच रहा होगा कि जिसकी पेट और पीठ एक हुई जा रही हैं ऐसी दुर्बल, वृद्ध काया का कितना भार होगा, 25-30 किलो बस।''

दादी सातगौड़ा की भावदशा का अध्ययन करती ही रह गईं किन्तु सातगौड़ा ने दादी को अपनी पीठ पर धारण कर लिया। तराजू की तौल गलत निकल सकती थी किन्तु सातगौड़ा का अनुमान एकदम सही होता था। दादी का भार 57 किलो था किन्तु सातगौड़ा का उत्साह उससे कई गुना अधिक। सातगौड़ा, को जो आनंद 57 फीट ऊंची गोमटेश्वर बाहुबली स्वामी के सामीप्य से मिलता था वैसा आनंद इन 57 किलो भारी दादी माँ को पर्वतराज

की वंदना कराने में आ रहा था। वंदना में अनेक लोगों ने दादी को देखा था किन्तु वंदना पूर्ण होने के उपरांत वे किसी को न मिलीं। सातगौड़ा तो जैसे इस संपूर्ण घटनाक्रम से निरपेक्ष थे किन्तु साथ वालों ने कौतूहलवश उस वृद्धा का बहुत अन्वेषण किया। सभी धर्मशालाओं के प्रबंधकों से लेकर, दुकानदार, सब्जीवाले, डोलीवाले, काम करने वाले यहां तक कि वहां के साधुओं से भी पूछा किन्तु किसी को उस वृद्धा के बारे में कोई जानकारी नहीं थी।

साथ वाले वे लोग जो सातगौड़ा से वय में अधिक थे उनके अनुसार ''हो न हो यह वही वृद्धा है जो सातगौड़ा के बाल्यकाल में उसे स्वस्थ करने दवाई की पुड़िया देकर गई थी।''

''अभी सातगौड़ा युवा हैं। आप लोगों के अनुसार उस समय वृद्धा की उम्र 80 वर्ष से ऊपर थी तो अब... ?'' एक नवयुवक साश्चर्य बोला।

''अरे! देवी-देवताओं का शरीर हम मनुष्यों जैसा थोड़े ही होता है।'' एक प्रौढ़ ने समझाते हुए कहा।

''अच्छा तो इसका अर्थ यह हुआ कि वह देवी थीं।'' नवयुवक आश्चर्य और आनंद से रोमाञ्चित हो गए। अनेक दिनों तक वहाँ चर्चाएँ चलतीं रहीं कि ''वह वृद्धा निश्चित ही कोई यक्षी थी जो सातगौड़ा की शक्ति और भक्ति की परीक्षा ले रही थी।'' अपनी शक्ति पर कभी मद न आ जाए कथंचित इस भावना से प्रेरित हो सातगौड़ा ने जीवन पर्यंत के लिए तेल एवं घी का त्याग कर दिया। एक साधारण सा नियम लेना ही कठिन कार्य है तब शक्ति के स्रोत रूप घी जैसे पदार्थ का जो आहार का भी मुख्य अंग है सदा के लिए छोड़ देना असाधारण नियम था किन्तु सातगौड़ा की दृढ़ता सुमेरु के समान अचल थी जिस पर अहंकार की गंध भी नहीं। सत्य है जिसका अहं अर्थात् मैं से परिचय हो गया वह अहंकार के फेर में कब पड़ने वाला है। उन्होंने घर पहुँचते-पहुँचते दिन में मात्र एक बार भोजन का संकल्प भी कर लिया।

वे माता-पिता दोनों के प्रति अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर चुके थे अत: दिन-प्रतिदिन उनकी विरक्ति बढ़ती ही जा रही थी। कुंभगौड़ा से भी कह दिया था कि अब मेरा मन व्यापार आदिक में नहीं लगता। प्रत्येक

अमावस्या को स्तवनिधि जाते। भोजन आदि व्यवस्था के लिए बहिन कृष्णा बाई भी साथ जातीं किन्तु वे भोजन कभी-कभार ही लेते। उन्हें तो जैसे उपवास में बहुत आनंद आता था किन्तु कृष्णा बाई को बहुत दु:ख होता। वे शिखरजी यात्रा में भाई के साथ गई थीं कि कहीं उनकी चर्या में व्यवधान न हो। उन्होंने वैधव्य के पश्चात् से ही संकल्प कर लिया था कि वे जीवन पर्यंत अपने भाई की साधना में सहयोगी बनेंगी किन्तु...।'' कृष्णा बाई की आखों से आंसू ढुलक जाते हैं।

दु:ख तो जिनगौड़ा को भी होता था अब वह बड़ा जो हो गया था। उसे समझ में आने लगा था कि उसके तात्या बहुत दिन घर में नहीं रहने वाले हैं।

''वे स्वयं एक बार भोजन करते किन्तु मुझे दोपहर में नारियल, किसमिस आदि खिलाते थे, वे स्वयं लकड़ी के तखत पर सोते और मुझे गद्दे पर सुलाते थे। हां मुझे तो बहुत छोटे से ही उनका साथ पसंद था। आई-बाबा से अधिक समय मेरा उन्हीं के पास बीतता। पंच-नमस्कार मंत्र से लेकर रत्नकरण्डक-श्रावकाचार तक न जाने कितने पाठ उन्होंने मुझे याद करवा दिए किन्तु अब निर्मोही बनकर हमें भूले जा रहे हैं।'' तात्या को स्मरण कर जिनगौड़ा की आँखें भर आईं तो माँ ने कहा ''जिनप्पा तेरे तात्या तो प्रत्येक अमावस्या को स्तवनिधि जाते हैं, तू इस बार क्यों इतना शोक मना रहा है?''

''आई तात्या इस बार बुआ को लेकर नहीं गए।''

''हाँ भाभी।'' कहती हुई कृष्णा बाई भी सिसकियाँ लेने लगीं।

''आप तो हर बार उनके साथ गईं किन्तु उन्होंने कितने बार भोजन किया? यह सोचकर अप्पाजी आपको साथ नहीं ले गये होंगे कि व्यर्थ में आपको क्यों परेशान करना।''

उधर सातगौड़ा संसार, शरीर एवं भोगों से अत्यंत विरक्त हो गृह-त्याग का संकल्प लिये, स्तवनिधि से उत्तूर ग्राम में विराजमान देवेन्द्रकीर्ति महाराज (देवप्पा स्वामी) की शरण में पहुँच गए। देवेन्द्रकीर्ति महाराज की साधना असाधरण थी। वे सदा कम से कम एक उपवास के बाद ही आहार ग्रहण करते थे। ध्यान के ऐसे प्रेमी कि उस समय सर्प और सिंह भी आ जाए तो वह

आपको विचलित नहीं कर सकता था।

एक बार की बात है, देवेन्द्रकीर्ति स्वामी गोकाक से कोन्नूर की ओर विहार कर रहे थे। सूर्यास्त का समय हो रहा था और मार्ग में ठहरने के लिए कोई साधारण सी कुटी भी नहीं थी।

महाराज की मार्ग में ही स्थित होने की भावना देख एगप्प पंडित ने निवेदन किया ''स्वामी जी थोड़ा और चलने पर एकाध स्थान मिल जायेगा।

''पंडित, दिगंबर मुनि रात्रि में विचरण नहीं करते।''

''किन्तु महाराज अभी तो सूर्य की मंद-मंद लालिमा दिखलाई पड़ रही है।''

''किन्तु यह प्रकाश ईर्या समिति के निर्दोषरीत्या पालन हेतु पर्याप्त नहीं है। इसके अतिरिक्त संधिकाल में प्रचुरतर जीव राशि की उत्पत्ति होती है वह अलग।''

''आपका कहना आगम सम्मत होने पर भी व्यवहार सम्मत नहीं है।'' पंडित ने सोचा कि स्वामी जी प्रतिप्रश्न करेंगे किन्तु ऐसा नहीं हुआ अत: वह ही बोला। ''चारों ओर घनघोर जंगल है, ऐसे में यदि विषम परिस्थिति निर्मित हो गई तो?'' वह भय को छिपाने का प्रयत्न कर रहा था किन्तु वाणी की कंपकपी और शरीर की स्थिति से सब स्पष्ट था।

''रात्रिगमन का निषेध हमारे लिए है।'' कहते हुए स्वामी जी ने मंद स्मित दी।

''स्वामी जी आपका आशय है कि मैं चला जाऊं किन्तु आपको अकेला छोड़कर जाऊँ? असंभव।''

पंडित की छाया ने टिप्पणी की ''महाराज को अकेले छोड़कर गए तो दुनिया क्या कहेगी, यही बात है न?''

पंडित ने कोई प्रति टिप्पणी नहीं की।

''अरे नहीं-नहीं कल से भोजन पानी की व्यवस्था बिगड़ जायेगी।''

पंडित को उस पर क्रोध आ गया किन्तु फिर भी उसकी लंबी जबान रुकी नहीं। ''सच तो यह भी है कि अकेले जाने में तुम्हें डर लगता है। यदि

ऐसा न होता तो...।''

पंडित क्रोध से तमतमा गया। वह छाया को जोर का थप्पड़ न जड़ दे मानो इस भय से छाया पलायन कर गई।

''माना कि मैं भयभीत हूँ किन्तु इसका यह अर्थ तो नहीं कि मैं साधु को यूं ही असुरक्षित छोड़ दूँ। पंडित ने दृढ़ निश्चय कर लिया ''जो होगा देखा जायेगा।''

पंडित देख रहा था कि महाराज के चारों ओर एक वृत्त बन गया, वह भी उसी की परिधि में पहुँच चुका था। यह सब क्या हो रहा है वह कुछ समझ नहीं पा रहा था किन्तु देवप्पा स्वामी सब कुछ समझते हुए भी सहज बने रहे। वे सुखपूर्वक सामायिक में तल्लीन हो रहे थे कि तभी व्याघ्र की भयंकर गर्जना हुई किन्तु स्वामी जी की मुद्रा परम शांत अविचलित थी। पंडित का भय, भय की सीमा लांघ चुका था किन्तु निकट आता वह व्याघ्र उस वृत्त की सीमा लांघने का दु:साहस नहीं कर पा रहा था। व्याघ्र भीषण गर्जना-तर्जना कर, विकराल रूप दिखाता हुआ कुछ ही क्षणों में वहाँ से चला गया।

ऐसे महान तपस्वी गुरू की छत्रछाया पाकर सातगौड़ा स्वयं को धन्य महसूस कर रहे थे। उन्होंने निवेदन किया ''भगवन, मुझे जिनदीक्षा देकर कृतार्थ कीजिए।''

महाराज का भी भोज में अनेक बार लंबा-लंबा प्रवास हो चुका था। वे सातगौड़ा के वैराग्य भावों को अच्छी तरह से जानते थे। उनके परिवार में अनेक बार आहार होते रहे हैं इसलिए पारिवारिक पृष्ठभूमि से भी सुपरिचित थे अत: परिवार की प्रत्यक्ष अनुमति की भी विशेष आवश्यकता नहीं थी। इसलिए उन्होंने सातगौड़ा को दीक्षा देने का मन तो बना लिया किन्तु मन में विचार किया कि ''पंचम काल है, बाह्य प्रतिकूलताएँ बहुत हैं, मिथ्या, धर्मियों का बोलबाला है ऐसे में श्रीमंत घराने से आए इस साधक को उपसर्ग और परिषहों के लिए तैयार रहना होगा, अत: क्रमपूर्वक दीक्षा देना ही उचित है।''

सातगौड़ा को भी गुरु आज्ञा स्वीकार थी। कहीं सूचना प्रसारित नहीं की गई थी। गांव में 13-14 घर के जैनी थे अत: मंदिर के अंदर से, ही दीक्षा

विधि होनी थी। प्रथम तो दीक्षार्थी का जुलूस निकला फिर दीक्षार्थी ने अभिषेक, आदि की क्रिया सम्पन्न की तत्पश्चात् प्रारंभ हुए दीक्षा संस्कार। आपके शांत भावों के अनुरूप माता-पिता ने आपका नामकरण सातगौड़ा किया था और अब देवप्पा स्वामी ने आपको शांति का सागर समझ शांतिसागर नाम प्रदान कर दिया। फिर देवप्पा स्वामी ने शांतिसागर जी को एक छोटी सी पिच्छी प्रदान की। क्षुल्लक जी भी अपने गुरु के वात्सल्य भाव से अभिभूत हो गए क्योंकि तात्कालिक अन्य पिच्छी की अनुपलब्धता में देवप्पा स्वामी ने अपनी पिच्छी के पंख निकालकर पिच्छी बनवा दी थी। कमण्डल भी उपलब्ध नहीं था अत: लोटे में सुतली बांध कर कमण्डल का कार्य पूरा हुआ। क्षुल्लक जी भी अति प्रसन्न थे क्योंकि उन्हें मुनि का लघु रूप जो प्राप्त हो गया था। उनकी दृष्टि बाह्य साधनों की अपेक्षा ग्यारहवी प्रतिमा के स्वरूप पर अधिक थी।

ग्यारहवी प्रतिमा उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा है। ''उपाध्याय यदि घर सुनिश्चित कर देता है तो फिर ऐसे स्थान में वह त्यागी आहार कैसे, कर सकता है।'' अत: जब गुरु ने उन्हें प्रभावना हेतु पृथक विहार की आज्ञा दी तो महाराज की चर्या से अपरिचित स्थानों में कठिनाईयाँ बढ़ गईं। कभी-कभी तो चार-पाँच दिनों तक आहार लाभ न हो पाता। क्षुल्लक जी एक स्थान पर पहुँचे तो आहार -चर्या के समय उपाध्याय ने उनसे निवेदन किया।

''स्वामी, जी अमुक घर में चलना है।''

वह मार्ग बताते हुए चल रहा था किन्तु क्षुल्लक जी ने उसका अनुसरण नहीं किया। अनेक गलियों में भ्रमण करने पर भी उन्हें आहार का लाभ नहीं मिला तो वे धर्मशाला में आकर शांति से बैठ गए। प्रथम दिन आहार नहीं होने पर चौका लगाने वाले श्रावक एवं उपाध्याय को भी निराशा हुई किन्तु उन्होंने सोचा ''हो सकता है, महाराज की कोई विधि हो।'' द्वितीय दिवस जब महाराज पुन: आहार को निकले और निर्धारित चौके में आहार नहीं हुए तो निराशा क्षोभ में बदल गई। श्रावक ने उपाध्याय को भोजन भी बेमन से कराया, इससे उपाध्याय का मन बहुत खराब हो गया था। तीसरे दिन पुन:

घटनाक्रम की पुनरावृत्ति हुई तो उपाध्याय को भोजन तक के लिए नहीं पूछा गया, इससे उपाध्याय का पारा सातवें आसमान पर पहुँच चुका था अत: वह सीधे महाराज के पास पहुँच गया।

''जहां मैं आहार तय करता हूँ, वहां छोड़कर पूरे नगर में घूम-घूमकर क्या बताना चाहते हैं।'' उपाध्याय ने क्रोध में कहा। क्षुल्लकजी से प्रतिक्रिया नहीं मिलने पर उसका क्रोध कुछ और बढ़ गया था किन्तु महाराज की शांत मुद्रा देख उसका आक्रोश बाहर न निकल सका। वह बोला ''एक दिन भोजन नहीं मिला तो मेरा पूरा दिन बिगड़ा जा रहा है। जिस शरीर को तीन दिनों से आहार नहीं मिला हो, उसकी स्थिति कितनी चिंतनीय होगी। ऐसी विधि भी क्या लेना जिससे, तन, मन और जीवन सब कुछ स्वाहा हो जाए। साधना वैसी और उतनी होनी चाहिए कि जिससे साध्य की प्राप्ति हो।''

सामायिक का समय होने पर महाराज मंद स्मित देते हुए सामायिक में लीन हो गए। उपाध्याय जैसे स्वयं से हार गया। उस दिन वह भी निराहार रहा। अगले दिन उसने चौके की व्यवस्था नहीं की। महाराज आहार के लिए निकले लेकिन आज तो निर्धारित चौका भी नहीं था। पांचवे दिन भी ऐसा ही हुआ। पिछले पांच दिनों से महाराज का आहार नहीं होने से पूरे गांव में हलचल तो थी ही किन्तु उपाध्याय के विरुद्ध जाने का साहस किसी में नहीं था। पर एक माता का ह्रदय रो पड़ा। गृहस्वामी शुरू-शुरू में उपाध्याय से भयभीत हो रहा था परन्तु धर्मपत्नी ने उसे समझाया ''उपाध्याय क्या करेगा चार बातें ही सुनायेगा, कोई जान तो नहीं ले लेगा।''

''वह जान ही ले लेता तो भी ठीक था।'' वृद्ध आगे बोला ''उपाध्याय की चार बातें, मात्र बातें नहीं हैं वह समाज में उठना-बैठना बंद करवा देगा। न वह मरने देगा और न ठीक से जीने ही देगा।''

'' यदि महाराज के स्थान पर आपकी संतान होती तो क्या तब भी ऐसा ही करते?'' वृद्धा ने प्रश्न नहीं किया था, एक गहरा संदेश दिया था। ''साधु समाज की धरोहर होते हैं, अत: उनका जीवन बहुमूल्य है ही किन्तु ये तो

कोई महान साधक जान पड़ते हैं। उन्हें पांच दिन तक तो क्या जीवन पर्यंत भी आहार नहीं मिले तो भी वे विचलित नहीं होंगे किन्तु धिक्कार है हमारे जीवन को जो ऐसे तपस्वी को भी भोजन न करा सके।'' उस समय वृद्धा के हृदय में उमड़ता हुआ वात्सल्य और आत्मा में विकसित हुई भक्ति अलौकिक थी।

'' मेरी भी तो कुछ सुनो।''

''मुझे कुछ नहीं सुनना है। आप मेरी सुनो।'' वृद्धा ने दृढ़तापूर्वक कहा ''जब तक महाराज के आहार नहीं होंगे मैं भी भोजन नहीं करूंगी।''

अंतत: गृहस्वामिनी की इच्छा के आगे गृहस्वामी नतमस्तक हो गया था और छठवें दिन उसने भी पत्नी के साथ श्रद्धापूर्वक महाराज का पड़गाहन किया। जो आहार अपने लिए बनाया था उससे महाराज की पारणा करवाई तो बदले में उन्हें ऐसा आनंद आया कि वैसा आज तक कभी नहीं आया, जीवन की बड़ी से बड़ी उपलब्धि में भी नहीं। महाराज के आभामंडल और उस दंपत्ति के पुण्य के प्रभाव से उपाध्याय की अकड़ ढीली हो गई, उसने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी। अत: अगले दिन से अन्य श्रावकों का साहस भी बढ़ गया और फिर क्या था प्रतिदिन अनेक श्रावक महाराज का पड़गाहन करने लगे। पहले दिन श्रावकों ने महाराज को जो आहार लेते देखा आगे वे उन्हें वही आहार देने लगे। बहुत लंबे समय तक यही क्रम चला। एक बार किसी ने महाराज से पूछा ''महाराज, आप चावल के अलावा कुछ लेते ही नहीं।''

तो महाराज के मुखारविंद से सहजता में ही निकल गया। ''जो श्रावक देता है, वह ले लेता हूँ।''

महाराज के इस उत्तर से श्रावकों को अपनी भूल का ज्ञान हुआ तो उन्होंने आगे से महाराज के लेने योग्य अन्य पदार्थों का भी उपयोग प्रारंभ कर दिया। हालांकि प्रारंभिक कुछ वर्षों तक नए स्थानों पर उपाध्याय की प्रतिक्रिया कमोवेश वैसी ही होती थी किन्तु फिर शनै: शनै: महाराज की प्रभावशीलता, दृढ़ता, आगमनिष्ठा एवं जागरूक श्रावकों के कारण उपाध्यायों का विरोध, समाप्त प्राय: हो गया। फिर भी कई बार महाराज के आहार नहीं हो पाते थे। इस बार कारण कुछ और हो गया था। वे चौके में जाते अवश्य किन्तु वहाँ

श्रावकों की विपरीत मान्यताओं को पुष्ट करने वाली गृहीत मिथ्यात्व की पोषक सामग्री को देखकर वे निराहार ही लौट आते।

''महाराज हमारे किस पाप कर्म के उदय से आप हमारे चौके से लौट आए।'' अश्रु बहाते हुए एक श्रावक ने पूछा।

''भाई जिनधर्म को पाकर भी यदि जीव अनादिकालीन भूलों को नहीं सुधारता तो अनंतकालीन दु:ख प्रवाह से उसे कौन बचा सकेगा?''

''महाराज आपका कहना उचित है किन्तु हम तो संसारी प्राणी हैं। नितप्रति ऐसी अनेक परिस्थितियाँ बनती हैं जिनमे हमारा पुरुषार्थ गौण हो जाता है तब हमें न चाहते हुए भी वैसा करना पड़ता है।'' श्रावक ने विस्तार पूर्वक अपनी विवशता बतलाई।

''तो क्या आपका समाधान हो जाता है?'' महाराज ने पूछा।

''जी कभी हो भी जाता है और कभी नहीं भी हो पाता है।''

''जब आपके काम नहीं बनते तब क्या कारण होता है?''

''महाराज जब भाग्य ही रूठा हो तो फिर अन्य कोई क्या कर सकता है।'' उसने बहुत ही विश्वास के साथ कहा।

'' अर्थात् प्रारब्ध की भूमिका को आप भी मानते हैं?'' महाराज के वाक्य में कटाक्ष नहीं था जिससे श्रावक के मन में कुछ हलचल हुई।

वह बोला ''महाराज बिना भाग्य के तो कुछ हो ही नहीं सकता।''

''भाई, आज का पुरुषार्थ कल का भाग्य है। इसलिए भाग्य को बनाना और बिगाड़ना हमारे वर्तमान के क्रियाकलापों पर आधारित है। बाहर में क्रिया एक सी होते हुए भी उसका फल भिन्न-भिन्न जीवों को अलग-अलग फलता है जिसका कारण और कुछ नहीं उस समय क्रिया का उद्देश्य एवं तत्-समय होने वाले जीव के भाव ही हैं। यदि श्रद्धा में समीचीनता होगी तो उद्देश्य तदनुरूप होगा फलत: क्रियाओं का रूप भी समीचीन होगा।''

महाराज के उपदेश में गहराई भी थी और वात्सल्य का पुट भी। उस श्रावक का हृदय परिवर्तित हो गया। उसने अनायतनों को न केवल अपने घर से अपितु अपनी आत्मा से ही दूर कर दिया। इस तरह आए दिन कोई न कोई

श्रावक यथार्थ रूप में जैन धर्म को धारण कर स्व-प्रेरणा से अपने घरों में उपलब्ध अनावश्यक सामग्रियों को नदी में विसर्जन करने लगे। जैनवाड़ी में चातुर्मासिक प्रभावना के फलस्वरूप लोगों में बड़ी जागरूकता आ रही थी अत: गृहीत मिथ्यात्व की पोषक सामग्री का निरंतर विसर्जन हो रहा था। यह बात असहिष्णु लोगों को चुभ रही थी इसलिए वे महाराज के विपरीत होते जा रहे थे। अनेक बार उन्होंने महाराज का विरोध भी किया किन्तु महाराज के प्रभाव के समक्ष वे प्रभावहीन हो जाते थे। अंतत: वे समूह बनाकर राजा से मिले। उनकी पूरी बात सुनने के उपरांत राजा ने विचार किया कि 'राजा का धर्म, धर्म-निरपेक्ष रहना है। यद्यपि मैं जैन नहीं हूँ किन्तु इस नाते दूसरे पक्ष को अवसर दिए बिना किसी निर्णय पर पहुँचना अनुचित होगा।''

पिछले कुछ समय से राजा न केवल महाराज की साधना से परिचित होते जा रहे थे अपितु किन्हीं अर्थों में वे महाराज से प्रभावित भी हो रहे थे अत: वे अपनी रानी के साथ एक दिन महाराज के पास पहुँच ही गए।

''स्वामी जी, आपकी साधना के बारे में बहुत सुना है। भोजन में कुछ लेते नहीं हैं किन्तु लंबे-लंबे उपवास करते हैं। ध्यान के प्रति आपका ऐसा प्रेम है कि यदि ध्यानावस्था में सर्पराज भी आपके शरीर से लिपट जाए तो आपको कोई अंतर नहीं पड़ता, यदि सिंह भी निकट आकर गर्जना करता रहे तो भी आपका मन विचलित नहीं होता।''

रानी ने राजा की बात को आगे बढ़ाया ''आप दयामूर्ति हैं। शत्रु और मित्र दोनों के प्रति एक सा व्यवहार करते हैं। हरिजनों तक के प्रति आपके हृदय में अपार प्रेम है। आपके कल्याणकारी उपदेशों में सामाजिक समन्वय एवं सांप्रदायिक सौहार्द के सूत्र होते हैं।''

''हाँ स्वामी जी यह अक्षरश: सत्य है किन्तु...।'' राजा ने हाथ जोड़ लिए।

महाराज लोक-व्यवहार के ज्ञाता तो थे ही अत: वे राज परिवार की उपस्थिति मात्र से उनका मन्तव्य समझ चुके थे। महाराज उनकी विनय से प्रसन्न थे एवं यथार्थ में सामाजिक समरसता के हृदय से समर्थक भी थे।

महाराज के मुखमण्डल पर मंद स्मित फैल गई किन्तु उनके होठों पर स्पंदन नहीं हुआ।

''स्वामी जी क्या मेरी बात को समझ नहीं पाये?'' राजा के मन में आया किन्तु संकोचवशात् उनके मुख से एक शब्द भी नहीं निकला। उन्होंने रानी की ओर देखा एवं फिर नेत्रों के संकेत से कुछ बात कर पुनः हाथ जोड़ लिए।

''आपकी मान्यता में पति का क्या स्थान है?'' महाराज ने दृष्टि रानी की ओर कर दी।

अनपेक्षित प्रश्न से रानी विस्मित हुई किन्तु प्रश्न महात्मा की ओर से आया था अत: प्रतिप्रश्न करके वह उनकी अवज्ञा नहीं कर सकती थी। रानी ने करबद्ध हो कहा ''स्वामी जी हम स्त्रियों के पति, परमेश्वर होते हैं।''

''और अन्य पुरुष?''

महाराज का यह प्रश्न तो पहले से भी भारी था किन्तु रानी ने मन को हल्का करते हुए कहा ''जी, उनका उनके योग्य स्थान होता है।''

''अन्य पुरुषों के लिए स्त्रियों के हृदय में वह स्थान नहीं हो सकता जो पति के लिए होता है।'' यह आगे का वाक्य बिना बोले ही सभी के मन के द्वार से गुजर गया।

रानी को महाराज की विवेचना का सार समझ में आ गया।''जिनधर्मियों के इष्ट देव तीर्थंकर आदिनाथ से लेकर महावीर स्वामी पर्यंत चौबीस तीर्थंकर हैं। वे सभी वीतरागी अरिहंत होते हैं। उनसे भिन्न अन्य किसी को वैसा स्थान वे कैसे दे सकते हैं।''

राजा महाराज के भाव समझ रहा था। ''आपके यहाँ भी अनेक उत्सव होते हैं। उनमें प्रतिमाओं की स्थापना भी होती है। उत्सव पूर्ण होते ही आप उनका विसर्जन कर देते हैं। जब तक जैन गुरु नहीं आए थे तब तक उनकी पूजा का काल था अब उनके आते ही अभी तक चल रहा जैनियों का कार्यक्रम पूर्ण हो गया। अब पूर्व में स्थापित मूर्तियों का विसर्जन जैनियों का कर्तव्य है। अब जैनियों को अपने इष्ट अरिहंतों की पूजा का पर्व प्रारंभ कर

देना चाहिए।'' राजा-रानी दोनों भद्र परिणामी तो थे ही, महाराज के आभामण्डल के प्रभाव से उनकी आशंकाएँ समाप्त हो गईं। महाराज के प्रति श्रद्धा से अभिभूत हो उन्होंने जैन धर्म की अत्यंत अनुमोदना की। मिथ्यात्व के किवाड़ों से अपने जीवन को संकीर्ण कर जो अपने संसार चक्र को सुदृढ़ किए जा रहे थे ऐसे अनेकानेक जीव दिन-प्रतिदिन महाराज के चरणों में आकर समीचीन मार्ग को धारण कर रहे थे।

महाराज की सभा में नितप्रति एक व्यक्ति आता। ऐसा लगता था कि वह महाराज से कुछ कहना चाहता है किन्तु वह बिना कहे ही चला जाता। वेशभूषा से तो वह जैन पंडित जैसा लगता था एवं अन्य लोगों के व्यवहार से वह इसी नगर का एक मान्य श्रेष्ठी भी प्रतीत होता। महाराज ने भी देखा कि उस व्यक्ति ने अनेक बार उनके निकट आने का प्रयत्न किया किन्तु कुछ लोग उसे महाराज से दूर रखने का प्रयत्न करते दिखे। दया से भरे हुए महाराज एक दिन सभा विसर्जन के उपरांत सीधे उस व्यक्ति के निकट पहुँच गये। वह हतप्रभ था एवं अन्य लोग भी।

''सब ठीक तो है न।'' महाराज ने उससे पूछा।

''जी, जी, जी...।'' वह गदगद वाणी से यह एक शब्द ही बोल सका।

''महाराजश्री, आहार-चर्या का समय हो गया है।'' एक श्रेष्ठी ने महाराज के समक्ष कमण्डल रखते हुए कहा। महाराज मुस्कुराए फिर दृष्टि उस व्यक्ति पर टिका दी।

वह समझ गया कि महाराज ने उससे कुछ प्रतिक्रिया चाही है। उसके हाथ तो पहले से ही जुड़े हुए थे। वह बोला ''महाराजश्री आपके उपदेशों का सार मुझे समझ में आ चुका है। यदि जीव को अपना हित करना है तो जिनेन्द्र प्रभु ही उसके लिए एकमात्र शरण हैं। बहुत दिनों से मैं आपसे यह कहना चाह रहा था किन्तु न जाने कौन सी बाधा खड़ी हो जाती थी। अब आप परम कृपालु ने स्वयं ही यह अवसर दे दिया है तो अब मैं भी गृहीत मिथ्यात्व के स्थानों को छोड़कर सम्यग्दर्शन के कारणभूत मात्र जिनदेव की आराधना का संकल्प करना चाहता हूँ।

''नहीं, मांत्रिक..।'' एक श्रेष्ठी जोर से चीखा।

''महाराज, ये संभव नहीं है।'' अन्य श्रावक ने कहा।

महाराज को उनके शब्द, भाव-भंगिमा एवं व्यवहार से बिना कहे ही वस्तुस्थिति स्पष्ट हो चुकी थी। महाराज ने उन सभी की ओर मुस्कुरा कर देखा किन्तु बोले कुछ नहीं। मांत्रिक संकल्प के लिए उद्यत हुआ तो श्रेष्ठी ने महाराज के समक्ष हाथ जोड़ लिए। ''महाराज, यदि इन्होंने भी यह संकल्प ले लिया तो बड़ा अनर्थ हो जायेगा।''

उसे लगा कि महाराज पूछेंगे ''कैसा अनर्थ?'' किन्तु महाराज मौन ही थे, मानो वे अरिहंत प्रभु के समान साक्षी भाव से घटनाओं का मात्र अवलोकन कर रहे हों। अत: वह ही आगे बोला ''महाराज, ये एक प्रसिद्ध मांत्रिक हैं। भयंकर सर्पराज के द्वारा भी काटे गए प्राणी का विष बड़ी सरलता से उतार देते हैं। इनके द्वारा न केवल सैकड़ों मनुष्यों की रक्षा हो चुकी है, अपितु अनेक पशु-पक्षियों को भी अभयदान मिल चुका है।'' वह भावुक हो अवरुद्ध कण्ठ हो गया तो उस दूसरे श्रावक ने उसकी बात को आगे बढ़ाया ''महाराज यदि आप इन्हें संकल्प दे देते हैं, तो फिर हम लोगों का क्या होगा?''

''जिनके नाम-स्मरण मात्र से ही विकट से विकट कर्मों की जड़ें उखड़ जाती हैं, जिनकी भावपूर्वक स्तुति से विषय-कषायों रूपी विषधरों का विष भी दूर हो जाता है, जिनके प्रभाव से यह जीव अमरता को प्राप्त कर लेता है क्या उनकी आराधना से यहां के सांपों का विष दूर नहीं होगा?'' महाराज अपने चिंतन से बाहर निकल कर बोले ''घबराओ नहीं। मैं भी चाहता हूँ कि आपके द्वारा जो परोपकार का कार्य चल रहा है वह आगे भी जारी रहे।''

उपस्थित लोगों को लगा ''हम व्यर्थ ही महाराज के बारे में संदेह कर रहे थे। महाराज, लोक-व्यवहार को अच्छी तरह जानते-समझते हैं। वे कोई ऐसा कार्य नहीं करेंगे जिससे जन-सामान्य के हित प्रभावित हों। महाराज आम जनता को गृहीत-मिथ्यात्व त्याग की भले ही प्रेरणा देते हैं, कभी आवश्यकता पड़ती है तो अपने ही समक्ष उन्हें संकल्पबद्ध होने के लिए नैतिक दबाव भी बना देते हैं किन्तु एक मांत्रिक से वे ऐसी अपेक्षा कभी नहीं रखेंगे।''

''मैं तुम्हें यह जैन मंत्र देता हूँ। तुम दो माह तक अनायतनों एवं अन्य मंत्रों को त्यागकर, विधि पूर्वक इसकी साधना एवं प्रयोग करो। यदि इस कालावधि में तुम्हें सफलता नहीं मिलती है तो फिर तुम स्वतंत्र हो।''

महाराज के इस उपदेश से लोग विस्मित थे किन्तु महाराज सस्मित। उन्होंने मांत्रिक को मिथ्यात्व त्याग का संकल्प कराकर उसे जैन मंत्र दिया एवं सविस्तार उसकी विधि भी समझा दी। कुछ ही दिनों के उपरांत एक श्रेष्ठी के पालतु पशु को सर्प ने काट दिया। सर्प अत्यंत जहरीला था जब तक मांत्रिक वहाँ पहुँचा तब तक वह पशु मरणाभिमुख हो चुका था। किसी को उसके बचने की आशा नहीं थी। गृहस्वामी भी घबरा रहा था क्योंकि वह बहुत मूल्यवान पशु था एवं मांत्रिक पूर्व साधित मंत्र का त्याग भी कर चुका था। मांत्रिक ने महाराज प्रदत्त मंत्र का कुछ बार ही स्मरण किया तो वह पशु सोए हुए के समान उठकर खड़ा हो गया। इतने त्वरित परिणाम किसी ने कभी नहीं देखे थे। इस घटना के उपरांत वह मांत्रिक तो जीवनपर्यंत के लिए सम्यग्दृष्टि बन ही गया अन्य अनेक लोगों ने जिनधर्म की अचिंत्य महिमा समझकर उसे हृदयपूर्वक धारण किया। इस तरह क्षुल्लक शांतिसागर जी महाराज का जहां-जहां विहार होता वहां-वहां अनेकानेक भव्य जीवों को सम्यग्दर्शन रूपी निधि की उपलब्धि होती।

नेमण्णा नाम का एक युवा जो बचपन से ही यवनों के प्रभाव से अनायतनों में जाया करता था, उसने महाराज के उपदेश से प्रभावित होकर जैन धर्म को हृदय से स्वीकार लिया। निजग्राम कुड़ची में क्षुल्लक महाराज के उसके घर आहार हुए तो वह महाराज की सेवा में लग गया। फिर महाराज के मुनि बनने के उपरांत, इन्हें भी महाराज से दीक्षा प्राप्त हो गई और नाम प्राप्त हुआ नेमिसागर (कुडची)।

❀❀❀

3

धर्म-प्रभावना के साथ-साथ महाराज की साधना भी निरंतर बढ़ रही थी। इसी दौरान आपने गिरनार क्षेत्र की यात्रा की। यादवकुल शिरोमणि बाईसवें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ स्वामी की तपस्थली एवं निर्वाण-भूमि की पावन तरंगों से महाराज के विशुद्धि-स्थानों में ऐसी बढ़ोत्तरी हुई कि उन्हें इस तीर्थ-क्षेत्र में पुरुष पर्याय में पंचम गुणस्थान की सर्वोत्कृष्ट अवस्था ऐलक-रूप की प्राप्ति हो गई।

महाराज अपने पद के अनुरूप सदैव निर्दोष चर्या का पालन करते थे। वे गिरनार पर्वत की अनेक वंदना कर चुके थे किन्तु फिर भी पुन: पुन: वंदना को उनका मन लालायित रहता था। वे अनेक बार मध्यान्ह की सामायिक पर्वत पर करते थे। एक बार सामायिक में ऐसे लीन हुए कि समय का भान ही नहीं हुआ। चूंकि सूर्यास्त होने के बहुत समय पहले तलहटी पहुँच गए थे अत: वे आहारचर्या के लिए निकल गए। श्रावक आपकी अंजुली में ग्रास रखने ही वाला था कि आपने अंजुली छोड़ दी। श्रावक घबरा गया, उसे लगा कि उससे कोई भूल हो गई है। अन्य लोग भी उस श्रावक पर टीका-टिप्पणी करने लगे। महाराज के आहार नहीं होने से वह श्रावक वैसे ही दु:खी था, ऊपर से अन्य लोगों के कठोर वचनों को सुनकर उसे रोना आ गया। वह महाराज के चरणों में गिर पड़ा।

महाराज मौन पूर्ण होते ही बोले ''भाई तुमसे कोई त्रुटि नहीं हुई है, तुम खेद-खिन्न मत होओ।''

''तो महाराज आपने आहार ग्रहण क्यों नहीं किया?'' वह श्रावक अश्रु ढुलकाते हुए बोला।

''महाराज, हमे क्षमा करें जो हमने अपने दाता भाई को दु:खी किया।

एक श्रेष्ठी ने विनम्र मुद्रा में कहा ''इस विशाल पर्वतराज की वंदना के उपरांत शरीर थककर चूर हो जाता है जठराग्नि भी ऐसी भभकती है कि बिना भोज्य सामग्री को ग्रहण किए बुझती ही नहीं। यदि आहार विधि में कोई भूल नहीं हुई है तो फिर अकारण आहार का त्याग?''

''कार्य के पीछे कारण तो अवश्य ही होता है।'' महाराज ने बड़ी गंभीरतापूर्वक किन्तु प्रसन्न मुद्रा में कहा ''जैसे ही मैंने अंजुली बांधी मेरी दृष्टि घड़ी पर गई। मेरे मन में विचार आया कि यदि मैं आहार लेता हूँ तो अन्य श्रावकों को भोजन लेने में रात्रि भोजन का दोष लग सकता है।''

''किन्तु महाराज अभी सूर्यास्त के लिए तो तीन घड़ी से भी अधिक समय है।'' वह श्रावक बीच में ही बोल गया।

''हाँ, किन्तु रात्रि भोजन त्यागी श्रावक को सूर्यास्त के दो घड़ी पूर्व भोजन कर लेना चाहिए।''

महाराज इसके उपरांत मौन हो गए किन्तु बाकी सब लोग घटना का रहस्य समझ गए। ''अहो! धन्य हैं ये साधक। ये महात्मा अपने व्रतों को तो निर्दोष रीति से पालते ही हैं दूसरों के व्रतादिक भी अच्छी तरह से सधें इसका भी बहुत ध्यान रखते हैं।'' सब इस धन्य भाव से भर गये।

महाराज भी गिरनार क्षेत्र की सन्निधि से स्वयं को धन्य अनुभूत कर कुछ काल पश्चात् वापिस लौटकर सांगली आ गए। वे अब अतिशीघ्र मुनिपद प्राप्त कर लेना चाहते थे अत: उन्होंने बड़े-बड़े नियमों को लेना प्रारंभ कर दिया। नसलापुर चातुर्मास के उपरांत बाबानगर के अतिशयकारी पार्श्व प्रभु का दर्शन कर आप ऐनापुर पहुँचे, जहाँ निर्ग्रंथ मुनि के समागम से तत्काल निर्ग्रंथ अवस्था धारण करने की भावना बलवती हो गई अत: आप वहाँ से सीधे अपने गुरु देवेन्द्रकीर्ति महाराज के पास यरनाल पहुँच गये। बहुत समय के पश्चात् गुरु दर्शन पाकर ऐलक जी का रोम-रोम पुलकित हो गया। गुरु भी शिष्य की शास्त्रोक्त चर्या देखकर प्रसन्नचित्त थे।

''कुछ कहना चाहते हो?'' शिष्य का अंत:करण समझ देवप्पा स्वामी ने पूछा।

''गुरुवर! आपकी एवं आगम की आज्ञानुसार मैंने अभी तक व्रतों का पालन किया किन्तु अब यह लंगोट मात्र परिग्रह भी मुझे कष्टदायी मालूम पड़ता है। अब आपके श्रीचरणों में यही प्रार्थना है कि सर्व पाप क्षयंकरी, मनुष्य पर्याय को सार्थक करने वाली निर्ग्रंथ मुद्रा प्रदान कर मुझे कृतार्थ करें। ऐलकजी ने अपनी दृष्टि गुरु-चरणों की ओर कर ली।

''दिगम्बर भेष धारण करना साधारण बात नहीं है।'' देवप्पा स्वामी गंभीर वाणी में बोले ''आज समय की गति विचित्र है। मिथ्यात्वी जीवों की बहुलता है। दुष्टजनों के अभद्र वचन सुनकर सहज ही मन में मलिनता एवं व्रतों के प्रति ग्लानि सम्भव है। परिषहों का प्रचंड प्रहार भी परिणामों को विचलित कर आत्मा को हिला देता है। यदि निर्ग्रंथ पद लेकर निर्दोष रीति से उसका पालन न किया तो, जीव का पतन सुनिश्चित है। इसलिए सामर्थ्य के अनुसार यथायोग्य संयम ही लेना उचित है।'' देवप्पा स्वामी ने सारभूत उपदेश के उपरांत पूछा ''क्या तुम इस दुर्धर निर्ग्रंथ पद का भार उठा सकोगे?''

''गुरुवर आपकी कृपा से ऐसा अवश्य संभव हो जायेगा।'' तत्काल ऐलक जी ने विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया।

''जल्दी में काम करना, पीछे पश्चाताप का कारण होता है।'' देवप्पा स्वामी ने उन्हें जैसे एक और चेतावनी दी।

''भगवन! आपका कथन अक्षरश: सत्य है किन्तु मैं वर्षों से निर्ग्रंथ मुद्रा हेतु अपनी आत्मा को तैय्यार कर रहा हूँ। जिनेन्द्र प्रभु के प्रसाद एवं आपके आशीर्वाद से सदैव इस पद की रक्षा करूंगा। ऐसा करते हुए यदि कदाचित प्राणों के वियोग की संभावना हो तो भी मुझे उसकी चिंता नहीं रहेगी। उपस्थित लोगों ने भी देवप्पा स्वामी से प्रार्थना की कि ''ऐलक महाराज बहुत पवित्र आत्मा हैं। ये स्वप्न में भी अपने व्रतों में दूषण नहीं लगायेंगे, अत: इन्हें जैनेश्वरी दीक्षा देने से इनके साथ-साथ अन्य अनेक जीवों का भी कल्याण होगा।''

ऐलकजी के परिणाम, वैराग्यसागर में डूबे हुए थे। इससे देवप्पा स्वामी के मन में यह विश्वास जागृत हो गया कि ''संयम की उत्कृष्ट भावना के धारक इस जीव का प्रत्येक शब्द सत्य की घोषणा कर रहा है।''

यरनाल में पंचकल्याणक के सुअवसर पर प्रभु के दीक्षा-कल्याणक के श्रेष्ठ योग पर दीक्षा देने का निश्चय हो गया। उस प्रसंग को देखकर महाराज के एक भक्त के मन में भाव उठे। वह सोच रहा था।'' गृहस्थ समाज प्रमाद में डुबा हुआ है उसे आगम का न परिचय है और न उसे प्राप्त करने की उत्सुकता किन्तु महाराज तो आगम की आज्ञानुरूप आचरण करने वाले हैं। किस प्रकार इनके मुनिपद का निर्वाह होगा? भविष्य बड़ा अनिष्टपूर्ण दिखलाई देता है।'' ऐसा सोचते-सोचते उसके नेत्रों से अश्रु धारा बह पड़ी।

उसकी भावदशा समझ महाराज ने उसे सांत्वना दी ''डरने की क्या बात है? यदि व्रतों के योग्य सामग्री न रहेगी तो हम समाधि धारण कर लेंगे।'' महाराज ने उसकी ओर देखकर मुस्कुरा दिया। उसे महाराज के उपदेश और अनुपम मुस्कान का अर्थ कितने अंशों में समझ आया पता नहीं किन्तु वहाँ उपस्थित नेमण्णा को जैसे सब कुछ समझ आ गया। वह महाराज की क्षुल्लक एवं ऐलक अवस्था के समय चर्या को खूब देख चुके थे। उनके जीवन में वैराग्य का प्रादुर्भाव महाराज की अर्थपूर्ण मुस्कान से ही हुआ था। और अब पुनः महाराज की अपूर्व मुस्कान। नेमण्णा के मन में बहुत कुछ घटित हो चुका था एवं आँखों के सामने एक दृश्य घट रहा था। भगवान को वैराग्य हुआ जानकर, लौकान्तिक देव प्रभु के वैराग्य की अनुमोदना करते हुए मानो अपनी भव संतति को ही समेट रहे थे एवं नेमण्णा के मन में भी मुनिमार्ग का अनुकरण करने की तीव्र भावना जागृत हो गई। भगवान पालकी में विराजमान होकर दीक्षावन पहुँचे। ऐसे महान अवसर पर ऐलक शांतिसागर जी जैनेश्वरी प्रव्रज्या को धारण कर रहे थे। तभी ''गुरुवर मुझे भी निर्ग्रंथ मुद्रा की प्राप्ति हो।'' देवप्पा स्वामी के श्रीचरणों में नेमण्णा ने श्रीफल समर्पित करते हुए निवेदन किया।

''अच्छा।'' देवप्पा स्वामी ने सस्मित वदन नेमण्णा एवं दीक्षार्थी ऐलक जी की ओर देखा।

''जी भगवन्...।'' नेमण्णा ने अपने कथन की पुष्टि में कहा।

''बस अकेले...।'' देवप्पा स्वामी ने जैसे मनोविनोद किया।

नेमण्णा ने हाथ जोड़ लिए।

तभी पीछे से रामू खड़ा हो गया। ''स्वामी जी, मेरी भी यही भावना है।''

देवप्पा स्वामी विचारने लगे। ''प्रभु के दीक्षा कल्याणक का निमित्त पाकर सहस्रों जीव वैराग्य को प्राप्त होकर कल्याणकारी जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर लेते हैं। यहाँ सातगौड़ा जो ऐलक शांतिसागर के रूप में हैं उसके द्वारा प्रभावित होकर ये लोग मुनिमार्ग की ओर अग्रसर होना चाहते हैं। शांतिसागर निश्चित ही महापुरुष हैं। इनके माध्यम से अनेकानेक जीवों का कल्याण होगा।''

देवप्पा स्वामी अपने विचारों से बाहर आए तो देखा एक ओर नेमण्णा एवं रामू विनीत मुद्रा में खड़े हैं तो दूसरी ओर दीक्षार्थी ऐलक जी मुनि दीक्षा के संस्कारों के लिए प्रतीक्षारत हैं। उन्होंने एक ओर दोनों को यथायोग्य नियम-संयम देकर ऐसी ही शुभ भावना बनाए रखने का आशीर्वाद दिया तो दूसरी ओर ऐलक जी के केशलोंच का संकेत किया। इधर प्रभु के वस्त्राभरण का त्याग हुआ तो उधर ऐलक जी ने भी लंगोटी रूप परिग्रह त्याग करते हुए, तीर्थंकर प्रभु की मुद्रा धारण कर ली। उस समय शांतिसागर जी को ऐसा लगा ''मानो एक लंगोट की गठान खुलते ही, अनादि कालीन संसार की ही गठान खुल गई हो। संसार परिभ्रमण का कारणभूत परिग्रह रूपी पाप-पुंज ने आज मेरे जीवन से विदा ले ली है। हे प्रभो! मैं आपके मार्ग का अनुकरण करते हुए यथाशीघ्र सिद्धालय का वासी बनूँ। संसार के समस्त जीवों को भी जिनधर्म की शरण प्राप्त हो।''

शांतिसागर जी महाराज स्वयं में इतने परिपक्व एवं दृढ़ थे कि चाहते तो स्वयं से ही जैनश्वरी प्रव्रज्या स्वीकार कर सकते थे किन्तु उन्हें यह भलीभाँति पता था कि जिस प्रकार ज्योति से ज्योति प्रज्वलित होती है उसी प्रकार मुनि के द्वारा मुनि परंपरा गतिमान हो सकती है। प्रतिष्ठा ग्रंथों में भी आता है कि प्रतिष्ठित जिनबिंब की उपस्थिति में ही नवीन जिनबिंब की स्थापना होती है। मुनिमुद्रा जिनबिंब ही है अतः मुनि की दीक्षा आचार्यादि दिगम्बर मुद्रा की सन्निधि में ही होना उत्तम है।

मुनि बनते ही शांतिसागर जी के जीवन में परिषह एवं उपसर्गों की बाढ़ सी आ गई। मुनि दीक्षा के कुछ ही समय उपरांत उनके शरीर को भयानक ज्वर ने घेर लिया। ज्वर भी ऐसा कि आहार लेने की भी सामर्थ्य नहीं। आहार नहीं लेने से शरीर दिन पर दिन दुर्बल होता जा रहा था। ऐसे में नेमण्णा, महाराज की लगातार सेवा-सुश्रुषा कर रहे थे। नेमण्णा का मित्र वंडोवा भी साथ रहता। उसकी स्वाध्याय में अधिक रुचि होने से वह महाराज के निर्देश से शास्त्र पठन करता, जिससे भीषण ज्वर में भी महाराज भाव-विभोर हो आनंदित हो जाते थे।

चातुर्मास का समय निकट आया जानकर एक दिन महाराज ने विहार कर दिया।

नेमण्णा को लगा कि ''महाराज, निहार हेतु निकले हैं।'' जब वह कुछ अधिक ही चल लिए तो रामू का विचार दृढ़ हो गया। ''महाराज, एक स्थान पर अधिक नहीं ठहरते हैं अत: चातुर्मास हेतु विहार कर रहे हैं।'' नेमण्णा की आँखों में आंसू भर आए। उन्होंने रामू, वण्डोवा एवं अन्य जनों के साथ महाराज से निवेदन किया। ''ज्वर का प्रकोप भले ही कुछ शांत हुआ है, किन्तु आपका शरीर अत्यंत दुर्बल हो चुका है। इसमें अभी कुछ देर खड़े होने की भी सामर्थ्य नहीं है फिर विहार?'' बोलते-बोलते उनका गला रुंध गया।

नेमण्णा निवेदन को आगे बढ़ाना चाहते थे ''महाराज, आपको शरीर के प्रति किञ्चित भी ममत्व नहीं रहा है किन्तु आपकी यह पावन देह हम लोगों के लिए अमूल्य है।''

रामू के शब्द भी मन में ही रह गये।

''आत्मा को कोई रोग नहीं है। शरीर रोगी है। जब कर्म का विपाक मन्द होगा तो शरीर जन्य रोग एवं दुर्बलता भी दूर हो जायेगी।''

महाराज के अध्यात्म के समक्ष वण्डोवा भी नतमस्तक था। ''मैं मात्र शास्त्र पढ़ता हूँ ये जीवंत शास्त्र हैं जय हो भगवन, जय हो।'' अन्य सभी भी महाराज के प्रति अहोभाव से भर गए।

विहार के समय वर्षा की प्रचुरता से महाराज की दिगम्बर देह को बहुत

बाधाएँ आयीं किन्तु ये आपदाएँ उनके मन को किञ्चित भी विचलित न कर सकीं और अंततः वे विहार करते हुए चातुर्मास के पूर्व कोगनोली पहुँच गए। कोगनोली के बाहर एक गुफा में आप ठहर गए। आपको ध्यान में स्थित देखकर सभी जन वहाँ से चले गए किन्तु कहीं से एक विक्षिप्त वहां आ पहुँचा। उसके हाथ में लकड़ी थी जिसके अग्र भाग में लोहे की एक नुकीली कील लगी हुई थी। विक्षिप्त को भूख लगी थी। गाँव में भोजन मांगने पर बच्चों ने उसपर पत्थर फेंके जिससे घबराकर वह गुफा की ओर भागा। इधर उसे शांतिसागर महाराज दिखे। वह पहले से ही बहुत डरा हुआ था, यहां महाराज को देखकर प्रारंभ में उसका डर थोड़ा बढ़ गया था किन्तु वह लौटकर गांव नहीं जा सकता था। उसकी क्षुधा वेदना बढ़ती जा रही थी, उसे महाराज की ओर से आक्रमण की संभावना भी नहीं दिखी अतः उसने भय त्यागकर महाराज से भोजन मांगा। ''बाबा खाना।''

''बाबा भूख लगी है।'' उसने दया की अपेक्षा से कहा।

''सच में पेट बिल्कुल खाली है, बाबा कुछ दे दो।'' उसने मानो करुणाजनक आलाप किया।

''ये बाबा भोजन क्यों नहीं देता?'' उसके मन में प्रश्न उठा किन्तु उत्तर खोज लाने के योग्य बुद्धि उसके पास नहीं थी।

''ये पेड़ नहीं हैं, पाषाण भी नहीं है।'' वह निर्णय करता जा रहा था कि वे क्या-क्या नहीं है। उसने अपने हाथों को देखा फिर महाराज के हाथों को। अपने हाथों को हिलाया-डुलाया, अपने एक हाथ से दूसरे हाथ को छुआ फिर महाराज के हाथ का स्पर्श किया, उनके और दूसरे अंगों को भी उसने पकड़-पकड़ कर देखा। उसे उनमें मनुष्य होने के चिन्ह स्पष्ट हो गए। महाराज के मुख की ओर अपने मुख को किया तो उसने जान लिया कि इनकी सांसें चल रही हैं। वह यह निर्णय कर लेना चाहता था कि वे जीवित मनुष्य ही हैं। उसने एक कुशल वैद्य की भाँति महाराज की नाड़ी देखी फिर पुनः सुनिश्चित कर लेने के लिए उसने महाराज की धड़कन सुनी। ''ये कैसा मनुष्य है जीवित है फिर भी कोई प्रतिक्रिया नहीं देता। कहीं यह विक्षिप्त तो नहीं है।''

मन में विचार आते ही वह भयभीत हो महाराज से थोड़ा दूर हो गया। फिर उसने कुछ पत्ते बटोरे और उनकी पुड़िया बनाकर महाराज के सामने रख दी।

''खा ले।'' उसने प्रेमपूर्वक कहा।

''दवाई है। इसको खाने से अच्छे-अच्छे मानसिक रोगी ठीक हो जाते हैं।'' कहता हुआ वह रोने लगा। ''मुझे तो किसी ने दवाई नहीं दी इसलिए मैं पागल बन गया। तू चिंता मत कर तेरा ख्याल करने के लिए मैं हूँ न।'' उसने एक शुभचिंतक की भाँति कहा। जब महाराज की ओर से कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई तो उसे क्रोध आने लगा। उसने अपनी लाठी उठा ली। उसके मन में आया कि लाठी को दे मारे किन्तु पता नहीं फिर कुछ करुणा बुद्धि उत्पन्न हो गई तो उसने लाठी से महाराज के शरीर को कुरेदा। महाराज के क्रियाहीन व्यवहार को देखकर वह क्षुब्ध होता जा रहा था। वह बड़बड़ाता हुआ बीच-बीच में एक अच्छे मित्र की भाँति महाराज को समझाने का प्रयत्न भी कर रहा था। अंत में अपने सारे प्रयोग असफल देख उसने मानो फटकारा ''पागल कहीं का।'' उसे इस बार महाराज से प्रतिक्रिया की पूर्ण आशा थी किन्तु असफल होने पर उसके क्रोध ने प्रतिहिंसा का रूप धारण कर लिया। वह क्रोध में चिल्लाया ''पागल कहीं का।'' उसके पहले के संबोधन में जो कुछ सहानुभूति थी वह अब समाप्त हो चुकी थी। हाँ विक्षिप्तों में भी आंतरिक स्तर पर वे भावनाएँ होती हैं जो एक सामान्य मनुष्य में होती हैं बस अंतर इतना होता है कि विक्षिप्त को अन्य जनों की क्रियाएँ पागलपंथी लगती हैं इसलिए वह हंसता बहुत है। साधकों को भी संसारियों की क्रियाएँ पागलपन से अधिक कुछ नहीं लगतीं अत: वे उन्हें देखकर तटस्थ रहते हैं। यहां तो पागल गुणित पागल वाली स्थिति थी। महाराज तो पूर्व से ही ध्यान में स्थित थे। इस निमित्त चैतन्य स्वरूप, अपने ही रस से भरी हुई प्रकाशमान ज्ञानज्योति, उपसर्गजन्य प्रतिकूल परिस्थितियों के निर्मित होने पर भी आस्रव भाव का तिरस्कार करती हुई, विजय की अभिलाषा से संवर को उत्पन्न कर रही थी। आप परज्ञेयों तथा परद्रव्यों के निमित्तजन्य विभाव परिणतियों से पृथक निज शुद्ध आत्मा का अनुभव करते हुए निजात्मा को आनंद की क्रीड़ास्थली बनाए

हुए प्रतीत हो रहे थे।

वह महाराज के ऊपर आक्रोशपूर्वक अपशब्द एवं कठोर शब्दों की वाणवर्षा से संतुष्ट नहीं हुआ तो अपने उस डंडे से उनपर प्रहार करने लगा। महाराज चिंतन में लीन थे। ''अहो! जिन्हें भेदज्ञान के उछाल के अभ्यास से शुद्ध तत्त्व की प्राप्ति तथा रागादि विकारों का अभाव होने से कर्मों का अभाव हो जाता है अत: जो संपूर्ण विपत्तियों से रहित हैं ऐसा शुद्ध चैतन्य स्वरूप मात्र अपने पद का आस्वादन करना चाहिए। कर्मोपाधिजन्य पद एवं परिस्थितियाँ अपद और आपदा हैं। मेरे योग्य तो जिस चैतन्य समुद्र में अत्यन्त शुद्ध ज्ञान संवेदन की लहरें स्वयं उछाल ले रही हैं ऐसा चैतन्य रत्नाकर है।''

जहां एक ओर महाराज आनंद सागर में निमग्न थे वहीं वह पागल पुरुष महाराज की प्रतिक्रिया हीनता से और भी पागल हुआ जा रहा था। बहुत समय तक संघर्ष के उपरांत भी जब उसे न भोजन मिला और न मानसिक तृप्ति तो वह अपने से ही घबराया हुआ वहाँ से गाँव की ओर भागा और वहां पहुँचते ही उसने भयंकर उत्पात प्रारंभ कर दिया। छोटे बच्चों के कंकड़-पत्थरों से भयभीत हो जाने वाला वह पुरुष अब बड़े-बड़े मल्लों के द्वारा नियंत्रित नहीं हो पा रहा था। जब एक सभ्य सुसंस्कृत-शांत व्यक्ति क्रोध की गिरफ्त में होता है तो विनाशलीला कर देता है तब तो यह वैसे ही विक्षिप्त था ऊपर उस पर क्रोध का भूत भी सवार हो चुका था। वह अनेक लोगों को शारीरिक क्षति पहुँचा चुकने पर भी रुक नहीं रहा था। जब तक प्रशासन का तंत्र उसे पकड़ पाता तब तक वह एक हत्या भी कर चुका था।

जब यह उथल-पुथल थमी तो लोगों को महाराज का ध्यान आया। महाराज के रक्तरंजित शरीर को देखकर उन्हें यह समझने में देर न लगी कि यह उस पागल का ही उपसर्ग था।

रामू, महाराज की इस स्थिति को देखकर भाव-विह्वल हो गया, उसके आँसू रोकने पर भी न रुक रहे थे। नेमण्णा महाराज के उपचार में लग गया तो वण्डोवा यह सोचकर डर गया कि ''उस पागल के ऊपर हत्या का भूत सवार था यदि कुछ ऐसा-वैसा कर देता तो?'' कुछ पल के लिए मानो उसकी सांस

ही रुक गई किन्तु महाराज को उस विक्षिप्त की चिंता हो रही थी।

महाराज ने दयार्द्र हो पूछा ''उसे भोजन तो मिल गया था न।''

जब किसी श्रावक ने संपूर्ण घटनाक्रम बतलाया तो महाराज के मुख से इतना ही निकला ''ओम् शांति।'' किन्तु उनकी चिंतनधारा विपाक विचय धर्मध्यान की ओर बढ़ चली। ''अहो संसारी जीव की दशा बड़ी विचित्र है। बुद्धिमान हो या मतिहीन, वह जल की भाँति पतन का ही मार्ग ढूंढता है। यह कहने को विक्षिप्त है किन्तु कषायों की तीव्रता में कैसे-कैसे अनर्थ कर रहा है, उसका फल निश्चित ही बीभत्स है। अमनस्क जीवों की भाँति उसे समझाया नहीं जा सकता किन्तु हे प्रभो! उसे भी धर्मलाभ हो।''

महाराज की भावनानुरूप कुछ समय उपरांत उस पागल को भी इतनी समझ आ गई कि उसे अपने अपराध का न केवल बोध हो गया अपितु वह पश्चाताप से भी भर गया। जिस परिवार ने अपना सदस्य खोया था उसे महाराज के चरणों की छाँव मिली तो उनके दुःखी मन को शांति का लाभ हुआ।

एक दिन महाराज कोगनोली के आदिनाथ प्रभु की अलौकिक मुद्रा का अवलोकन कर रहे थे। चतुर्थकालीन इस अनुपम प्रतिमा की मनोज्ञता से उनकी आत्मा अप्रमाद की चरम अवस्था को छूने लगी। ऐसा लग रहा था कि वे मूर्ति से मूर्तिमान तक पहुँच गए हों और फिर निजात्मा में। तभी तो एक छः फीट लंबा भयानक विषभर आपके शरीर से केलि करता रहा और आप उससे निरपेक्ष निज चैतन्य परिणति में तल्लीन रहे। तभी नंददीप सुधारने वहां उपाध्याय आया तो महाराज के ऊपर सर्प लिपटा देख भयभीत हो भागा। घटना के समाचार कानों-कान पूरे गाँव में फैल गये। भारी भीड़ एकत्रित हो गई। कुछ सांप पकड़ने में निष्णात लोग भी आ पहुँचे किन्तु परिस्थिति बड़ी विकट थी।

''क्या किया जाए?'' सभी के मन में एक ही विचार था।

सर्प विशेषज्ञ, सर्प को पकड़ना चाहता था किन्तु उपाध्याय ने सोचा ''यदि थोड़ी भी चूक हो गई तो?'' उसने बलप्रयोग के लिए मना कर दिया।

मंत्रवेत्ता और सपेरे भी आ गए किन्तु उनके प्रयोग भी असफल हुए। वे हैरान थे इस बात से कि आज क्यों उनके मंत्रों की शक्ति प्रभावहीन लग रही है और इस बात से भी कि कैसे कोई भयानक विषधर के लिपटे रहने पर भी निश्चिंत रह सकता है। अंतत: जब सभी थक-हार गए तो उन्होंने एकमत से निर्णय लिया कि उस स्थान पर न भीड़भाड़ हो और न कोलाहल। वे शांति से दूर रहकर दृश्य को मानो साक्षी भाव से देखने का प्रयत्न करने लगे। सर्प की जब गतिविधि होती तो उपाध्याय का मन कांप उठता किन्तु कोई कुछ भी करने में असमर्थ थे। कुछ घण्टों की प्रतीक्षा के उपरांत सर्प महाराज के शरीर से धीरे-धीरे उतरा और प्रसन्नतापूर्वक चला गया। ऐसा लगा जैसे मानो उस समय विषय भोग रूपी विष के त्यागी का स्पर्श कर वह भी निर्विष सा हो गया हो।

इस तरह कोगनोली में घनघोर उपसर्ग और भीषण परिषहों को समतापूर्वक सहन करते हुए चातुर्मास सम्पन्न हो गया। विभिन्न स्थानों पर विहार कर भव्य जीवों को आनंदित करते हुए महाराज पुन: कोगनोली में ही विराजमान थे। अगले चातुर्मास का समय निकट था अत: अनेक स्थानों से आ-आकर श्रावक अपनी भावना व्यक्त कर रहे थे। नसलापुर से भी बहुत लोग आए। उन्होंने अपना भक्ति भरा निवेदन किया किन्तु प्रतिउत्तर में महाराज से कोई स्पष्ट संकेत नहीं मिला। युवाओं में चातुर्मास हेतु कुछ अधिक ही उत्साह था अत: उन्हें बड़ी निराशा हुई।

''क्या महाराज का चातुर्मास नसलापुर नहीं होगा?'' एक युवा ने अपने प्रतिनिधि भीमशा से पूछा।

भीमशा के चेहरे पर हताशा स्पष्ट दिख रही थी। वह कुछ उत्तर न दे सका।

''हम लोगों ने बहुत विलंब कर दिया।'' एक दूसरे व्यक्ति ने कहा ''मैं पिछले कितने दिनों से आग्रह कर रहा था किन्तु ये नेता महोदय, पूरे नगर को एकत्रित करने में जुटे रहे।'' उसके बोल में खीझ भी थी और व्यंग्य भी।

''हम तब तक यहीं डेरा डाले बैठे रहेंगे, जब तक महाराज चातुर्मास के

लिए आशीर्वाद नहीं दे देते। अनेक लोगों की अनेक बातें सुनते-सुनते अंततः भीमशा के बोल फूट पड़े।

''यदि महाराज ने किसी और स्थान का निश्चय कर लिया हो तो?''

''तो हम समझेंगे कि हमारी भक्ति या पुण्य में कुछ कमी रही होगी।'' एक समझदार युवा ने सभी को शांत करने के उद्देश्य से कहा।

''भक्ति में नहीं नेतृत्व में कमी थी।'' एक अन्य उग्र व्यक्ति ने अपना आक्रोश व्यक्त किया।

''महाराज का चातुर्मास तो नसलापुर में ही होगा।'' भीमशा ने दृढ़ आत्म-विश्वास पूर्वक कहा।

''जैसे कि तुम महाराज को अपने कंधे पर बैठाकर चातुर्मास हेतु नसलापुर ले आओगे।'' आक्रोशित युवा ने पुनः कटाक्ष किया।

''क्या ऐसा भी संभव है?'' भीमशा के मन में आया।

''मतिभ्रष्ट हो गई है क्या?'' छाया ने फटकार लगाई।

''महाराज का चातुर्मास नसलापुर सुनिश्चित करना है तो मुझे ऐसा ही करना चाहिए।''

''मुनिराज पदविहारी होते हैं?'' छाया ने उसे सचेत किया।

''हाँ तो मैं पैदल ही चलूंगा।''

''उनकी ईर्या समिति होती है।''

''मैं नीचे अच्छी तरह देखकर चलूंगा।''

''किन्तु उनकी इच्छा के विरुद्ध इस असामान्य विधि को अपनाना उचित नहीं है।''

''महाराज ने अभी तक अपनी इच्छा व्यक्त नहीं की है तो फिर उनकी इच्छा के विरुद्ध।'' भीमशा प्रश्न खड़ा करके आगे बोला ''विशेष उपलब्धि की विधि सामान्य हो भी नहीं सकती।''

''अर्थात् तुम नहीं, मानोगे?''

भीमशा के आनन पर मंद स्मित थी जबकि छाया भयभीत थी। छाया ने

उसकी मति को पलटने के सारे उपक्रम कर लिए किन्तु वह मस्तिष्क के संकेत पर नहीं हृदय की आवाज पर चल रहा था। महाराज ध्यानारुढ़ थे। महाराज की आत्मिक शांति की भाँति वातावरण भी बड़ा शांत था। दूर-दूर तक कोई व्यक्ति नहीं था। भीमशा ने महाराज को आसन सहित कंधों पर धारण कर लिया ठीक वैसे ही जैसे कभी नदी पार कराने के निमित्त सातगौड़ा ने आदिसागर महाराज को धारण किया था। मानो यह इतिहास की पुनरावृत्ति ही थी। हाँ दोनों स्थितियों में कुछ अंतर अवश्य था। सातगौड़ा की भक्ति में सेवा-भावना जुड़ी हुई थी और भीमशा की भक्ति, भक्ति का अतिरेक थी। सातगौड़ा का कृत्य राजमार्ग के समान सभी के लिए करणीय एवं प्रेरणीय था किन्तु भीमशा की गतिविधि अपवाद मार्ग थी। भीमशा ने जो किया वह शास्त्र के सिद्धांतों एवं नीति के अनुरूप नहीं था फिर भी वह भक्त के समर्पण की उच्च कोटि थी। सूरज की चुभन से जब महाराज के ध्यान का तिरोहण हुआ। ''अरे बाबा! अब तो मुझे नीचे उतार दे।'' महाराज ने बड़े ही वात्सल्यमयी भाव से कहा। महाराज भीमशा की भक्ति, साहस एवं समर्पण को देखकर बड़े प्रफुल्लित थे तो भीमशा की दृष्टि लज्जा से नीचे झुकी जा रही थी।

महाराज के पीछे-पीछे कोगनोली एवं अन्य अनेक स्थान के लोग आ गए एवं अपने ग्राम-नगरों के लिए चातुर्मास हेतु निवेदन करने लगे। महाराज सस्मित बोले यह ''यमगरणी ग्राम है और सामने यमराज बैठा है इनसे कौन बच सकता है?'' उपस्थित जनता को भी हंसी आ गई। तदोपरांत महाराज विहार करते हुए नसलापुर पहुँच गए।

मुनि अवस्था का द्वितीय चातुर्मास कठोर साधनापूर्वक नसलापुर में सम्पन्न कर विभिन्न स्थानों को पवित्र करते हुए मानो नेमण्णा के पुण्य से चातुर्मास हेतु महाराज के चरण ऐनापुर में ही ठहर गए। नसलापुर में महाराज के निकट दीर्घ प्रवास से नेमण्णा के अंत:करण की निर्मलता बहुत बढ़ चुकी थी। जिनधर्म के अनुकूल आचरण करने से यवन, नेमण्णा से असंतुष्ट हो गए। वे उन्हें शाब्दिक एवं मानसिक प्रताड़ना तो दे ही रहे थे, अनेक बार ऐसे भी प्रसंग निर्मित हुए जब कुछ कट्टर यवनों ने नेमण्णा, पर जानलेवा हमला

कर दिया। जब यही नेमण्णा आगे चलकर मुनिराज बने तो उस ग्राम के उन्हीं यवनों ने उन्हें बड़ी भक्तिपूर्वक आमंत्रित किया था। एक पवित्रात्मा की समता और साधना ने अनेक विधर्मियों के हृदय में मुनियों के प्रति भक्ति उत्पन्न कर दी।

नेमण्णा के पिता, नेमण्णा की भावना को अच्छी तरह जान चुके थे अत: उन्होंने नेमण्णा को ऐनापुर भिजवा दिया। ऐनापुर का वातावरण नेमण्णा के अनुकूल था। वहां का पाटील धर्मात्मा था अत: उसका नेमण्णा के प्रति सहज अनुराग विकसित हो गया। नेमण्णा को रामू का भी साथ मिल चुका था दोनों साथ मिलकर कृषि करते और ऋषि बनने की साधना भी।

दोनों मित्र वार्तालाप कर रहे थे। सदा की तरह वार्ता का मूल विषय शांतिसागर गुरु महाराज ही थे। पूरा दृश्य साक्षातवत दृष्टिगोचर होने लगा। महाराज आहार चर्या को निकल रहे थे। अनेक श्रावक भक्तिपूर्वक महाराज का पड़गाहन कर रहे थे। देखादेखी एक श्रावक जिसके घर शुद्ध भोजन नहीं बना था ने भी नमोऽस्तु-नमोऽस्तु कहना प्रारंभ कर दिया। उसका अनेक जन्मों का पुण्य फलीभूत हुआ। कठिनता से मिलने वाली महाराज की विधि उसके यहां सहजता में ही मिल गई। उस श्रावक के मन में उथल-पुथल मच गई। ''घर में शुद्ध आहार है नहीं और यदि मैं अपने रहस्य को प्रकट करता हूँ तो बड़ा अनर्थ हो जायेगा।''

''हाँ महाराज का अलाभ हो जायेगा।'' श्रावक के बिंब ने उसकी चिंता में सहभागिता दर्ज कराई।

''अपयश भी तो होगा न?'' प्रतिबिंब ने झट सहानुभूति दर्शायी।

''मुनि-मार्ग की रक्षा करते हुए यदि जिनधर्मी को नरक का भी कोई भय दिखलाए तो उसे विचलित नहीं होना चाहिए फिर कीर्ति, अकीर्ति जैसी क्षुद्र चीजें महत्वहीन हैं।'' बिंब ने निर्देश पूर्वक कहा ''अनेक दिनों के उपवास के उपरांत आज इन महामुनिराज की पारणा है, अत: किसी भी परिस्थिति में इनका अलाभ नहीं होना चाहिए।''

''अंतत: हम दोनों का उद्देश्य तो एक ही है।'' प्रतिबिंब ने बिंब के आक्षेप को निरस्त करने के उद्देश्य से सस्नेह कहा।

''समय बहुत कम है।'' श्रावक इस विचार से घबरा रहा था।

''घर में भोजन बना हुआ है।'' प्रतिबिंब ने सलाह दी।

''छि: छि: मुनिराज को अशुद्ध आहार?'' बिंब ने भर्त्सना की।

''आपातकाले मर्यादानास्ति।'' प्रतिबिंब के मुख पर नीतिवाक्य रखा ही हुआ था।

श्रावक की भाव-भंगिमा देख, बिंब चिंतित हुआ। एक सच्चा जैनी ऐसा अकार्य स्वप्न में नहीं करेगा।''

अब श्रावक के जैनत्व पर प्रश्नचिन्ह लग चुका था। गहन चिंता उसके ललाट पर स्पष्ट थी। ''पड़ोसी किस दिन काम आयेंगे?'' प्रतिबिंब का यह सुझाव श्रावक को बहुत अनुकूल लगा।

''अब तो अशुद्ध आहार का दोष नहीं लगेगा?'' श्रावक ने बिंब की ओर प्रश्नात्मक दृष्टि से देखा।

''दाता को अपने आहार का दान देना चाहिए। अन्य के द्रव्य का दान, दान नहीं है।'' बिंब ने कहना चाहा किन्तु श्रावक की आकुलता ने उसके कानों पर पर्दा डाल दिया था। न श्रावक को कुछ सुनाई दिया और न वह कुछ सुनना चाहता था। उसने अपनी धर्मपत्नी को पड़ोसी के घर की ओर दौड़ाया और स्वयं पाद प्रक्षालन एवं पूजन की क्रिया में संलग्न हो गया। ''मैं महाराज के पीछे चौके में आया लेकिन कुछ समझ नहीं सका।'' नेमण्णा के नेत्रों से अश्रु निकल पड़े, हाँ मेरा उपयोग महाराज की पूजन की ओर था।''

रामू ने कहा पूजन पूर्ण होने के पूर्व ही अंदर ही अंदर आहार सामग्री आ चुकी थी। महाराज का निरंतराय आहार सम्पन्न हो गया। बिंब मौन था किन्तु प्रतिबिंब ने उसकी पीठ थपथपाई। वह श्रावक अपनी चतुराई से बहुत खुश हुआ और उसकी इसी प्रसन्नता के द्वार से उसकी चतुराई प्रकट हो गई।

जैसे ही महाराज को यह रहस्य ज्ञात हुआ, उन्हें बड़ा खेद हुआ। ''अहो! आज मेरे द्वारा अयोग्य आहार का ग्रहण हो गया। मेरे कर्मों का तीव्र उदय न होता तो मुझे ऐसा आहार क्यों मिलता? मुझे सदोष आहार का त्याग कर देना चाहिए था किन्तु खेद है मुझे समय पर यह तथ्य ज्ञात न हो सका।'' महाराज ने उस दिन खुली शिला पर जाकर ध्यान करना प्रारंभ कर दिया।

चट्टान क्या थी, आग का गोला। सामान्य मनुष्य तो उस पर एक मिनट भी नहीं ठहर सकता था। सूर्य अपनी संपूर्ण रश्मियों के साथ मानो मुनिराज का परीक्षण कर रहा था। तीन ओर खुला आकाश था, आसपास छुटमुट सूखी झाड़ियों के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। वे योगीश्वर आतापन योग करते हुए स्पर्शादि पौद्गलिक गुणों से अतीत चैतन्यज्योति में स्थित हो गए थे। बहिरंग एवं अंतरंग ताप जिन्हें असह्य था ऐसे अशुभ कर्मों का पुंज प्रति समय असंख्यात गुणित क्रम से निर्जीर्ण हो रहा था। वह श्रावक भी पश्चाताप की अग्नि में जल रहा था अत: प्रतिबिंब रूप उसके नकारात्मक विचार भस्म हो गए। उसने महाराज के चरणों की साक्षीपूर्वक यावत जीवन न केवल शुद्ध भोजन करने का संकल्प लिया अपितु गुरु के साथ कभी भी छल न करने की प्रतिज्ञा भी की।

नेमण्णा और रामू ने इस घटना को याद करते हुए आपस में शर्त लगाई कि चाहे कुछ भी हो वे शीघ्रातिशीघ्र घर का परित्याग करते हुए दीक्षा धारण कर लेंगे। संसारी जीव संकल्प-विकल्प करते हुए संसार के कारणभूत अनेक प्रकार के संकल्प लेता है, प्रतिज्ञाएँ करता है, शर्तें लगाता है किन्तु धन्य है शांतिसागर महाराज के तप और विशुद्धि का प्रभाव कि उनके निमित्त से अनेक जीव परमार्थ के कारणभूत सत्-संकल्पों को धारण कर व्रताचरण की ओर बढ़ रहे थे।

ऐनापुर चातुर्मास के उपरांत महाराज विभिन्न स्थानों पर धर्म-प्रभावना करते हुए चातुर्मास हेतु कोन्नूर में ठहर गए। यहाँ पर अनेक बार सर्पराज महाराज के पास आ जाते थे। घंटों तक शरीर से लिपटे रहते थे मानो वे चंदन वृक्ष हों। यथार्थ में महाराज चंदन के वृक्ष ही तो थे जो अनेकानेक उपसर्ग एवं परिषहों के मध्य भी अपनी समता रूपी सुरभि का त्याग नहीं करते थे। इसी चातुर्मास के दौरान एक दिन महाराज खुले में बैठकर सामायिक कर रहे थे। इतने में एक मकोड़ा आ पहुँचा। उसकी आँखें नहीं थीं किन्तु उसने जैसे अपनी अन्य इन्द्रियों से चारों ओर देखा, वहाँ मनुष्य तो क्या पशु-पक्षी भी

नहीं थे। एक पाषाण पर पाषाणवत मुद्रा में विराजमान थे मात्र एक ऋषिवर। पांव की ऊंगलियों से क्रीडा करते हुए शनैः-शनैः उसने महाराज के संपूर्ण शरीर को क्रीडास्थली बना लिया। बहुत काल के श्रम के उपरांत उसने अपनी पिपासा मिटाने के लिए स्रोत ढूंढना प्रारंभ किया और फिर अंततः वह महाराज के पुरुष चिन्ह पर टूट पड़ा। वह विकलेन्द्रिय जीव जहां महाराज के रक्त शोषण में संतुष्ट हो रहा था, वहीं महाराज अपने इन्द्रियातीत आत्मोत्पन्न सहज सुख में लीन अति संतुष्ट जान पड़ रहे थे।

नेमण्णा अपने आवश्यकों को पूर्ण करने के उपरांत जब महाराज के निकट पहुँचे तो यह दृश्य देखकर पीड़ा और भक्ति के मिश्रित वेग से किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गए। रक्तश्राव होते रहने से और भी बहुत सारे कीड़े-मकोड़े वहां एकत्रित हो चुके थे। बहुत समय तक यह चलता रहा किन्तु फिर जैसे नेमण्णा की चेतना लौटी तो उसने देखा वह बड़ा मकोड़ा वहां से जा चुका है। महाराज का अधोभाग रक्त से लथपथ है किन्तु मुखमुद्रा पर शांति का अथाह सागर लहलहा रहा है। नेमण्णा को लगा कि ''सारे संसार की महानता, महाराज में एकाकार हो गई हो।'' उपसर्ग दूर हो चुका था किन्तु नेमण्णा के नेत्रों से बह रहे जल का रिसाव जारी था।

''भगवन, मुझे भी अपने समान बना लीजिए।'' नेमण्णा के मुख से ये शब्द निकले भी थे कि नहीं, उसे स्वयं ही नहीं पता था किन्तु आत्मा में जो भाव उत्पन्न हुए थे वे तो बने ही हुए थे। महाराज नेमण्णा के हृदय की बात तो बहुत पहले से ही जानते थे। पहले भी नेमण्णा ने घना निवेदन किया था किन्तु तब संयोग नहीं बन पाया।

कुछ समय पूर्व गोकाक के एक नए ब्रह्मचारी का संघ में प्रवेश हुआ था, उनके साथ नेमण्णा की ऐलक दीक्षा सम्पन्न हो गई। किसी प्रतिकूल परिस्थिति उपस्थित हो जाने के कारण, रामू की दीक्षा न हो सकी, जिसका रामू को बड़ा खेद हो रहा था किन्तु कभी-कभी कर्म का प्रभाव इतना अधिक होता है कि उस समय पुरुषार्थ के अनेक सूरज भी प्रभावहीन हो जाते हैं। जिस मंदिर में दीक्षाएँ हुई थीं उसके मूलनायक नेमिनाथ थे। नेमण्णा की माता

का नाम भी शिवादेवी था अत: महाराज ने आपको नेमिसागर नाम से विभूषित किया। दूसरे ब्रह्मचारीजी को नाम प्राप्त हुआ पायसागर। पायसागर जी का पिछला जीवन बड़ा विचित्र था। स्वयं पायसागर जी को अपने इस नये रूप में जैसे विश्वास सा नहीं होता था। ''मैं एक अभिनेता था। यदि मंच पर एक बार भी आ गया तो दर्शकों को लगता कि उनका पैसा वसूल हो गया। किन्तु हाय खेद है मैं दुनिया का मनोरंजन करते हुए भी स्वयं में संतुष्ट नहीं रह पाता था।''

''तो ऐसा क्यों?'' छाया ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई।

पायसागर के मुख पर मंद हास्य फैल गया वे बोले कुछ नहीं।

''मिल मालिकों के विरोध में मजदूरों का नेतृत्व करते हुए जब सत्याग्रह किया था। अनेक दिनों तक समाजसेवा के साथ-साथ राष्ट्र सेवा भी की थी, तब तो संतुष्टि मिली होगी?'' छाया ने पुन: प्रश्न किया।

''हाँ, राष्ट्रसेवा करते हुए ऐसा लगा कि मातृभूमि के लिए कुछ भी करना कम ही है।'' पायसागर ने एक गहरी श्वास भरी फिर बोले ''साधु जीवन की निराकुलता एक अलौकिक संतुष्टि देती है।''

''आप इसके पूर्व भी तो साधु भेष धारण कर चुके हैं?''

''वह एक तरह से साधुत्व का अभिनय जैसा था। तब साधु बनने के उपरांत लौकिक जगत् के प्रति आकर्षण कम अवश्य हुआ था, समाप्त नहीं। अनेक ठिकाने बदलते-बदलते मुझे लगा कि यह आत्म-वंचना से अधिक और कुछ नहीं है।''

''इसलिए, फिर एक नया रूप धारण कर लिया?''

'' हाँ!'' पायसागर जी जैसे स्वयं पर हंसे फिर बोले ''ओवरकोट, पेंट, टाई, टोप और साथ में सिगरेट का धुंआ।''

इस घटना को याद करते-करते ऐसा लगा जैसे वह दु:खी हो गए हों अत: छाया ने मन प्रसन्न करने कहा ''अंग्रेज रूप।''

''नहीं, एक गुण्डे का रूप।'' पायसागर जी ने एक शत्रु के समान स्वयं की समीक्षा की।

''अतीत, समाप्त हो चुका है इसलिए उसके प्रति कैसा खेद?''

''हाँ, तुम ठीक कहती हो किन्तु यह सब गुरु महाराज की कृपादृष्टि के कारण संभव हो सका है, अन्यथा मेरा वर्तमान अतीत से कहीं घृणित होता।''

'' कैसे ?'' छाया ने उत्सुकतावश पूछा।

''यह सब सुयोग की बात है। मैं कोन्नूर की गलियों में घूमा करता था। एक दिन हाथ छोड़े साइकिल चला रहा था कि सामने से एक दिगम्बर आकृति आती दिखी। मुझे ऐसा लगा जैसे उन्होंने मेरा हाथ पकड़ लिया हो।'' पायसागर जी घटना की स्मृति से भाव विभोर हो चुके थे। ''मैं वहीं एक कोने में खड़ा हो गया। उनकी दृष्टि जैसे ही मेरे ऊपर पड़ी, बिना किसी विचारणा के स्वत: ही मेरे हाथ नमस्कार की मुद्रा में आ गए।''

''आगे क्या हुआ ?'' छाया का उत्साह चरम पर था।

''महाराज ये जैनियों के नाम पर कलंक है।'' महाराज के साथ चल रहे एक व्यक्ति ने मेरी भर्त्सनापूर्वक कहा ''ये व्यसनी है महाराज, व्यसनी।''

''ओह! तो फिर महाराज ने मुख मोड़ लिया होगा।'' छाया ने खेदपूर्वक संभावना व्यक्त की।

''नहीं।''

''तो ?'' छाया ने साश्चर्य पूछा।

''उनके मुखमण्डल पर अलौकिक शांति थी। उनके मुख से निकले शब्द मेरे कानों में आज भी गूंज रहे हैं।''

''क्या कहा था, महाराज ने आपसे ?'' छाया के अंदर भी महाराज के प्रति सम्मान का भाव जागृत हो रहा था।

''इसने आज जैन मुनि के दर्शन किये हैं, इसलिए इसे कुछ न कुछ लाभ अवश्य होगा।''

''अच्छा... !'' छाया के मुख से इतना ही निकल सका।

''हाँ मैंने संपूर्ण भारतवर्ष में भ्रमण किया बड़े-बड़े नामधारी संन्यासियों से मिला किन्तु महाराज के पास जो मिला वह अपूर्व था। एक माह मैंने महाराज के जीवन का सूक्ष्मतापूर्वक अध्ययन किया। उस समय मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि जीवन का सार इन्हीं चरणों में है। सर्व प्रकार के व्यसनों का

त्याग करते हुए मैंने, महाराज से ब्रह्मचर्य व्रत की इच्छा की।''

''महाराज की क्या प्रतिक्रिया थी?''

''महाराज कुछ प्रतिक्रिया देवें, उसके पूर्व ही निकटस्थ लोगों ने मेरे पूर्व जीवन पर टीका टिप्पणी कर दी।''

''महाराज ने अपना विचार बदल दिया था क्या?'' छाया को यद्यपि महाराज पर विश्वास हो चुका था किन्तु फिर भी क्षण एक के लिए आशंका उठी जो उसने व्यक्त कर दी।

''आचार्य महाराज न केवल एक मनोवैज्ञानिक थे अपितु मानो वे ''एक जादूगर थे। उन्होंने उन आलोचकों की विचारधारा को देखते ही देखते बदल दिया।''

''हाँ उसका यह प्रमाण है कि अगले दूसरे ही माह ऐलक दीक्षा हो गई। छाया ने भी बड़ी श्रद्धा से प्रथमत: शांतिसागर महाराज को नमोऽस्तु किया, फिर पायसागर जी को इच्छामि कहते हुए विलीन हो गई।

छाया और प्रतिछाया, बिंब और प्रतिबिंब कुछ और नहीं, हमारी ही मनोवृत्तियाँ हैं। प्रत्येक कार्य-अकार्य के समय हमारे मन में भिन्न-भिन्न प्रकार के विचार उत्पन्न होते हैं। परस्पर विरोधी विचारों में संघर्ष भी होता है जिस विचार को विजय प्राप्त होती है उसके अनुरूप हम आचरण करते हैं।

शांतिसागर मुनिराज के जीवन में उपसर्गों का क्रम चल रहा था। कुछ समय की शांति के उपरांत पुन: कोई विकट परिस्थिति निर्मित हो जाती। एक दिन महाराज ने जंगल में स्थित मंदिर में रात्रि पर्यंत ध्यान का निश्चय किया। सन्ध्या आरती के समय पुजारी ने दीपक में जब तेल डाला तो मंद प्रकाश के कारण बहुत सारा तेल बह गया। योग्य वातावरण मिलने पर बिना नर-मादा के संयोग से सम्मूर्छन जन्म को धारण करने वाली चींटियों की उत्पत्ति हो गई। धीरे-धीरे तेल समाप्त हो गया तो जिस क्षुधा की आशा से उन्होंने जीवन पाया था उसकी पूर्ति हेतु उन्हें निकट ही महाराज का शरीर रूपी ठिकाना मिल गया।

अनगिनत चींटियाँ महाराज के शरीर को डंक मार रही थीं किन्तु महाराज ज्ञायक स्वभावी एकत्व विभक्त आत्म तत्व की आराधना में लीन थे। यह आत्मा न पर का कर्ता है न भोक्ता। अज्ञान अवस्था में बद्ध कर्म अपना काल पाकर

मात्र निर्जरित हो रहे हैं। वे न आत्मा के हैं और न इस आत्मा को प्रभावित कर सकते हैं। यह आत्मा प्रकटपने को प्राप्त निज चैतन्य ज्योति के फैलाव से जब इस लोक को प्रकाशित किए हुए है तो स्वयं उस प्रकाश से रहित कैसे हो सकती है? कर्मोदय में नवीन कर्मों का बंध करना इस जीव के अज्ञान भाव की अनिर्वचनीय महिमा का ही स्मरण है किन्तु अपने परिपूर्ण अखंड अचल ज्ञान से ही है महत्त्व जिसका ऐसा मैं चैतन्य पुंज आत्मा, ज्ञान के विषयभूत ज्ञेय पदार्थों को जानने के कारण किसी प्रकार के रागादि विकार को प्राप्त नहीं हो सकता।'' उनकी आत्मा का भी हमारे समान अपने शरीर के साथ एक क्षेत्रावगाही संबंध था किन्तु वे स्वयं को शरीर से भिन्न अनुभूत कर रहे थे संध्या बीत गई और रात्रि आ गई किन्तु चक्षु ज्ञान से रहित चींटियों को अंधकार और प्रकाश में कोई भेद नहीं, अत: उनके क्रियाकलाप जारी थे। पुजारी इस घटना से अनभिज्ञ हो चैन की नींद सो गया किन्तु निद्रा लगते ही उसे एक स्वप्न आ गया।

''पापी, तूने ये कैसा अनर्थ कर दिया।'' कहीं से उसे एक ध्वनि सुनाई दी।

''क्या?'' साश्चर्य उसके मुख से निकला।

''तेरे निमित्त से शांतिसागर महाराज पर उपसर्ग हो रहा है।''

''हाँ....। किन्तु मैं तो अभी कुछ समय पहले ही महाराज की स्तुति करके आया हूँ, उपसर्ग?''

''यदि विश्वास नहीं होता तो वहाँ जाकर देख।''

''क्या हुआ, क्या हुआ...।'' पुजारी चिल्लाते हुए बिस्तर से उठा किन्तु चारों ओर मात्र सन्नाटा था। उसने महाराज के निकट जाने की सोची किन्तु गहन रात्रि में जंगली जीव-जंतुओं से भरे, उस स्थान पर जाने की उसकी हिम्मत नहीं हुई। उसने पड़ोसी को जगाया किन्तु वह भी साथ चलने का साहस नहीं जुटा सका। अत: बोला ''क्या तुम भी। स्वप्न की बात को लेकर इतने व्याकुल हो रहे हो।''

''भैया भले ही यह स्वप्न हो किन्तु मेरा मन अभी ही महाराज को देखने का हो रहा है।''

''जंगल मे प्रवेश करते ही जीवन पर संकट आ सकता है, इसलिए

अपने मन को कहो कि प्रात: तक प्रतीक्षा करे।'' कहता हुआ वह पड़ोसी चादर तान कर पुन: सो गया।

पुजारी बहुत बेचैन हो रहा था उसने आगे कदम भी बढ़ाये किन्तु वह अपने भय से हार गया। जब सुबह महाराज के निकट पहुँचा तो यशोधर मुनिराज के समान अगणित चींटियों से सहित महाराज को देख भाव-विह्वल हो गया। अन्य अनेक श्रावक भी वहाँ उपस्थित हो चुके थे, सभी के नेत्रों से आंसुओं की धारा बह रही थी तभी एक श्रावक का विवेक जागृत हुआ। उसने मीठी वस्तु रखी तो कुछ समय उपरांत चींटियाँ महाराज के शरीर से उसी तरह दूर हो गईं जिस तरह विपत्ति आने पर स्वार्थी जन अपने संबंधियों से दूर हो जाते हैं। पुजारी सहित सभी श्रावक महाराज के उस लहूलुहान शरीर को देखकर विचलित हो रहे थे किन्तु महाराज की मुख-मुद्रा पर एक प्रशांत स्मित थी। संघस्थ साधु महाराज की शरीर के प्रति निस्पृहता देखकर अत्यंत प्रभावित हुए। उनके मन में मात्र महाराज की प्रशंसा के विचार नहीं थे अपितु वे स्वयं भी उन्हीं के सदृश जिनमुद्रा धारण करने के लिए लालायित हो उठे।

मुनिमार्ग के प्रति साधुओं का अत्यधिक लगाव देखकर महाराज ने उन्हें मुनि दीक्षा देने का मन बना लिया। शिष्यों की साधना का तो वे अच्छी तरह से परीक्षण कर ही चुके थे अत: उन्होंने अब अधिक विलंब करना उचित नहीं समझा। समडोली चातुर्मास के मध्य ही दो जैनश्वरी दीक्षाएँ सम्पन्न हो गईं। प्रथमत: बीजाक्षरों का संस्कार वीरसागर जी पर हुआ फिर नेमिसागर जी के ऊपर। उसी समय रुकड़ी की रत्नाबाई पाटील की आर्यिका दीक्षा हुई उनका नाम आर्यिका 105 शान्तिमति माता जी था तथा खुशालचन्द्र पहाड़े को भी ऐलक (चन्द्रसागर) पद की उपलब्धि हो गई। समडोली के इतिहास में तब एक और स्वर्णिम अध्याय जुड़ गया जब संघ-समुदाय व श्रावक समाज ने शांतिसागर महाराज को आचार्य परमेष्ठी के रूप में पूजना प्रारंभ कर दिया।

❁❁❁

4

आचार्य शांतिसागर महाराज को भले ही आचार्यत्व की प्राप्ति हो गई थी किन्तु वे सदा स्वयं को मुनि की ही कोटि में रखते थे। जब वे ध्यान में लीन होते तो मुनि पद से भी ऊपर उठ जाते। अन्य जनों के लिए वे मुनि एवं आचार्य होते किन्तु स्वयं के लिए मात्र स्वयं थे। संघ ही नहीं स्वयं का शरीर भी उनके लिए पद ही था। वे पर्यायदृष्टि से परे द्रव्यदृष्टि का आलंबन लेकर सिद्धत्व की यात्रा पर निराबाध बढ़ रहे थे। आचार्य महाराज अगला चातुर्मास कुंभोज में सम्पन्न कर अनेक स्थानों पर विहार करते हुए धर्म-प्रभावना कर रहे थे इसी अवधि में एक दिन किसी ने टिप्पणी की कि ''जमाना बड़ा खराब है।''

प्रतिउत्तर स्वरूप महाराज के मुख से निकला ''कौन कहता है जमाना खराब है। सूर्य पूर्व में उदित होता था और पश्चिम में अस्त होता था, वही बात आज भी है।'' महाराज ने अनेक दृष्टांत देकर समझाया कि ''जब प्राकृतिक नियमों में कोई अंतर नहीं पड़ा तब यह कहना कि जमाना खराब है ठीक नहीं है। जमाना बराबर है मात्र बुद्धि में विकृति आ गई है, उसे दूर करना चाहिए।''

इस तरह आचार्य महाराज साधु समुदाय को भी समीचीन मार्ग में स्थित करने के लिए अमृतवृष्टि करते रहते थे। आचार्य महाराज को न मुनिमार्ग में शैथिल्य सह्य था और न मुनिमुद्रा की आलोचना। एक बार एक विद्वान ने मुनियों पर आरोप किया तो आचार्य महाराज ने उनसे कहा ''पंडितजी आप मात्र एक वर्ष के लिए मुनि का आचरण पाल लें, तब फिर उस अनुभव के उपरांत आप जो बात कहेंगे, उसे हम मान लेंगे।''

आचार्य महाराज का मानना था कि शिवपथ पर चलने वाली गाड़ी के अग्रिम पहिये साधु हैं तो पिछले पहिये श्रावक समाज के हैं अत: वे उन्हें सदा जागरूक करते रहते थे। चिपरी गांव में महाराज का आगमन हुआ। किसी ने

उन्हें पहले ही दिन बतला दिया कि यहाँ का पाटील हिंसा का समर्थक है। पाटील को भी यह बात ज्ञात हो गई अत: वह महाराज के निकट आने से कतराने लगा। तब महाराज के मन में विचार आया ''यह जीव हिंसा के परिणाम से अनभिज्ञ है। अहो! कष्टों के सागर में जाने को उद्यत इसका कल्याण कैसे हो?''

पाटील के भविष्य की चिंता से महाराज का मन द्रवित हो रहा था। तभी उनकी अंतरात्मा से एक ध्वनि निकली। ''प्रतिज्ञा।''

''कैसी प्रतिज्ञा?''

''अन्न-जल का त्याग।''

''बहुत सुंदर। जब तक पाटील हृदय से हिंसा का त्याग नहीं कर देता तब तक आहार ग्रहण नहीं करुंगा।''

''नहीं, नहीं ऐसा मत करो।'' ध्वनि सशंकित थी। ''मैंने तो एक-दो दिन के लिए कहा था। यह पाटील दुष्ट प्रकृति का है और हठाग्रही भी। यदि वह अपनी हठ पर अड़ा रहा तब तो अनर्थ हो जायेगा। मेरी मानो, मात्र एक दिन का नियम लो। परिवर्तन हो तो अच्छा है नहीं तो यही सोचना कि सभी द्रव्य के परिणमन स्वतंत्र हैं। हमारे चाहने न चाहने से कुछ नहीं हो सकता है।'' अंतर ध्वनि चाह कर भी मुखरित नहीं हो सकी।

महाराज दृढ़ प्रतिज्ञ थे। एक दिन, दो दिन, तीन दिन व्यतीत हो गए महाराज निराहार रहे। पाटील परिस्थिति से बचने कोल्हापुर जा चुका था किन्तु जब उसे यह संदेश मिला तो उसे आत्मग्लानि हुई। ''तू कैसा दुर्बुद्धि है कि जो तेरे भले के लिए अपने जीवन को संकट में डाल रहे हैं तुझे उनके लिए कोई सहानुभूति नहीं। न सही धर्म के लिए किन्तु मानवीयता के नाते तो तुझे उनसे मिलना चाहिए।''

जैसे ही पाटील ने महाराज के दर्शन किए, महाराज की तेजोमयी पवित्र मुद्रा एवं आकर्षक मुस्कान ने उसके हृदय की समस्त कलुषता क्षण एक में धो दी। आंसुओं से महाराज के श्रीचरणों का प्रक्षालन कर उसने सदा के लिए हिंसक वृत्तियों का ऋतु-परिवर्तन के निमित्त सांप की कांचली के समान

त्याग कर दिया। इस तरह महाराज की जिस पर भी कृपादृष्टि पड़ती उसका उत्थान निश्चित ही हो जाता था।

मुनि का जीवन सरिता के समान प्रवहमान होता है। कहा भी जाता है। ''रमता जोगी बहता पानी।'' आचार्य महाराज नांदणी चातुर्मास के उपरांत अतिशय क्षेत्र दहीगांव, बारामती होते हुए कोल्हापुर पहुँचे। वहाँ महाराज के समक्ष एक प्रसंग उपस्थित हो गया। दो प्रतिष्ठित परिवार के छोटी वय वाले बच्चों का विवाह कार्यक्रम होने वाला था किन्तु कुछ सामाजिक कार्यकर्ता इस विवाह का विरोध कर रहे थे। प्रकरण प्रशासन एवं न्यायालय तक भी पहुँच गया किन्तु बाल-विवाह के समर्थन में न होने पर भी सरकारी तंत्र अपने वफादार परिवार को नाराज नहीं करना चाहता था अत: उन्होंने इस प्रकरण से दूरी बना ली। कोल्हापुर राजा के दरबार में भी यह प्रकरण पहुँचा किन्तु राजा ने सोचा कि जब अंग्रेज सरकार भी इससे निरपेक्ष है तो मैं क्यों आग में हाथ डालूं।

शाहपुरी के जिनालय का पंच-कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव होने वाला था किन्तु सामाजिक विप्लव की इस विकट स्थिति में समिति के हाथ-पांव फूलने लगे। ''बहुत प्रतीक्षा के उपरांत ऐसे परम ऋषिवर का पंच-कल्याणक हेतु सान्निध्य मिला है किन्तु अब क्या होगा?'' समिति की इस निराशा को महाराज ने भांप लिया? महाराज के मन में विचार आया ''यह संसारी प्राणी जिस उद्देश्य से विवाह रचाता है, इन छोटे-छोटे बालक-बालिकाओं के विवाह से वह उद्देश्य तो पूरा हो नहीं सकता अपितु इसका दुष्परिणाम ही निकलता है। न बच्चों की ढंग से शिक्षा हो पाती है और न उनमें शारीरिक एवं मानसिक परिपक्वता आ पाती है।''

''क्या तुम इस बाल-विवाह का विरोध करोगे?'' मन में प्रश्न उत्पन्न हो गया।

''साधु इंद्रियों का निरोध करते हैं किसी अन्य का विरोध नहीं किन्तु दिग्दर्शन तो किया ही जा सकता है।''

महाराज ने यह पूछा नहीं था अपितु निर्णयात्मक रूप से कहा था अत:

मन समझाइश की भाषा में बोला ''बाल्यावस्था में जिसका स्वयं विवाह हुआ हो वह बाल विवाह का निषेध किस मुंह से करेगा?'' मन की भाषा कुछ कड़वी हो चली थी।

''स्वयं के अनुभव से।'' महाराज ने अत्यंत शांतिपूर्ण ढंग से कहा ''इस वय में बालक-बालिकाओं की कोई इच्छा-अनिच्छा नहीं होती है और यदि हो भी तो उसे कौन महत्त्व देता है।''

अब मन शांत था और महाराज बोल रहे थे। ''हम तो उस समय भी विवाह नहीं चाहते थे और आगे चाहा ही नहीं। पूर्व पर्याय के हमारे पिता भी इन कुप्रथाओं के समर्थक नहीं थे किन्तु लोकरूढ़ि और लोकलाज का उल्लंघन उन्हें इष्ट नहीं था।''

''पिता को इष्ट नहीं था तो पुत्र को क्यों?'' मन शांति से ही सही किन्तु प्रश्न पूछने पुनः मुखर हो गया।

''सत्य इन नाते-रिश्तों से परे होता है।''

''बालकों का विवाह हो या युवाओं का, विवाह तो विवाह है। तुम्हारी रुचि इन प्रपंचों में क्यों है?'' मन ने प्रश्न का एक पैना तीर छोड़ा।

''मेरी रुचि विवाह में किंचित भी नहीं है यह बात सर्वज्ञ भी जानते हैं और तुम भी जानते होगे?'' महाराज के प्रति प्रश्न से मन की अकड़ ढीली हुई। महाराज आगे बोले ''किन्तु अनादिकाल से आहार, मैथुन आदि चार संज्ञाओं में अभ्यस्त रहे इस जीव को यदि इन संज्ञाओं से ऊपर उठना है तो एकाएक किसी चमत्कार की अपेक्षा नहीं की जा सकती।'' महाराज बोल रहे थे और मन बड़े मन से सुन रहा था।

''विवाह संयम के लिए किया जाता है।''

''कैसे?'' न चाहते हुए भी मन प्रश्न कर बैठा।

''विवाहित के अतिरिक्त संसार की समस्त स्त्री जाति के प्रति पवित्र भावों से भर देने का नाम है विवाह।''

''ओह।'' मन प्रसन्नता से भर जाता है। ''सच है इसीलिए भारतीय संस्कृति को विवाह-बंधन कहा है और इसीलिए भारत के पूज्य पुरुष भी

विवाह हेतु आशीर्वाद प्रदान कर देते हैं।''

कोल्हापुर राज्य के दीवान ए.बी. लट्टे जी महाराज के परम भक्त थे एवं महाराज के कोल्हापुर प्रवास में प्रतिदिन उनके दर्शन लाभ लिया करते थे। एकदिन जैसे ही दीवान जी ने महाराज को प्रणाम किया आशीर्वाद स्वरूप महाराज के मुखारविंद से सहज ही निकल पड़ा ''तुमने पूर्व में बहुत पुण्य किया है जिससे तुम ऐसे प्रतिष्ठित पद पर आसीन हो। इस राज्य की तो छोड़ो अन्य राज्यों और सरकारी तंत्र में भी तुम्हारी बात का मान रखा जाता है।''

दीवान जी ने पुन: महाराज के चरणों में नमन किया एवं हाथ जोड़कर निवेदन किया ''महाराज मेरे लिए कोई काम हो तो आज्ञा दीजिए।''

''मेरा तुमसे कोई काम नहीं है किन्तु हां इतना अवश्य है कि तुम्हारे द्वारा बहुत लोगों का कल्याण हो सकता है।''

''मैं आपके बतलाए निर्देशों पर चलकर कुछ कर सकूँ तो मेरा अहोभाग्य है कृपया आज्ञा दीजिए।''

''बहुत लंबे काल से अबोध बालक-बालिकाओं के विवाह की अनीति चल रही है। दैव योग से लड़के की मृत्यु हो जाने से लड़की विधवा कहलाने लगती है। उस बालिका की स्थिति बड़ी दयनीय हो जाती है जो किसी से छिपी भी नहीं है।''

दीवान जी महाराज के उद्‌बोधन को बड़ी गंभीरता से सुन रहे थे।

''इसीलिए तुम्हें चाहिए कि तुम बाल-विवाह प्रतिबंधक कानून बनवाओ। इससे न केवल समाज का भला होगा तुम्हारा भी जन्म सार्थक हो जायेगा।''

दीवान जी ने जाते समय आश्वासन पूर्वक महाराज को प्रणाम किया तो महाराज ने सस्नेह कहा ''इस काम में तनिक भी विलंब न करना।''

दीवान जी महाराज की तपश्चर्या से तो पूर्व से ही प्रभावित थे किन्तु अब उनकी इस समाजोद्धारक विराट सोच को जानकर अत्यंत गदगद चित्त

हो उन्होंने महाराज को यह वचन दिया कि ''आपकी आज्ञा को शीघ्र ही पूर्ण करवाने का प्रयत्न करूंगा।

दीवान जी आचार्य महाराज के पास से सीधे राजमहल पहुँच गए। यद्यपि वह कोल्हापुर नरेश के विश्राम का समय था किन्तु दीवान जी का आकस्मिक आगमन सुनकर वे तत्काल मंत्रणागृह में उपस्थित हो गए। दीवान जी के माध्यम से आचार्य शांतिसागर महाराज की भावना जानकर कोल्हापुर नरेश हतप्रभ थे और बहुत प्रसन्न भी हुए।'' ऐसे युगपुरुष के द्वारा नि:सृत एक-एक शब्द अमूल्य है, आप यथाशीघ्र कानून बनवाएँ। लट्टे जी ने स्वयं कानून का प्रारूप तैयार किया तथा कोल्हापुर नरेश के हस्ताक्षर होते ही उसी दिन सरकारी अधिकारियों के माध्यम से उसे आचार्य महाराज के पास पहुँचा दिया। राजमुद्रांकित पत्र को देखकर आचार्य महाराज के मन में विचार उत्पन्न हुए ''इतने अल्प काल में ही इतना सुंदर कानून बन गया।'' मुखमण्डल पर संतोष की अपूर्व लहर फैल गई और अनायास ही आशीर्वाद के लिए हाथ उठ गया। महाराज का यह आशीर्वाद दीवान जी तथा कोल्हापुर नरेश को तो था ही अंग्रेज सरकार के लिए भी था कि ''वह भी यदि इस ओर ध्यान दे तो समूचे भारतवर्ष से यह कुप्रथा समाप्त हो जाए।''

शीघ्र ही महाराज की दिव्य तरंगों को अंग्रेज सरकार ने भी अनुभूत किया और फिर हरविलास शारदा जी की अगुवाई में कार्य प्रारंभ हो गया। बाल-विवाह प्रतिबंध के प्रारूप को सितम्बर 1929 में इम्पीरियल लेजिस्लेटिव काउंसिल ऑफ इंडिया ने अधिनियम का रूप दे दिया तथा छह महीने की समयावधि में 1 अप्रैल 1930 से इसे शारदा एक्ट के रूप में लागू कर दिया गया।

एक बड़ी दीर्घावधि तक जिस कुप्रथा को रोकने के लिए ब्रिटिश सरकार चाहकर भी कानून नहीं बना पा रही थी, आचार्य शांतिसागर जी महाराज की दिव्य शक्ति का स्पर्श पाकर वह कार्य थोड़े काल में बड़ी सरलता से हो गया। यथार्थ में आचार्य महाराज बड़े प्रगतिशील एवं उज्ज्वल मौलिक विचारक थे।

आचार्य महाराज मात्र वैचारिक स्तर पर गतिशील नहीं थे अपितु वे आचरण के स्तर पर भी गति के समर्थक थे। उन प्रतिष्ठित परिवारों ने महाराज की भावना के अनुरूप अपने बच्चों का विवाह निरस्त कर पंचकल्याणक महोत्सव में न केवल अपनी ऊर्जा लगा दी बल्कि विवाह के लिए रखे गए धन-धान्यादि को महोत्सव के लिए समर्पित कर दिया। उन्हें भी महाराज का भरपूर आशीर्वाद प्राप्त हुआ।

फिर कुछ समय के प्रवास के उपरांत चातुर्मास का समय निकट होने पर सांगली होते हुए महाराज कुंभोज बाहुबली में स्थिर हो गए। चातुर्मास पूर्ण होते-होते एक लंबे विहार की संयोजना बन गई। यह सामान्य विहार नहीं था बल्कि थी एक महायात्रा शाश्वत सिद्ध क्षेत्र सम्मेद शिखर की।

इस धर्मयात्रा के संघपति थे मुम्बई के सेठ पूनमचन्द घासीलाल जौहरी। आपके ज्येष्ठ सुपुत्र गेंदनमलजी भी आप ही की तरह धर्मात्मा थे। संघ के विहार के समय नोटों का बंडल ट्रक में रखकर व्यवस्थापकों को सौंप देते। न उन्हें नोटों की गिनती करने की चिंता रहती और न वे खर्च के बिल देखने में रुचि दिखाते। ऐसा करते हुए भी न वे लापरवाह थे न अजागरूक, अपितु वे व्यवस्थापकों के मन में विश्वास पैदा करके संघ के प्रति नि:स्वार्थ सेवा का भाव जागृत करना चाहते थे, जिसमें वे सफल भी हुए।

महाराज अनेक स्थानों से गुजरते हुए निजाम राज्य में पहुँच गये। मुस्लिम बहुल इस क्षेत्र में दिगम्बर साधुओं का विहार स्वप्नवत था। गेंदनमल जी के अनुज दाड़िमचंद जी को वृद्ध पंडित की सलाह स्मृत हो आई। उस पंडित ने कितने आग्रह के साथ महाराज से निवेदन किया था। ''उत्तर भारत के लोगों के अधरों पर फैली मुस्कान एवं वाणी की हृदयस्पर्शी मधुरता से उनके अंतरंग की वक्रता को पहचान पाना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। जैन मुनियों को देखकर विद्वेषियों द्वारा संकट खड़ा हो सकता है।'' पंडितजी जिसके लिए इतनी भूमिका बना रहे थे वह बात अंतत: उन्होंने कह ही दी ''यह उचित ही होगा कि आप मंत्र साधना पूर्वक किसी दैवीय शक्ति की सिद्धि कर लेवें।''

पंडितजी के वाक्य में सीधा-सीधा निर्देश ही था।

महाराज मुस्कुराए। मुझे लगा शायद महाराज, उनकी बात से सहमत हैं किन्तु पंडितजी को महाराज की मुस्कान में रहस्य दिखा अत: वे विनम्रता पूर्वक बोले ''महाराज, कृपया स्पष्टीकरण की प्रार्थना है।''

''क्या संयमी, असंयमी को नमस्कार कर सकता है?''

''नहीं, नहीं महाराज।'' पंडित जी अपने कान पकड़ते हुए बोले ''अव्रती को, व्रती कभी प्रणाम नहीं करेगा।''

''देवताओं की सिद्धि के लिए उनके योग्य नमस्कार पूर्वक विनय करना आवश्यक है।''

''जी, महाराज मैं आपकी बात समझ गया। यह भगवान महावीर की मुद्रा है। आपके समान शास्त्राज्ञा को प्राणों से भी ऊपर रखने वाले महापुरुष उस मुद्रा का स्वप्न में भी अवमूल्यन नहीं करेंगे।''

पंडितजी रुके तो आचार्य महाराज आगे बोले ''मुनिराज पूर्ण परिग्रह के त्यागी भी होते हैं पंडित जी।''

''अर्थात् रिद्धि-सिद्धियों के माध्यम से देवताओं को अपनी आज्ञा के अधीन रखना भी सचित्त परिग्रह है।'' पंडितजी ने साश्चर्य पूछा।

आचार्य महाराज के मुखमण्डल पर स्मित फैल गई।

कथंचित् वे सोच रहे थे ''पंडितजी ने भी बहुत शास्त्र पढ़े हैं किन्तु मुनिचर्या का हार्द, मुनि बनकर ही समझ में आ सकता है।''

महाराज की यह मंद- मुस्कान स्पष्ट अर्थ को द्योतित कर रही थी अत: पंडितजी के साथ-साथ उपस्थित सभी श्रोता और दर्शकगण उनके चरणों में नतमस्तक हो गए। दाड़िमचंद जी के मन में विचार आया था कि अग्रज गेंदनमलजी के साथ एक बार आचार्य महाराज को परिस्थिति से अवगत करवाएँ किन्तु इस घटना को स्मरण कर उन्होंने अपना विचार त्याग दिया। सेठ गेंदनमलजी ने आलंद के सेठ माणिकचन्द मोतीचन्द शाह एवं वकील बालचंद्र कोठारी के सहयोग से निजाम रियासत के धार्मिक विभाग से संपर्क

किया तो उन्होंने न केवल महाराज के अपने राज्य में विचरण पर प्रसन्नता व्यक्त की अपितु तत्कालीन सुपरिंटेंडेंट मौलवी मुहम्मद जलालुद्दीन को महाराज के निर्विघ्न विहार सम्पन्न कराने के निर्देश भी दिए। वहाँ महाराज के उपदेश सुनकर मुस्लिम जिलाधीश से लेकर बड़े-बड़े अन्य मुस्लिम अधिकारी भी अत्यंत प्रभावित हुए एवं अंततः साष्टांग प्रणाम करते हुए उन्होंने कहा ''महाराज, मात्र जैनों के गुरु नहीं हैं, ये तो सर्व जगत् के गुरु हैं। हाँ ये हमारे भी गुरु हैं।''

इस तरह आचार्य महाराज के जिस विहार को लेकर के तरह-तरह की आशंकाएँ उत्पन्न हो रही थीं, उनकी साधना, व्यवहार कुशलता, धर्मोपदेश एवं सातिशय पुण्य के प्रभाव से वे समस्त आशंकाएँ न केवल समाप्त हो गईं अपितु महती धर्म-प्रभावना भी देखने में आ रही थी। महाराज अन्य भी अनेक क्षेत्रों की माटी को पवित्र करते हुए कुछ ही दिनों में विदर्भ प्रांत पहुँचे। यहां के सर्व प्रमुख नगर नागपुर में आपकी भव्य आगवानी हुई। यहां पर संघपति के जीवन में विचित्र घटना घटी। मुंबई के बाजार में पिछले कुछ दिनों से उथल -पुथल मची हुई थी। संघपति पूनमचंद जी के मुनीम का आवश्यक संदेश आया कि ''सेठजी तत्काल मुंबई पहुँचें अन्यथा बहुत लंबा व्यापारिक नुकसान हो सकता है।''

''चाहे जो हो महाराज को सम्मेद शिखर तक पहुँचाए बिना वह मुंबई जाने की सोच भी नहीं सकते।'' पूनमचंदजी ने अपना संदेश प्रेषित कर दिया।

''तो छोटे सेठजी को भिजवा दीजिए।'' मुनीम का अगला संदेश आया।

''महाराज की चरण-सेवा के इस लाभ को छोड़कर व्यापारिक हानि-लाभ के चक्कर में पड़ने की मूर्खता हम नहीं करेंगे।'' गेंदनमल जी ने प्रतिसंदेश दिया। अपने अग्रज का ही अनुसरण दाड़िमचंदजी ने भी किया।

कुछ दिन बाद मुनीम का पुनः एक संदेश आया ''बड़े-बड़े घराने धराशायी हो रहे हैं, यदि थोड़ा विलंब हुआ तो...।''

पूनमचंदजी ने संदेश की अवहेलना कर दी।

फिर कुछ दिनों के उपरांत मुनीम का एक और संदेश आया ''सेठजी हमें एक लाख रुपए का लाभ हुआ है।''

इतनी बड़ी राशि के लाभ का संदेश सुनकर सेठजी ने विचार किया ''यह लाभ यदि मेरे बिना पुरुषार्थ के हुआ है तो निश्चित ही इसमें आचार्य महाराज की मुझ पर कृपा है।

कितनी बार मनुष्य यह सोचता है कि उसके अथक श्रम के बदले में धन की प्राप्ति हुई है अथवा वह अपनी तीक्ष्ण बुद्धि के बल पर धनवान हुआ है। कभी-कभी वह यह भी सोच लेता है कि बिना छल-छद्म के बहुत धन का अर्जन नहीं हो सकता। इस प्रकार वह भिन्न-भिन्न विचारणाओं की भ्रम वैतरणी में भ्रमण करता हुआ पुण्य और प्रारब्ध के योगदान को विस्मृत कर बैठता है। पूनमचंदजी के जीवन की यह घटना एकमात्र घटना नहीं है जिसको असामान्य का तमगा पहनाकर हम सत्य से मुख मोड़ लें। अनेकों विद्यार्थी परीक्षा के लिए कड़ी मेहनत करते हैं किन्तु प्रथम कितने आते हैं? अनगिनत लोग दिन-रात परिश्रम करते हैं किंतु ऊंचाईयों तक कुछ ही पहुँच पाते हैं न? सफलता के लिए पुरुषार्थ के पीछे भाग्य का आधार भी होना आवश्यक है। यदि पूर्वकृत घना पुण्य साथ है तो संघपति के समान निरपेक्ष बने रहने पर भी अर्थ की प्राप्ति हो जाती है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि अर्थ के लिए परमार्थ को न भूले।

जवेरी परिवार ने लाभ की समस्त राशि को धर्मकार्य में व्यय करने का निश्चय कर, आचार्य महाराज के श्रीचरणों में सम्मेद शिखर में पंच-कल्याणक आयोजित करने की भावना व्यक्त की।

''शुभ भावना फलीभूत हो।'' महाराज से ऐसा आशीर्वाद प्राप्त कर जवेरी परिवार से सेठ दाड़िमचन्द, सोलापुर के सेठ रावजी सखाराम दोसी एवं सिंघई कुँवरसेन दिवाकर सिवनी ने पंच-कल्याणक आयोजन का भार अपने कंधों पर ले लिया। जहाँ वे लोग कोलकाता, रांची आदि अनेक नगरों की गणमान्य समाज के साथ मिलकर सम्मेद शिखर के महोत्सव को भव्य

रूप देने के लिए अथक श्रम करने लगे तो वहीं आचार्य महाराज के चरण तेजी से गिरिराज की ओर बढ़ने लगे।

जनवरी 1928 में महाराज का रायपुर प्रवेश हुआ। यहां स्थानीय समाज के अलावा आसपास के नगरों से आए श्रावकों के कारण धर्म-प्रभावना का अच्छा वातावरण निर्मित था किन्तु ''**श्रेयांसि कार्याणि बहु विघ्नानि**'' अर्थात् अच्छे कार्यों में बहुत विघ्न उपस्थित होते हैं कि उक्ति को चरितार्थ करने ही मानो फिरंगी मेम ने मार्ग पर महाराज को देखा तो देखकर ही वह क्षुब्ध हो गई।

''ये कौन हैं?'' मेम ने घृणास्पद भाव से अपने पति जो एक बड़े अंग्रेज अधिकारी थे, से पूछा।

''जैन साधु हैं।'' उसने सहज उत्तर दिया।

''बिना वस्त्र के रहते हैं, इन्हें शर्म नहीं आती।'' मेम ने अपने पति से कहा।

''सभी की अपनी-अपनी मान्यतायें होती हैं।'' अधिकारी इस विषय को अधिक तूल नहीं देना चाहता था अत: मेम को समझाने के दृष्टिकोण से कहा।

''किन्तु किसी की मान्यता का प्रभाव, किसी दूसरे पर नहीं पड़ना चाहिए न?''

''उन्होंने ऐसा तो कुछ नहीं किया।''

''किया है न। सार्वजनिक स्थानों पर विचरण।'' मेम के शब्दों में तीव्र आक्रोश था।

''तो तुम क्या चाहती हो?''

''यदि ये वस्त्र नहीं पहन सकते हैं। तो इन्हें सार्वजनिक स्थानों पर भ्रमण नहीं करना चाहिए।''

अधिकारी को मेम की बात जम गई। उसने मेम को आश्वस्त किया कि वह तत्काल ही कोई योजना बनवाता है।

जैन समाज को जब इस बात की जानकारी मिली तो उन्होंने उस अंग्रेज अधिकारी एवं मेम से सौजन्य भेंट की। जब उन्हें यह विश्वास हो गया कि

''जैन मुनि बालकवत यथाजात रूप के धारक होते हैं। मनुष्य विकारों को छुपाने के लिए वस्त्रों के आवरण रखता है जबकि इनका दिगम्बरत्व निर्विकारता की उद्घोषणा कर रहा है।''इसके उपरांत उस अंग्रेज अधिकारी ने, अपनी मेम के साथ बड़ी श्रद्धा पूर्वक महाराज के दर्शन करते हुए कहा ''राजसत्ता द्वारा दुनिया को अधीन करने से कुछ नहीं होता, विकारों को छोटा करने से ही मनुष्य का बड़प्पन होता है। ग्रेट ब्रिटेन सारे संसार को वश में कर ग्रेट कहलाने का दंभ भर सकता है किन्तु विषय-वासनाओं पर नियंत्रण मात्र आपके समान महापुरुष ही कर सकते हैं।''

वह अंग्रेज अधिकारी भद्र परिणामी था अत: उसे दिगम्बरत्व की महिमा समझ आ गई। सत्य है कि जैसे-जैसे विकृतियों पर विजयारोहण होता जाता है वैसे-वैसे आत्मोत्थान की गति बढ़ती जाती है। एक ओर महाराज जो निरंतर ही स्वयं और पर की आत्मा के उत्थान में संलग्न हो मोक्ष मार्ग विषयक साधना की गति को बढ़ाते जा रहे थे वहीं दूसरी ओर सम्मेद शिखर की ओर उनके चरण अग्रसर थे। वे घनघोर जंगलों के मार्ग से आगे बढ़ रहे थे। बीच-बीच में आदिवासी बस्तियाँ पड़तीं। वे आदिवासी आपके मार्मिक उपदेशों के माध्यम से भावित होकर शिकार, मांस, शराब आदि का त्यागकर स्वयं को कृतकृत्य अनुभूत कर रहे थे। तदोपरांत पूज्यश्री का ससंघ रांची, हजारीबाग, ईसरी होते हुए अंतत: गंतव्य स्थल अनंत चौबीसियों की निर्वाण भूमि में पदार्पण हो गया।

महाराज के अंत:करण की निर्मलता, आयु की तुलना में अनेक गुणित वृद्धिंगत थी ही किन्तु जिस पावन क्षेत्र की सन्निधि से प्रत्येक उत्सर्पिणी अवसर्पिणी में असंख्यात साधकों को साक्षात् मोक्षदायी शुक्ल ध्यान का लाभ हुआ हो उस क्षेत्र के सामीप्य से ऐसा लग रहा था कि महाराज की विशुद्धि गुणस्थान-जन्य प्रकर्ष को छूने वाली हो। पर्वतराज की प्रथम वंदना के समय महाराज के अन्त:करण से छलकता आनंद रस उनकी मुखमुद्रा पर दृष्टिगोचर हो रहा था। पर्वत पर ही **मध्यान्ह की सामायिक में जब वे लीन हुए तो ऐसा लग रहा था जैसे उनके भावों की विशुद्धि के समय कर्मों**

की सत्ता समाप्त ही हो जायेगी। काल और संहनन की सीमा न होती तो बहुत संभव है कि पूज्यश्री स्वस्थान सप्तम गुणस्थान की सीमा को लांघकर क्षपकश्रेणी पर आरोहण कर जाते। हाँ इस दु:खम पंचम काल के जीवों का प्रचुर पाप के बीच भी कुछ पुण्य शेष था अत: महाराजश्री का साक्षात् सान्निध्य उन्हें मिल गया।

जिन साधुओं और श्रावकों को आचार्य महाराज के साथ पर्वतराज की वंदना का लाभ मिला उन्हें ऐसा लग रहा था जैसे कि उन्हें कोई अलौकिक उपलब्धि हो गई हो। महाराजश्री के मधुवन प्रवेश के पूर्व से ही सैकड़ों की संख्या में धर्मप्रेमियों का आगमन होने लगा था। कुछ ही दिनों में सब धर्मशालाएँ भर चुकी थीं। जहाँ देखो वहीं मनुष्य ही मनुष्य दिख रहे थे। व्यवस्थापकों ने तो ऐसा स्वप्न में भी नहीं सोचा था। इतने विशाल जनसमुदाय को व्यवस्था देना किसी चुनौती से कम नहीं था किन्तु व्यवस्थापक भी आचार्य महाराज के पुण्य-प्रभाव से परिचित हो चले थे। जहाँ कमी होती जहाँ दुविधा आती वे बस पूज्यश्री का नाम लेते, कमियाँ कैसे वरदान बन जातीं सभी को अविश्वसनीय सा लगता, किन्तु आचार्य महाराज के नाम का जादू ऐसा ही था।

पंचकल्याणक महामहोत्सव बड़े वैभव के साथ पूर्ण हुआ था। तदोपरांत अष्टाह्निक महापर्व सानंदपूर्वक सम्पन्न कर आचार्य महाराज ने ससंघ वासुपूज्य भगवान की पंचकल्याणक स्थली चंपापुरी में प्रवेश किया। फिर राजगृही, वीर निर्वाण भूमि पावापुरी, चार तीर्थंकरों की कल्याणक नगरी काशी, तत्पश्चात् प्रयाग नगरी पहुँचे। यहीं निकट ही स्थित कौशाम्बी नगर को भगवान पद्मप्रभ के कल्याणकों से सुशोभित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

यहाँ आपश्री के सान्निध्य में श्रुतपंचमी पर्व बड़े धूमधाम से मनाया जा रहा था। अनेक स्थानों से बहुत लोग आए। दिल्ली, जयपुर, आगरा आदि के श्रावक उत्तर की ओर चातुर्मास हेतु निवेदन कर रहे थे तो दक्षिण का भक्त समुदाय महाराज को वापिस दक्षिण की ओर ले जाने के लिए लालायित था। कलकत्ता, रांची आदि पूर्वी नगरों से आया समूह करबद्ध होकर पुन: मधुवन

की ओर चलने का निवेदन कर रहा था। महाराज जिस प्रयागराज में थे वहाँ के भक्तगण तो किसी भी प्रकार से महाराज को वहीं रोक लेने के लिए निरंतर जाप-पाठ आदि धार्मिक अनुष्ठान कर रहे थे। ऐसे में कटनी से आए एक धर्मानुरागी श्रावक के हृदय में भी भावनाओं का सागर हिलोरें लेने लगा।

''तुम्हारे रंग-ढंग देखकर प्रतीत होता है कि तुम भी चातुर्मास का श्रीफल भेंट करने वाले हो?'' उसकी परछाई धम्म से प्रकट हो गई।

''श्रीफल तो मेरे पास है नहीं।'' वह परछाई के कटाक्ष को समझ गया था फिर भी सहजता में बोला।

''हाथों को जोड़ लेना भी श्रीफल से कम थोड़े ही है।'' परछाई ने उसे छेड़ा।

''हाँ ये अच्छा सुझाव है।''

वह व्यक्ति उठने को उद्यत हुआ तो परछाई घबराई। ''ये क्या पागलपन है।'' परछाई ने रूखे स्वर में कहा।

''भक्ति का वेग अच्छे-अच्छों को बावला कर देता है।'' वह परछाई पर थोड़ा हंसा फिर गंभीर हो बोला ''देख नहीं रही हो सैकड़ों गणमान्य व्यक्ति महाराज की भक्ति में आपादकण्ठ डूबे हुए हैं। वे जब अपनी-अपनी भावना प्रकट कर रहे हैं तो मैं भी मुनिभक्त हूँ, अपनी भावनाभिव्यक्ति को कैसे रोक सकता हूँ?''

''तुम किस आधार पर चातुर्मास का निवेदन करना चाहते हो?''

''भक्ति।'' वह किसी अलौकिक आत्मविश्वास से भर चुका था।

''भक्ति से न मुनिराजों का पेट भर पाओगे न उनकी अन्य व्यवस्थाएँ कर पाओगे।''

'' तुम्हारे कथन में सच्चाई है।''

परछाई ने स्वयं को धन्यवाद दिया। ''चलो इसकी अकल, ठिकाने आ गई।''

''किन्तु मैं बेबस हूँ।'' वह उठा और महाराज के चरणों में पहुँच गया परछाई गिड़गिड़ाती रह गई। उसने अपना भावपूर्ण निवेदन रख दिया। महाराज की विशुद्ध आत्मा ने उसकी निर्मल भावना को क्षण एक में ही समझ लिया एवं तत्काल आशीर्वाद के लिए हाथ उठ गए। ''तुम्हारी भावना साकार हो।''

महाराज ने ये शब्द बोले भी थे कि नहीं किन्तु संघपति ने महाराज का अभिप्राय समझ लिया। महाराज का विहार कटनी की ओर प्रारंभ हो गया।

महाराज के विहार में एक बाई चौका लगा रही थी। वह मुनिभक्त होने के साथ-साथ स्वाध्यायशील भी थी। जब उसने सुना कि महाराज का चातुर्मास कटनी संभावित है तब उसे बड़ी चिंता हो गई। उसने कहीं-कहीं से सुन रखा था कि उस ओर शास्त्रज्ञों का बोलबाला है। उस पर तथाकथित अध्यात्मवादी, जो असंयत अवस्था को अबंधक एवं संयतावस्था को औदयिक भाव सिद्ध कर बंध का हेतु मानते हैं का पर्याप्त प्रभाव है। अत: उनका मुनियों के प्रति कोई आकर्षण नहीं है। कुछ विज्ञ अपने तर्कों को आगम से मेल बैठाने के लिए मुनियों के आचरण के संदर्भ में शास्त्रों का भी सहारा लेते हैं। मुनि को ऐसा होना चाहिए, मुनि को ऐसा नहीं करना चाहिए, वर्तमान काल में द्रव्यलिंगी मुनि हैं, पंचमकाल के करोड़ों मुनि और उनके श्रद्धालुओं को नरकवास प्राप्त होगा। इन सब मिथ्या धारणाओं और भ्रामक प्रचार से समूचा उत्तर भारत प्रभावित हो चुका है।'' ऐसा सोचते-सोचते बाई की आँख लग गई। उसके चिंतन के अनुरूप उसे बड़ा अनिष्ट स्वप्न आया। कटनी में किसी भी स्थिति में शांतिसागर महाराज का चातुर्मास न हो इसके लिए एक बड़ा वर्ग तैयार हो चुका है और जिसका प्रतिनिधित्व कर रहे हैं एक पंडितजी। पंडितजी ने संघपति पूनमचंद जी को चातुर्मास असहमति हेतु अनेक तार किए किन्तु संघपतिजी ने उनका कोई उत्तर नहीं दिया अत: पंडितजी स्वयं उनसे मिलने आ गए।

''उत्तर भारत की इस तेज गर्मी में महाराज को अब और विहार नहीं करना चाहिए।'' पंडितजी ने संघपति से कहा।

''पंडितजी मेरा काम गुरु की दिशा की ओर पीछे-पीछे कदम बढ़ाना है उन्हें परामर्श देना नहीं।'' संघपति जी ने बड़ी विनम्रता से पंडितजी के प्रस्ताव को ठुकरा दिया अत: पंडितजी को निराशा हुई। पंडितजी की मुखाकृति को देखकर संघपति जी ने पूछा ''आप अपना विचार महाराज के समक्ष रखेंगे?''

''विहार में इतनी गाड़ियाँ, लंबा-चौड़ा ताम-झाम, ढेरों व्यवस्थाएँ, इतने

परिकर-परिग्रह सहित होकर कोई भावलिंगी मुनि कैसे हो सकता है?'' पंडितजी का मन अतीत में पहुँच गया। ''विद्वत-वर्ग के आग्रह पर शिखरजी जाना पड़ा किन्तु वहां सदा एक ही खटका लगा रहता था कि कहीं महाराजों से सामना न हो जाए। वहां कितने श्रम और सावधानी पूर्वक महाराजों से बच पाया था। अब यहाँ ये महोदय पूछने के बहाने मुझे उन्हीं महाराजों के पास ढकेलना चाह रहे हैं।'' पंडितजी ने अपने मस्तिष्क में बहुत शास्त्रों का भार संगृहीत कर रखा था उनके मन में अगला विचार आया ''अरे जब अणुमात्र भी परिग्रह रखने वाला मुनि दुर्गति का पात्र होता है तब इस विशाल सचित्ताचित्त परिग्रह के रहते हुए क्या इनका मुनित्व सुरक्षित रह सकता है?''

''पंडिजी जी।'' संघपति जी ने जैसे उन्हें चिंतन से बाहर खींचा।

''चातुर्मास के लिए सतना भी अच्छा स्थान है।''

प्रथम योजना के असफल होने पर पंडित जी ने दूसरी युक्ति सोची।

''वन और उपवन में समदृष्टी रखने वाले साधकों के लिए कौन सा स्थान अच्छा और कौन सा बुरा। महाराज के लिए सतना, कटनी बराबर हैं।'' संघपति ने त्वरित किन्तु बड़ा आध्यात्मिक उत्तर दिया।

''यह इनका अध्यात्म है या बातों का मीठा घोल?'' पंडितजी अनुमान लगा रहे थे। ''खैर जो भी हो, किसी भी परिस्थिति में कटनी चातुर्मास नहीं होना चाहिए।'' पंडितजी ने मन ही मन अपना संकल्प दुहराया। वे आगे बोले ''संघपति जी, हमारे यहां साधुओं का संचरण प्राय: नहीं के बराबर है अत: न तो समाज उनकी चर्या से बहुत परिचित है...।''

''और न उनसे परिचय प्राप्त करने के लिए उत्सुक।'' संघपति जी ने मुस्कुराते हुए मानो पंडितजी का वाक्य पूर्ण किया।

''महाराज ने इन्हें यूं ही संघपति नहीं बनाया।'' पंडितजी के मन में आया किन्तु बोले ''नहीं-नहीं, आप ऐसा क्यों सोचते हैं। साधु को दिन में एक बार तो आहार लेना है उस पर यदि श्रावक की अजागरूकता से विघ्न आ जाए, ये तो ठीक नहीं होगा न संघपति जी।''

पंडितजी को आशा थी कि संघपति जी उनकी बात से सहमत हो

जायेंगे।

''पंडितजी दिगम्बर साधु इस अपेक्षा से आहार-चर्या पर नहीं निकलता कि उन्हें आहार लेकर आना ही है।'' पंडितजी, संघपति के उत्तर से चकित हुए। संघपतिजी आगे बोले ''कथंचित् वे आहार के लिए निकलते ही नहीं हैं।''

''मतलब?'' पंडितजी बोले नहीं किन्तु संघपति जी उनके माथे की लकीरों को पढ़ रहे थे। संघपति बोले ''गृहवास के पाप रूपी पंक में निमग्न, संसारी प्राणी के उत्थान की पवित्र भावना के निमित्त वे करुणासागर श्रावक के आंगन तक पहुँच जाते हैं।'' पंडितजी अनन्यमनस्क हो संघपतिजी की भावना को सुन रहे थे। ''वे अपनी अंजुली में आहार नहीं लेते बल्कि संसार सागर में डूब रहे जीव को अपना हस्तावलंबन देकर उठा लेते हैं। हो सकता है कि किसी की दृष्टि में वे बहुत प्रकार की आहार सामग्री ग्रहण करते हों किन्तु सत्य तो यह है कि हम गृहस्थों के बहुत प्रकार की परिग्रहजन्य सामग्रियों के संचय से उत्पन्न महादोष को वे समूल नष्ट कर देते हैं।''

पंडितजी का ज्ञान एक भक्त की भावना के समक्ष नतमस्तक था किन्तु कभी-कभी पुरानी धारणाओं की गठान इतनी गहन होती है कि वर्तमान कालिक उत्तम भावनाओं के प्रबल आवेग से भी वह खुल नहीं पाती। किन्तु बाई की आँख खुल गई। वह बहुत व्याकुल थी। समय मिलते ही वह स्वप्न बतलाने के लिए संघपति के पास पहुँच गई। वहाँ जाकर वह क्या देखती है कि कटनी से आए कुछ लोग, कटनी चातुर्मास न होने के संदर्भ में चर्चा कर रहे हैं। बाई को लग रहा था कि वह पुन: स्वप्न देखने लगी है।

''प्लेग।'' पंडितजी के साथी ने धीमे से उनके कान में कहा।

''मैं भी आपकी भावना से सहमत हूँ।'' पंडित जी ने संघपति जी के सुर में सुर मिलाया पर वे किसी भी कीमत पर संघपतिजी का मन बदलना चाहते थे अत: वे अगला तर्क देने के लिए तैयार थे। ''कटनी में प्रत्येक तीसरे वर्ष प्लेग की बीमारी फैलती है।''

''और प्लेग का यह तीसरा वर्ष है।'' संघपति जी ने ही पंडित जी के

वाक्य को पूर्ण कर दिया।

पंडितजी, संघपति के गांभीर्य को देखकर कुछ संतुष्ट हुए। उन्होंने नया विचार देने के लिए सहयोगी की ओर धन्यवाद के भाव से देखा ही था कि उन्हें सुनाई दिया। ''आचार्य महाराज के चरण पड़ते ही प्लेग की व्याधि आपके नगर से सदा के लिए पलायन कर जायेगी।''

भक्तराज संघपति के महाराज के प्रति अनन्य श्रद्धाभाव को देखकर पंडितजी तो हतप्रभ थे ही अगणित लोगों ने भी उस आश्चर्यकारी घटना, आचार्य शांतिसागर जी के कटनी प्रवेश के उपरांत, प्लेग ने फिर कभी कटनी में अपना प्रभाव नहीं दिखाया को न केवल चर्चाओं में सुना अपितु कटनी जाकर उसे अपनी आँखों से भी देखा।

पंडितजी का निर्मल हृदय एक भक्त की विशुद्ध भावनाओं के समक्ष कब का अपनी पराजय स्वीकार कर चुका था। बाई ने स्वप्न में नहीं इस दृश्य को अपनी आँखों से देखा कानों से सुना फिर भी उसके मन की शंका दूर न हो सकी। स्वप्न कहें या उसकी चिंतनधारा पुनः आगे बढ़ गई। किन्तु साथी के शब्दों ''पंडितजी संकोच से काम नहीं चलेगा'' ने पंडितजी के मस्तिष्क को उद्वेलित कर दिया।

''कटनी में चातुर्मास न हो सकेगा।'' पंडितजी ने शिष्टता का त्यागकर अंततः मूल बात प्रकट कर ही दी। ''आप संघ वापिस ले जाइए।''

''संघ कटनी की ओर विहार कर चुका है। वह रुकेगा नहीं।'' संघपति अत्यंत आत्मविश्वास के साथ बोले ''चाहे कटनी के आसपास कहीं जंगल में टीन के टपरे डालकर ही सही पर हम चौमासा वहीं करवायेंगे।''

संघपति का दो टूक उत्तर सुनकर पंडितजी असमर्थ होकर लौट आए। महाराज कटनी की ओर बढ़ रहे थे और चातुर्मास का समय निकट आता जा रहा था, ऐसे में पंडितजी को अपने सम्यग्दर्शन सुरक्षित रखने की चिंता सताने लगी। ''नगर में चातुर्मास हो तो साधुओं के पास नहीं जाने से सत्रह लोग सत्रह प्रकार की टीका-टिप्पणी करेंगे और यदि उनके पास जाता हूँ तो बिना नमोस्तु किए काम चलेगा नहीं। एक शास्त्रज्ञ यदि ऐसा करेगा तो बाकी लोग? वे तो उसका ही अनुसरण करेंगे। इस प्रकार तो मैं बहुत जीवों के अकल्याण का कारण बन जाऊंगा।''

''पंडितजी, अब तो महाराज चार-पाँच माह कटनी में ही रहने वाले हैं।''

पंडितजी ने साथी को वक्रदृष्टि से देखा। ''मुझे स्मृत कराने के लिए धन्यवाद।'' उनकी वाणी में आक्रोश कम पीड़ा अधिक थी।

''कोई योजना बनाई।''

पंडितजी क्षणएक रुककर बोले ''अर्थात तुम कुछ योजना लेकर आए हो?''

''सबकी सब पर संघपति ने पानी फेर दिया।'क्यों न हम महाराज का परीक्षण कर लेवें?''

''ये क्या कह रहे हो? साधुओं की परीक्षा एक श्रावक करे।'' पंडितजी की आत्मा से आवाज़ आई।

''यदि वे आगम की दृष्टि में समीचीन आचरण का पालन करते हैं, जिसकी संभावना नहीं दिखती।'' उस छोटे पंडित ने बड़े आत्म-विश्वास पूर्वक कहा ''तब उनकी परीक्षा करने में हमें क्या आपत्ति और यदि ऐसा नहीं है तो कल के दिन जब समाज हमसे पूछेगी तब हम स्पष्टीकरण देने की स्थिति में तो रहेंगे।''

पंडितजी को उसकी बात जम गई।

पंडितजी ने मूलाचार, आचारसार, अष्ट-पाहुड़ आदि मुनि आचरण के प्रतिपादक ग्रंथों के आधार पर कुछ बिंदु तैयार कर लिए। अपने विद्वत् मित्रों के साथ उन पर मंथन भी किया एवं फिर भेष बदलकर पहुँच गए महाराज के संघ में।

''आहार व्यवस्था कैसी, कब, कहां होनी है, संघपति को महाराज बतलाते होंगे।'' पंडितजी ने सोचा किन्तु अनेक दिवस व्यतीत होने पर भी उन्हें ऐसा एक भी अवसर देखने नहीं मिला। इसके उलट, उनकी आशा के विपरीत, संघपति, पूरे संघ के चौका की व्यवस्था निरंतर करते, तब भी जब संपूर्ण संघ का उपवास होता। चौके में नाना व्यंजन बनते किन्तु महाराज क्या लेते, कभी नीरस मूंगदाल और रोटी, तो कभी मात्र जल। पंडितजी ने एक-एक कर न केवल मुनियों के सभी मूलगुणों का सूक्ष्मतापूर्ण निरीक्षण किया अपितु वे उनके उत्तरगुणों की ओर भी दृष्टि रखे हुए थे।

''रात्रि में महाराज क्या करते हैं?'' छोटे पंडित ने पूछा।

''ये कैसा प्रश्न?'' पंडितजी ने साश्चर्य उससे पूछा। हालांकि वे

उसका मंतव्य समझ चुके थे कि ''साधु तो अल्प समय के लिए निद्रा लेते हैं। उनका अधिकांश समय तो ज्ञान, ध्यान एवं तपाचरण के लिए होता है।''

दोनों ने एक-दो नहीं अनेक रातों जागरण किया।

मात्र आचार्य महाराज को ही नहीं संघ के सभी साधुओं को देखा। वे देखते-देखते थककर चूर हो स्वयं नींद लेने विवश हो जाते किन्तु ऐसे बहुत अल्प अवसर मिलते जब महाराज निद्रा को अपना समय देते। वे निद्रा लेते भी तो अत्यंत जागृति पूर्वक। कोई साधु तो एक ही करवटपूर्वक अपना विश्राम पूर्ण कर लेते और किसी को मौसम या स्वास्थ्य संबंधी बाधा होती तो करवट लेने के पूर्व पिच्छी से परिमार्जन करते। बहुत प्रकार से परीक्षा लेते-लेते अंततः पंडित जी एक दिन विद्यार्थी बन ही गए। अमरपाटन पहुँचते-पहुँचते पंडितजी के हृदय में महाराज के प्रति श्रद्धा उमड़ पड़ी। उन्होंने अंतरंग से प्रथम बार महाराज को नमोऽस्तु किया। पंडितजी का मस्तक जब महाराज के चरणों से उठा तो उनके आँसुओं से महाराज के चरण भीग चुके थे।

पंडितजी ने क्षमा मांगी तो महाराज ने मुस्कुराते हुए कहा पंडित जी अभी कुछ और शेष रह गया हो तो कर लो।''

पंडितजी के नेत्र आंसुओं से पुनः भीग गए।

''आचार्य समंतभद्र स्वामी ने भी आप्त की परीक्षा ली थी, इसलिए आपने कोई असम्मत कार्य नहीं किया है।'' इस वाक्य को सुनते ही पंडित जी के चेहरे की चमक लौट आई। महाराज आगे बोले ''किन्तु समर्पण के उपरांत संदेह का स्थान नहीं होना चाहिए।''

पंडितजी को लगा ''जैसे एक माँ अपने पुत्र की धृष्टता के बदले भी उसे मधुर व्यञ्जन ही परोसती है। वही व्यवहार महाराज ने हमारे साथ किया है। हे प्रभो! मेरा अपराध क्षम्य हो।'' कहते हुए पंडितजी गदगद चित्त हो गए।

बाई का स्वप्न अब उनकी भावना की दिशा में था अतः उसका मन प्रसन्नता से भर जाना चाहता था। जैसे-जैसे महाराज के कदम आगे बढ़ रहे थे बाई का उत्तर-भारत की मुनिभक्ति के प्रति उत्पन्न संदेह पीछे छूटता जा रहा था। देश के अग्रणी विद्वान पं. जगनमोहन लाल जी, कटनी समाज के श्रेष्ठी सिंघई कन्हैया लाल जी, राजाराम जी इत्यादि प्रतिष्ठित श्रेष्ठियों के

नेतृत्व में सैकड़ों श्रावकों की महाराज के आहार विहार में प्रतिदिन उपस्थिति देखकर बाई का मन अकल्पनीय आनंद से तृप्त हो गया।

महाराज तो निर्विकल्प थे ही अत: वे निराबाध अग्रसर थे। उन्होंने आगे विहार करते हुए मैहर की सीमा में प्रवेश किया।

यहाँ एक व्यक्ति महाराज के प्रति बहुत भक्ति प्रदर्शित कर रहा था। साथ ही महाराज को उसकी आँखों में जिज्ञासा दिखी। ''कुछ कहना चाहते हो?'' महाराज ने सस्नेह उससे पूछा।

''हाँ स्वामी जी एक प्रार्थना है।''

निकट ही गेंदनमल जी खड़े हुए थे। ''दु:खी, दरिद्री दिख रहा है।'' उन्होंने सोचा ''कुछ पैसों की आवश्यकता होगी।'' अत: उन्होंने अपनी जेब में हाथ डाला ही था कि वह बोला ''स्वामी जी, गांजा मंगवा देता हूँ, उसके सेवन से आपका मन चंगा हो जायेगा।''

संघपति जी उसकी अशिष्टता पर अप्रसन्न हुए किन्तु महाराज के मुख पर सौम्यता थी। वे बोले ''भैया, हमारा मन तो सदा चंगा रहता है। हम लोग मादक पदार्थों का सेवन नहीं करते हैं।''

सभी जैनबंधु चकित थे कि ''महाराज उसके ऐसे असभ्य बर्ताव पर भी रुष्ट नहीं हुए।'' और वह व्यक्ति चकित था कि ''ये कैसे साधु हैं?'' उसने पूछा ''स्वामी जी सब साधु पीते हैं, आप क्यों नहीं पीते?''

उपस्थित जन-समुदाय को देखकर ऐसा लग रहा था कि कहीं आक्रोशित होकर कोई उस व्यक्ति को शारीरिक हानि न पहुँचा दे किन्तु महाराज तो सब जीवों के हित का सोचते हैं। उन्होंने बहुत करुणापूर्वक उसे समझाते हुए कहा ''इन नशीले पदार्थों के सेवन से न केवल शरीर में उत्तेजना उत्पन्न होती है अपितु भावों में भी मलिनता आ जाती है। साधु की बात तो दूर ही है, मनुष्यमात्र को इन अपसेव्य वस्तुओं का सेवन नहीं करना चाहिए।''

यह बात उसे समझ आ गई, यह सोच गेंदनमलजी को बहुत संतुष्टि हुई किन्तु ''महाराजश्री, थोड़ी मिठाई ले आता हूँ, उसे स्वीकार कर लीजिएगा।'' उसके इस वाक्य से जैन बंधु पुन: उत्तेजित हो गए।

''तुम इतनी देर से क्या अंट-शंट बके जा रहे हो।'' एक भाई ने कुछ

क्रुद्ध होते हुए तेज आवाज में कहा। उसे अपेक्षा थी कि आचार्य महाराज की मौन रूप से ही सही किन्तु स्वीकारोक्ति मिलेगी।

''मिठाई!'' महाराज ने जैन श्रावक के शब्दों को मानो सुना ही नहीं हो, अत: उसकी अवहेलना करते हुए, उस जैनेतर भाई से सस्मित बोले ''जीवन में मधुरता हो तो प्रत्येक पदार्थ मीठा लगता है।''

महाराज का भाव समझ गेंदनमल जी बोले ''जैन साधु के आहार संबंधी नियम बहुत कठिन होते हैं। वे यहां-वहां की कोई भी वस्तुओं का जब-तब भक्षण नहीं करते हैं।''

वह जैनेतर बंधु अनेक दिनों तक महाराज के पास आता रहा। वह महाराज के उपदेश एवं उनकी समता से तो प्रभावित हो ही चुका था किन्तु जब उसने स्वयं अनेक दिनों तक महाराज की आहार-चर्या एवं जीवन-शैली देख ली तो उसने भी अपने जीवन को परिवर्तित करने की ठान ली। स्वयं ने तो मादक पदार्थों के सेवन का त्याग किया ही साथ ही वह आगे से कभी किसी को नशीले पदार्थों के लिए प्रेरित नहीं करेगा ऐसा भी संकल्प लिया।

एक दिन शील धर्म पर महाराज का उपदेश हुआ। ''मनुष्य के मन के निर्देश पर उसकी इंद्रियाँ अपना व्यापार करती हैं। इन इंद्रियों और मन की सांठगांठ से जीव आत्म-परिणति से विपरीत वैषयिक सुख को ही इष्ट मानने लगता है। अपने-अपने क्षेत्र में एक-एक इंद्रिय, इंद्र के समान साम्राज्य स्थापित कर मन के शासन को दृढ़ से दृढ़तर करती रहती है।'' अन्य इन्द्रियों के माध्यम से होने वाले पाप कर्मों के व्याख्यान के साथ-साथ उन्होंने स्पर्शन इंद्रिय जन्य कार्यों का हृदयस्पर्शी विवेचन किया। ''स्पर्श सुख के लिए अथवा यूं कहो कि स्पर्शन इंद्रिय से उत्पन्न व्याधि के शमन हेतु मनुष्य वैवाहिक प्रक्रिया से गुजरता है किन्तु खेद है कि वह मन के बहकावे में आकर अनियंत्रित होकर स्वच्छंद प्रवृत्ति की ओर उद्यत हो उठता है, भाई!'' महाराज के संबोधन में अत्यंत करुणा थी। ''शीलवती स्त्री यदि अपने पति को सर्वस्व समर्पण कर देती है तो कम से कम इसी नाते पुरुष को अपनी स्त्री के प्रति निष्ठा निभानी चाहिए। इस एक कार्य से प्रचुर पाप कर्म से रक्षा हो जायेगी एवं घर-परिवार भी सुरक्षित रहेगा, साथ ही साथ समाज में भी

नैतिकता की स्थापना हो जावेगी।''

महाराज के उपदेश से भावित होकर अनेक पुरुषों ने स्वदार-संतोष व्रत को धारण किया तो उस जैनेतर भाई ने भी महाराज के समक्ष एक-स्त्री व्रत को प्रसन्नतापूर्वक अंगीकार कर लिया। अपने पति के सत्-संकल्प से उसकी स्त्री की आचार्य महाराज एवं जैन धर्म पर प्रगाढ़ श्रद्धा हो गई। उसने अन्य अनेक नियमों के साथ-साथ महाराज से सदैव छना पानी पीने का व्रत ले लिया।

इस प्रकार आचार्य महाराज के प्रभाव से उस दंपत्ति का न केवल वर्तमान जीवन परिवर्तित हो गया अपितु उसने भव-भवांतर के लिए भी सतपथ तैयार कर लिया। महाराज के आभामंडल का आकर्षण ऐसा ही था कि वे जिस पथ पर गमन करते वहाँ मिलने वाले अनेक जीवों को समीचीन आचरण का दान देते और जहां ठहरते वहाँ के लोगों को भी अहिंसा धर्म से उपकृत करते।

आचार्य महाराज सानंदपूर्वक कटनी चतुर्मास सम्पन्न करने के उपरांत बिलहरी के ग्रामीणों का उद्धार करते हुए जबलपुर पहुँचे। जबलपुर बड़ा एवं समृद्ध शहर था। यहाँ जैनियों की संख्या भी बहुत थी किन्तु ध्यानप्रिय आचार्य महाराज का अधिकांशत: काल मौन एवं ध्यान-साधना में ही व्यतीत हो रहा था। उन्हें हनुमानताल के जिनालय में अद्भुत शांति मिलती थी, मढ़िया जी का प्रशांत वातावरण भी साधना के अनुकूल लगता था। आचार्य महाराज की आज्ञा से मुनि वीरसागर आदि महाराजों के धर्मोपदेश होते थे। महाराजों के उपदेश में सदाचरण एवं नैतिक कर्तव्य की प्रेरणा होती जिससे अनेकों को दिशा-बोध मिलता। इस तरह भारी धर्म-प्रभावना करते हुए सहजपुर, गोटेगांव, कोनी होते हुए महाराज ससंघ कटंगी पहुँचे। यहाँ की धर्मात्मा समाज ने बड़ी मुनिभक्ति प्रदर्शित की, जिससे महाराज का एक दिन का प्रवास चार दिनों तक हो गया। अतिशयकारी मुनिसुव्रतनाथ भगवान के दर्शन से प्रफुल्लित होते हुए महाराज अनेक स्थानों को उपकृत करते हुए बांदकपुर के मार्ग से कुण्डलपुर पहुँचे। यहाँ पर विराजमान बड़े बाबा श्री आदिनाथ की मनोहर प्रतिमा, अतिशयकारी भी है। अनंत काल की भव-भ्रमणा में अथक पुरुषार्थ से भी जिस कार्य की सिद्धि नहीं हो सकती, प्रतिमा के दर्शन एवं माहात्म्य से

ऐसे सम्यग्दर्शन रूपी रत्न की प्राप्ति भी हो जाती है, तब अन्य चमत्कार एवं अतिशयों की तो बात ही क्या है। महाराज, श्री आदिनाथ प्रभु की प्रतिमा की सन्निधि प्राप्त कर, ऐसा अनुभूत कर रहे थे मानो प्रभु की साक्षात् उपलब्धि ही हो गई हो।

महाराज विहार करते हुए आगे बढ़ रहे थे। ओरसा ग्राम में संघ का रात्रि विश्राम था। दमोह के सेठ ने अत्यंत, भक्तिपूर्वक वहां एक घर को अच्छे ढंग से साफ-सुथरा करवाया ताकि मच्छर आदि की बाधा न हो। महाराज जब उस स्थान पर पहुँचे तो वहां की प्रशस्तता देखकर उनके चहरे पर स्मित छा गई। सेठजी ने हाथ जोड़ लिए किन्तु उनके एक परिचित से रहा नहीं गया। उन्होंने सेठजी की प्रशंसा करते हुए कहा ''महाराज, सेठजी ने आपके प्रवास हेतु स्वयं अपनी उपस्थिति में इस भवन की साफ-सफाई करवाई है।

महाराज के आनन पर पुनः स्मित फैल गई किन्तु यह पहले वाली से भिन्न थी। जैसे ही महाराज ने पिच्छी उठाई सेठजी को कुछ अप्रीतिकर आभास हुआ। जब महाराज उठने लगे तो सेठजी का मन घबराने लगा।

''महाराज, महाराज...।'' सेठजी के मुख से निकलता ही रह गया और आचार्य महाराज संघ सहित भवन के बाहर निकल चुके थे।

सूर्यास्त होने ही वाला था अतः अन्यत्र जाना संभव नहीं था। महाराज बाहर आंगन में ही ठहर गए। महाराज सामायिक में लीन हैं अतः उनके ध्यान में बाधा न हो यह सोचकर सेठजी सहित अन्य श्रावक वहाँ से प्रस्थान कर चुके थे। मानो मच्छर राजा को उसके दूत ने यह संदेश दे दिया हो। मच्छरों के सेनापति ने अपनी चतुरंगणी सेना के साथ वहाँ धावा बोल दिया। मच्छरी सेना बहुत सशक्त थी। मनुष्यों के तो 32 ही दांत होते हैं किन्तु मच्छरों के राजा ने 47 दांतों वाले मच्छरों को वहाँ भेजा था। अनेक प्रकार के काटने वाले मच्छर महाराज के शरीर पर बार-बार प्रहार कर रहे थे। पुराना मच्छर धीरजपूर्वक रक्त चूस कर सुस्त हो जाता तो उसके स्थान पर दूसरा उपस्थित हो जाता। कुछ ऐसे भी मच्छर थे जो महाराज का रक्त शोषण तो नहीं कर रहे थे किन्तु उनके चारों ओर घूम-घूमकर भिन-भिन कर रहे थे। **मच्छरों के पास आँखें तो थीं किन्तु मन और बुद्धि नहीं थी कथंचित इसीलिए सिंह एवं सर्प**

जैसे हिंसक पशु महाराज के तप के समक्ष नतमस्तक हो बिना उपसर्ग के चले जाते थे परन्तु मच्छरों का दंश निरंतर जारी था। अनेक प्रहरों तक परिषहजय करते हुए जब इन महामुनि का स्मरण सूर्यदेव को हुआ तो उसके प्रकट होते ही मच्छरों की फौज पलायन कर गई।

प्रात: जब सेठजी सहित अन्य श्रावकों ने महाराज के दर्शन किए तो उनके शरीर पर बने निशानों को देखकर वे काँप गए।

''ओह!'' नमोऽस्तु के स्थान पर सेठजी के मुख से निकला।

महाराज के आनन पर मंद मुस्कान थी।

''जब एक मच्छर की भनभनाहट हमारे मन को विचलित कर देती है तब इतने लंबे काल तक अगणित मच्छरों के दंश प्रहार को आप साम्य-भाव से सहन करते रहे। धन्य हो भगवन, धन्य हो।'' सेठजी का हृदय भक्ति से गदगद हो गया।

सेठजी के नेत्रों में अश्रु देखकर, महाराज उनके चित्त की निर्मलता समझ गए अत: सस्मित हो मधुर वाणी में बोले ''कर्म निर्जरा के ऐसे अवसरों की तो मुनिराज खोज करते हैं, वह मुझे यहां सहज ही मिल गया।''

सेठजी के मुख से एक भी शब्द न निकला, किन्तु उनका मन कह रहा था ''जिनवचनों का असाधारण प्रसाद जिन्हें प्राप्त हुआ है, वे श्रमण कैसे भी दुर्धर एवं भीषण कष्ट-संकुल अवसर को कर्म निर्जरा का अपूर्व अवसर मानकर उसे सहर्ष स्वीकार करते हैं। अहो इन योगियों की निर्मल भावदशा का ही यह माहात्म्य है कि अगणित डांस, घंटों तक उनके शरीर का रक्त चूसते रहे और वे ऐसे निर्विकार निश्चल बने रहे मानो ये शरीर उनका अपना न हो।''

वास्तव में भेद-ज्ञान के प्रकाश में शरीर को चैतन्य पिण्ड आत्मा से पृथक अनुभूत करने वाले तत्त्ववेत्ता शरीर पर बड़ी से बड़ी बाधा आने पर भी न विचलित होते हैं और न संक्लेश का अनुभव करते हैं। ऐसे परिषह एवं उपसर्गों के क्षणों में महाराज की स्थिरता देखकर यह अनुमान लगाना कठिन नहीं रह जाता कि उन्होंने विशुद्धि का उच्चतर स्तर प्राप्त कर लिया है।

ओरसा से विहार करते हुए महाराज बांसा, गढ़ाकोटा, सागर आदि अनेक स्थानों को अपनी पद रज से पवित्र करते हुए सिद्धक्षेत्र द्रोणगिरी पहुँचे। ऐसे क्षेत्रों पर पहुँचना क्या है मानो स्व-क्षेत्र में ही पहुँचना है। जीव की

गति अनादिकाल से पर द्रव्य, पर क्षेत्र, पर काल और पर भावों की ओर ही रही है फलत: वह अनंत संतति प्रवाह में छटपटाता रहा। कोई विरले ही जीव होते हैं जो इस परंपरा से विमुख होकर स्वमुख हो जाते हैं। उन्हीं में से एक थे परम तपोधन आचार्य शांतिसागर जी महाराज। रात्रि में वे प्राय: पर्वत पर ही रहते थे। तथा धर्मोपदेश एवं चर्या आदि के निमित्त प्रात: नीचे तलहटी में आ जाया करते थे। एक दिन वे प्रात: की सामायिक में स्थित हुए तो स्थित ही रहे। नीचे लोग उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे किन्तु सदा समय के पाबंद महाराज को आज इतना विलंब क्यों हुआ वे समझ नहीं पा रहे थे। पर वास्तव में यहाँ दृश्य कुछ और ही था। महाराज के नजदीक वनराज दहाड़ रहा था।

''अब क्या करोगे ?'' बिंब ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई।

''ये क्या करेंगे, जो करेगा सिंह ही करेगा।'' प्रतिबिंब भी टिप्पणी करने से पीछे नहीं रहा।

''सिंह की दहाड़ से यह तो स्पष्ट है कि वह आसपास ही है किन्तु वह शिकार के लिए ही निकला हो, उसे मनुष्य की गंध आ चुकी है, वह इसी ओर आ रहा है यह सब कहना शीघ्रता होगी।'' बिंब ने अपना अनुमान व्यक्त किया।

''यदि सिंह यहां आ ही जाता है तब...।'' सिंह को निकट आता देख प्रतिबिंब का वाक्य बीच में ही छूट गया।

सिंह ने भयानक गर्जना की।

''शरीर भी परिग्रह है अत: पर ही है आप इसका भी त्याग करें। बिंब का उद्‌बोधन प्रारंभ हो गया। आचार्यों ने कहा है कि ऐसे उपसर्गादिक के समय अत्यंत सावधान होकर आत्मा को संसार सागर से पार उतारने वाली समाधि धारण कर लेना चाहिए।''

''समाधि...।'' प्रतिबिंब कांप उठा। ''अर्थात प्राणों का बुद्धि पूर्वक त्याग। धिक् आत्मघात। सिंह जीवन समाप्त करे न करे किन्तु ये अवश्य ही मृत्यु का कारण बनेगा।'' प्रतिबिंब उग्र हो चुका था।

''भाई समाधि का अर्थ मृत्यु नहीं, आत्मघात तो बिल्कुल भी नहीं है।'' बिंब अत्यंत शांत स्वर में समझाने का प्रयत्न कर रहा था। ''समाधि

अर्थात समता परिणाम। जब जीवन जाने को ही है तब नियमपूर्वक निर्मल परिणामों के द्वारा निजात्मा की सुरक्षा करना।''

''मैं समझा नहीं।''

''आत्मघात संसार की प्रतिकूल परिस्थिति से घबराकर, अत्यंत संक्लेशपूर्वक क्षणिक भावोद्रेक के कारण अविवेकपूर्वक किया गया अकरणीय कृत्य है। जबकि समाधि, अहा!'' बिंब धन्यभाव से भरकर बोला ''समाधि, मरण के अपरिहार्य होने की स्थिति में अत्यंत विशुद्धि एवं बुद्धि-विवेकपूर्वक, शास्त्रानुकूल किया गया महान अनुष्ठान है।''

प्रतिबिंब ने सहमति का संकेत किया किन्तु फिर भी उसके अंदर अभी संशय था। वह बोला ''हो सकता है सिंह इस ओर आए ही न और यदि आ भी जाए तो कथंचित इन महामुनि की तप: साधना से नतमस्तक हो वापिस लौट जाए किन्तु समाधि में तो मृत्यु अनिवार्य होगी।''

''जैसा तुम कह रहे हो वैसा ही हो किन्तु अपने भीतर से इस भ्रांति को सदैव के लिए निकाल दो कि समाधि अर्थात् मृत्यु। समाधि समता परिणाम का द्योतक है, सुख में और दु:ख में, जीवन और मरण में। यदि मृत्यु सामने ही हो तो उस समय समता धारण करना। और यदि वह उपसर्ग टल जाए तब पुन: अपनी साधना को अनवरत आगे बढ़ाते जाना।''

''यदि ऐसा है तब फिर मैं अपनी गलत धारणा को समाप्त कर लेता हूँ।''

सिंह महाराज के एकदम निकट आ गया। ऐसा लग रहा था कि वह बहुत भूखा है एवं पिछले अनेक दिनों से शिकार की तलाश में है किन्तु उस मुद्रा को देखकर वह असमंजस में पड़ गया।

''ये मनुष्य हैं या पाषाण खण्ड।'' सिंह के मन में आया अत: उसने महाराज को स्पर्श किया। बहुत दूर से ही मनुष्य की गंध को पहिचान लेने वाले उस वनराज को आज महाराज को छूकर भी अनिर्णय की स्थिति बनी रही। उसे कुछ समझ नहीं आ रहा था कि ''ये क्या कोई अलौकिक मनुष्य हैं कि जो मुझ जैसे क्रूर एवं हिंसक प्राणी को भी, शांत किए जा रहे हैं।'' सिंह ने वहाँ से लौटने का सोचा किन्तु उसके कदम कुछ दूर तक आगे बढ़े और

पुनः लौट आए। वह महाराज को बहुत समय तक अनवरत देखता रहा और फिर वहीं बैठ गया, मानो वह बहुत थक चुका हो अपनी क्रूरता से और संसार से भी। कभी मुनिमुद्रा के प्रभाव से एक सिंह, आगामी पर्यायों में भगवान महावीर बन गया और आज इन यतिराज की सन्निधि पाकर इस सिंह का भी जीवन सार्थक हो गया। मुनिमुद्रा भी जिनबिंब दर्शन के समान सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का साक्षात् कारण है। मुनिराज का मौन भी देशना का काम कर सकता है। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो सिंह को जीवन का सार मिल गया हो, बहुत समय तक उसके नेत्रों से अश्रुजल प्रवाहित होता रहा। वह अत्यंत शांत हो बहुत समय तक उनके निकट ही बैठा रहा। कुछ घंटों में ही मानो उसके जन्म-जन्मों की भूख शांत हो गई थी जिससे वह वहां से चला गया।

कुछ समय के प्रवास के उपरांत आचार्य महाराज का द्रोणगिरी से भी विहार हो गया। उपवासों का क्रम पूर्ववत जारी था, उस पर बुंदेलखण्ड की भयंकर गर्मी में पद विहार चला जो आतापन योग से कम नहीं था। ललितपुर धर्मनगरी में महाराज की चातुर्मासिक स्थापना हुई। पूर्व अर्थात् कटनी चातुर्मास में महाराज की अनशन साधना चरम पर थी वहाँ उन्होंने छह माहों में चार माह से अधिक उपवास किए थे। अब इस चातुर्मास में महाराज ने सिंहनिष्क्रीड़ित तप की प्रतिज्ञा कर ली। साधना निराबाध चल रही थी। 105 उपवास हो चुके थे। अब इस व्रत के उत्कृष्ट उपवास अर्थात् लगातार 15 उपवासों की साधना का क्रम था। इन्हीं दिनों उन पर ज्वर का प्रकोप छा गया। उपचार न होने से ज्वर लगातार बढ़ता जा रहा था। 101, 102 से चढ़ता हुआ वह 106 डिग्री तक पहुँच गया। लंबे उपवासों से शरीर वैसे ही अत्यंत जीर्ण हो चुका था उस पर ज्वर की मार। देह की सामर्थ्य अत्यंत क्षीण हो चुकी थी किन्तु देही अनंत शक्ति का स्रोत है। आचार्य महाराज मानो उस स्रोत तक पहुँच ही चुके थे अन्यथा इस भीषण परिस्थिति में भी आवश्यकों में कमी लाए बिना साधना की निरंतरता कैसे संभव थी।

15 उपवासों के उपरांत पारणा का दिन आ गया, ''इसके पश्चात् पुनः 15 उपवास।'' संघ एवं श्रावकों के बीच उथल-पुथल मची हुई थी।

''हे प्रभु! आचार्य महाराज की पारणा कैसे होगी?'' ऐलक पायसागर

जी की चिंता ने अनायास ही शब्दों का रूप ले लिया।

''हाँ, खड़े होने की भी शक्ति नहीं है, तब फिर श्रावक के घर चलकर कैसे पहुँचेंगे?'' नेमिसागर महाराज ने ऐलक जी की चिंता को जैसे कुछ व्याख्यायित किया।

''यदि हम यहीं चौका की व्यवस्था कर देवें।'' समाज के अध्यक्ष ने अपना सुझाव देना चाहा किन्तु संघ के साधुओं की भाव-भंगिमा देखकर वे अपना वाक्य पूर्ण न कर सके।

''आप प्रबंध अवश्य कर देंगे किन्तु आचार्य महाराज, अपने निमित्त की गई व्यवस्था को उद्दिष्ट एवं सदोष मानकर प्राणों की हानि होने पर भी स्वीकार नहीं करेंगे।'' वीरसागरजी ने अपने पिछले अनुभव के आधार पर कहा।

''हाँ हमने भी संघ में रहते हुए ऐसे अनेक प्रसंग देखे हैं जब जानकारी के अभाव में भी यदि उन्होंने कभी सदोष व्यवस्था स्वीकार कर ली हो तो ज्ञात होते ही वे तत्काल कठोरतम प्रायश्चित ग्रहण कर लेते हैं।'' नेमिसागरजी ने आचार्य महाराज की आगमनिष्ठा के प्रति मानो अपनी श्रद्धा व्यक्त की।

''तो फिर हम क्या करें, कृपया हमारा मार्गदर्शन करें।'' अध्यक्ष ने बड़ी विनम्रतापूर्वक मासूमियत से कहा।

संघ के साधुओं के चेहरे पर एक साथ स्मित छा गई।

साधुओं की यह मुस्कान, एक गहरे संदेश को लिए हुए थी, जो अध्यक्ष एवं अन्य श्रावकों की समझ आ गया। पारणा का दिन आया तो धर्मशाला के निकटस्थ अनेक श्रावकों का समुदाय पड़गाहन करते हुए दिखा। वे अन्त:प्रेरणा से भक्तिवशात् महामुनि की इस पुण्य-पारणा, रूपी सरिता में स्नान करने की उत्कृष्ट भावना से आप्लावित दिख रहे थे। आहार चर्या का समय जैसे-जैसे निकट आ रहा था श्रावकों की उमंग बढ़ती ही जा रही थी। संघस्थ साधुओं के हृदय में प्रशस्त चिंता मिश्रित निरंतराय-निराबाध आहार की शुभेच्छा बनी हुई थी। आचार्य महाराज ने क्षुधादि अठारह दोषों से रहित एवं अनंत-वीर्य के महापुंज स्वरूप चौबीस तीर्थंकर भगवान का पवित्र स्मरण किया तो जैसे उनके शरीर में कोई दिव्य शक्ति आ गई हो। वे बड़ी सरलता से जिनमंदिर पहुँच गए। वहाँ अंत:चक्षुओं से साक्षात् जिनबिंबों का दर्शन कर अत्यंत

आह्लादित हो उठे।

वीरसागर जी आपकी इस भावदशा को अपलक देख रहे थे। ''धन्य हैं ये योगीश्वर और अद्‌भुत है इनकी जिनभक्ति। खड़े होकर स्तुति करते हैं, फिर गवासन से बैठकर नमोऽस्तु करते हैं, स्तवन करके फिर खड़े हो जाते हैं। कौन कहेगा ये पिछले एक पक्ष से निराहार हैं। अभी कुछ समय पूर्व थर्मामीटर 104 को छू रहा था और अब ये कैसा चमत्कार। धन्य हैं गुरुदेव आप और धन्य है आपका आत्मबल।''

'' संघ का प्रत्येक साधक आपकी साधना से सदा ही प्रेरणा लेता रहा है।'' नेमिसागर जी को भी आचार्य महाराज की यह मुद्रा पुलकित कर रही थी। उनका मन अतीत में पहुँच गया। ''सामायिक करते समय मुझे तंद्रा आ गई थी।''

''नेमिसागर जी, आप सामायिक बड़ी अच्छी करते हैं।'' महाराज का यह हितोपदेशी वाक्य मेरी साधना के लिए प्रेरणा स्रोत बन गया। ''मनुष्य पर्याय बड़ी दुर्लभता से मिली है। मैंने उसी दिन से घोड़ासन में सामायिक प्रारंभ कर दी। प्रारंभिक कुछ दिनों तो शरीर ने सहयोग नहीं किया किन्तु फिर गुरुकृपा से एक-दो घड़ियों का अभ्यास कई-कई घंटों में परिवर्तित हो गया। सामायिक के काल में फिर निद्रा ने झांकने का भी प्रयत्न नहीं किया। आपकी प्रायोगिक शिक्षाएँ हम शिष्यों के लिए आदर्श हैं।''

ऐलक पायसागरजी का मन गुरुदेव के मुनीत्व और इस कठोर तपश्चरण में भी निराकुलता के असीम आनंद को लखकर, मुनि बनने के लिए लालायित होने लगा। ''हे प्रभो! इन तपोधन के माध्यम से, हमें भी ऐसा ही आत्मिक आनंद प्राप्त हो।''

चंद्रसागरजी, आचार्य महाराज के बिल्कुल समीप रहकर अत्यंत सावधान थे।'' यद्यपि गुरुदेव की आत्मा स्वयं समर्थ है किन्तु तपश्चरण और ज्वर से दुर्बल हो चुकी उनकी इस देह का अवलंबन बनने का जाने कब सौभाग्य प्राप्त हो जावे।''

आचार्य महाराज आहार-चर्या को निकल चुके थे किन्तु अन्य अवसरों की भाँति आज बिल्कुल भी कोलाहल नहीं था। सभी श्रावक आत्म संयत थे।

वे बहुत ही मंद किन्तु कर्णप्रिय ध्वनिपूर्वक योगीराज का पड़गाहन कर रहे थे। सभी श्रावक चाहते थे कि आचार्य महाराज की इस महापारणा का लाभ उन्हें मिले अत: उनकी बढ़ती भक्ति एवं विशुद्धि उनके चेहरों से स्पष्ट झलक रही थी। महाराज वृत्ति-परिसंख्यान को धारण कर निकले और योग था कि विधि शीघ्र ही मिल गई। **आचार्य महाराज एक ही थे किन्तु उनके पड़गाहन की वांछा के लिए अगणित श्रावक लालायित थे। लाभ एक को ही मिल सकता था अत: एक को ही मिला किन्तु तपोधन की पारणा का अवसर न मिल पाने का दु:ख, उनके निरंतराय आहार सम्पन्न होने से उत्पन्न संतोष के द्वारा दूर हो गया।**

इस पारणा को देखने दूर-दूरांतर से सहस्रों लोग आए थे। भीड़ बहुत थी किन्तु सभी स्व-अनुशासित थे। अत: उन्होंने दाता के भाग्य की सराहना करते हुए महापात्र के आहार दान की बहुत-बहुत अनुमोदना की। अन्यमती सोच रहे थे कि ''इतने लंबे अंतराल के उपरांत भोजन ग्रहण कर रहे हैं, अनेक प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजन ग्रहण करेंगे।'' किन्तु वे यह देखकर विस्मित थे कि ''महाराज ने थोड़ी सी आंवले की कड़ी तथा जरा सा धान्य बस लिया। हम जैसा सामान्य भोजन भी नहीं लेने वाले ये कोई सिद्ध महर्षि हैं।'' ऐसी भावना करते हुए जैन-जैनेतर सभी के परिणामों की निर्मलता बहुत बढ़ चुकी थी। जब आचार्य महाराज के निमित्त अनेक जीव विशुद्धता को प्राप्त हो रहे थे तब उनके स्वयं की भावदशा का कहना ही क्या। महाराज ने आहार पूर्ण होते ही पुन: अगले एक पक्ष का उपवास धारण कर लिया। इस प्रकार वे महान सिंहनिष्क्रीड़ित तप को धारण कर मोक्षमार्ग पर निरंतर गतिशील थे।

चातुर्मास समाप्ति के कुछ समय उपरांत भी ललितपुर वासियों को महाराज की साधना देखने का सौभाग्य मिलता रहा। फिर एक दिन अचानक महाराज का विहार हो गया। सभी चकित थे जीर्ण शरीर है ये चलेंगे कैसे। किन्तु ये आचार्य शांतिसागर महाराज थे। वे शरीर की शक्ति से अधिक संकल्प की शक्ति में विश्वास रखते थे। बुंदेलखण्ड के तीर्थ-क्षेत्र अहार,

पपौरा, चन्देरी, थूवोन, देवगढ़ इत्यादि के दर्शनों का लाभ लेते हुए सिद्धक्षेत्र सोनागिरी पहुँचे। यहां ऐलक पायसागरजी की भावना पूर्ण हुई। उनके साथ-साथ चंद्रसागरजी, नेमिसागरजी एवं कुंथुसागर जी को सिद्धसाक्षी जैनेश्वरी दीक्षा प्राप्त हो गई। सात मुनिराजों के मध्य महाराज एक दिव्य नक्षत्र की भाँति सुशोभित हो आगे की ओर विहार करते जा रहे थे। जैन संस्कृति के महान केन्द्र रहे ग्वालियर होते हुए महाराज मुरैना नगर पहुँचे।

मुरैना विद्वत्ता का बड़ा केन्द्र है। इसे जैन धर्म के महान विद्वान गोपालदास जी बरैया की निवासभूमि होने का गौरव भी प्राप्त है। आपके द्वारा स्थापित जैन-सिद्धांत विद्यालय का जैन विद्वानों के मध्य बड़ा महत्व है। पं वंशीधर जी न्यायालंकार, पं. देवकीनंदन सिद्धांत शास्त्री एवं पं. माणिकचन्द जी सदृश उद्‌भट विद्वानों की उपस्थिति से यह विद्यालय ज्ञान पिपासुओं के लिए आकर्षण का केन्द्र बना हुआ था। इस केन्द्र की कीर्ति से प्रभावित होकर दक्षिण भारत से अनंतकीर्ति मुनिराज ज्ञान लाभ हेतु मुरैना पधारे थे। जहां सांगली, कोल्हापुर आदि दक्षिण के स्थानों का वातावरण समशीतोष्ण होने से मुनिचर्या के लिए बड़ा प्रशस्त है वहीं उत्तर भारत के स्थान मौसम की अपेक्षा उतने अनुकूल नहीं हैं उसमें भी मुरैना एवं आसपास का क्षेत्र, जहां ग्रीष्मकाल आग उगलता है वहीं शीतऋतु में बर्फवत शीतल प्रतीत होने लगता है।

मुनिराज का यहाँ शीतकाल में प्रवास हुआ था। वे यद्यपि शीत की बाधा बड़ी समता के साथ सहन कर रहे थे किन्तु सहृदय श्रावकों के हृदय में बड़ी उथल-पुथल मची हुई थी। एक श्रावक ने विचार किया। ''आरंभ के सर्वथा त्यागी होने से मुनिराज शीत की बाधा दूर करने के लिए कोई उपाय नहीं करेंगे किन्तु हमारा तो ऐसा त्याग नहीं है।''

''क्या किया जाए?'' उस श्रावक ने दूसरे बुद्धिमान से पूछा।

''हम कर भी क्या सकते हैं?'' उसके समक्ष बुद्धिमान ने प्रतिप्रश्न रख दिया।

''हम दो-दो, तीन-तीन, रजाईयों में लिपटे रहें और धागा मात्र भी वस्त्र को स्वीकार न करने वाले इन तपोधन को हम जमा देने वाली ठंड

सहन करने के लिए छोड़ देवें।'' वह थोड़ा तेज आवाज में बोला।

''मुनिराजों के शीतादि परिषह तो सदाकाल होते हैं। इससे उनके कर्मों की निर्जरा भी तो होती है।''

उस ज्ञानी के तर्कों से वह श्रावक बड़ा आहत हुआ। उसने विचार किया। ''इसने यद्यपि बहुत शास्त्रों को पढ़ा है किन्तु यह बड़ा शुष्क हृदय, श्रद्धा विहीन व्यक्ति है। इससे तर्क-वितर्क करना व्यर्थ है।'' वह बहुत मीठे शब्दों में बोला '' पंडितजी आपने आज हमारी आँखें खोल दी हैं। हमारी उत्कृष्ट भावना है कि आपको इसी पर्याय में मुनिपद की प्राप्ति हो।''

पंडित उसका आक्षेप समझ चुका था। वह उसकी श्रद्धा से अभिभूत तो था किन्तु कथंचित् उसके हृदय में मुनियों के प्रति अभी वैसी श्रद्धा जागृत नहीं हुई थी अत: वह अब इस विषय पर कोई संवाद नहीं करना चाहता था।

''महाराज शाम को जब देववंदना करने मंदिरजी जाते हैं, उस समय वसतिका को गर्म कर दिया जाए तो?''

''क्या यह उचित होगा?'' उस श्रावक के दूसरे मन ने कहा।

''एक ज्ञानी गया अब तू दूसरा आ गया।''

''होम करें हाथ जलने वाला काम न हो जाए।''

''मतलब?''

''ऐसा करने से मुनिराज उस कक्ष में विश्राम न करें तब? दूसरा कक्ष तो इससे भी अधिक ठंडा है।''

''हम ऐसा नहीं होने देंगे। महाराज इसी कक्ष में प्रवास करेंगे।'' तीव्र भक्ति और सघन आत्म-विश्वास से ओतप्रोत उस श्रावक ने एक अँगीठी जलाकर तखत के नीचे रख दी और दरवाजे, खिड़की झरोखे इत्यादि अच्छी तरह से बंद कर दिए। महाराज जी लगभग एक घंटे बाद कक्ष में आएँगे, उसके पूर्व ही मैं अंगीठी हटा दूंगा। ऐसा सोचकर श्रावक अंथऊ करने घर गया किन्तु घर में कोई ऐसी परिस्थिति निर्मित हो गई कि उसमें व्यस्त होने के कारण, वह कक्ष से अंगीठी उठाना भूल गया। मुनिराज प्रतिदिन की तुलना में आज वसतिका शीघ्र पहुँच गए। श्रावक ने बड़ी बुद्धिमत्ता के साथ अंगीठी

आड़ में रखी हुई थी एवं अभी कक्ष कुछ विशेष गर्म नहीं हुआ था अत: मुनिराज का उस ओर ध्यान नहीं गया। वे आवर्त करके सामायिक में लीन हो गए। कुछ समय के उपरांत अंगीठी का धुंआ बढ़ने लगा। धुंए के प्रभाव से मुनिराज को घुटन होने लगी किन्तु वे समता रूपी रसास्वादन में तल्लीन हो रहे थे। कुछ अंतराल के उपरांत अंतत: मुनिराज को मूर्च्छा आ गई। मूर्च्छा आते ही उनका एक पांव नीचे लटक कर वहां रखी अँगीठी में जा पड़ा। मूर्च्छा का काम हो चुका था, इसलिए वह चली भी गई। अब तक शरीर निढाल हो चुका था अत: पाँव को उठाने की सामर्थ्य उसमें नहीं रही किन्तु कण्ठ से रहा नहीं गया। अनायास ही अरिहंता, सीमंधरा निकलने लगा। कण्ठ को सक्रिय देख पांवों ने भी कुछ करने की ठानी। अग्नि से झुलसे पांवों से रक्त की धारा बह निकली, जिससे अंतत: अग्नि तृप्त हो गई। अत: आगे की जिम्मेदारी अपनी सखी वेदना को देकर मूर्च्छा की भाँति वह भी प्रस्थान कर गई।

वेदना अपने प्रभाव में थी किन्तु वे महामुनि द्वादश अनुप्रेक्षाओं रूपी पवित्र भावनाओं की शरण में पहुँच चुके थे। इस महाभयानक निशा के उपरांत प्रभात भी हुआ। दर्शनार्थी इस दर्दनाक दृश्य को देखकर विचलित हो उठे। वह अंगीठी रखने वाला श्रावक भी आया तो मुनिराज की इस अवस्था को देखकर आकुल-व्याकुल हो गया।

''धिक्-धिक्'' आत्मग्लानि से भरे हुए उस श्रावक के अंत:करण में अनेक विचार उठ रहे थे। ''हे प्रभो! मुझसे यह कैसा अनर्थ हो गया।'' उसके नेत्रों से निरंतर अश्रुओं की धारा बह रही थी। वह बार-बार आत्मालोचना पूर्वक मुनिराज से क्षमा-याचना कर रहा था। इतने में वहां वह पंडित भी आ पहुँचा। ''मैंने, तुम्हें समझाया था न।'' उसके मन में मुनिराज के प्रति कोई संवेदना जागृत नहीं हुई थी अपितु वह धिक्कार भाव से भरकर बोल रहा था। ''मुनि-चर्या में दोष लगाया वह तो अलग रहा, अब इस मुनि उपसर्ग के महादोष से तुम्हें कौन बचायेगा।''

''हाँ मुझसे बहुत बड़ा पाप हुआ है, उसके फल से मुझे नरकों में भी

जाना पड़े तो कम है किन्तु मुनिराज को शीघ्र स्वास्थ्य लाभ हो जाए, बस इतना ही चाहता हूँ।''

मुनिराज के समक्ष अंगीठी रखने वाला अपराधी की भाँति खड़ा हुआ था किन्तु मुनिराज समता रूपी दिव्य-रसायन के लेप से अपने परिणामों को स्थिर रखे हुए थे। वे बोले ''तुमने जो कुछ किया अपनी भक्ति से प्रेरित होकर किया है इसलिए तुम्हें ऐसा कोई बड़ा दोष नहीं लगने वाला। मुनि भक्ति को हृदय में धारण करते हुए भी आगम का अवलंबन लेते हुए सदैव श्रावकोचित कार्य करते रहना।''

पंडित की पैनी नजर मुनिराज की एक-एक गतिविधि पर थी। मुनिराज के पूरे प्रवास में वह एक-दो बार ही आया होगा, वह भी क्षणभर के लिए किन्तु अब तो वह भोजनमात्र के लिए ही घर जाता था। उसने समाज को परामर्श दिया ''ग्वालियर में अच्छा चिकित्सालय है।''

''ऐसी अवस्था में न तो मुनिराज एक डग चल सकते हैं और न वे चिकित्सालय की सेवा स्वीकार करेंगे।'' श्रावक बोला।

''किन्तु चिकित्सक तो यहाँ आ सकता है न?'' पंडित ने तत्काल उत्तर दिया।

''आंग्ल-चिकित्सक?'' अन्य श्रावकों के मुख से निकल पड़ा।

''इतनी सी बात है! हम उसे धोती-दुपट्टा पहिनवा देंगे। तब वह पक्का वैद्य लगेगा।'' पंडित के चेहरे पर चमक थी।

''किन्तु औषधि तो अशुद्ध देगा?'' श्रावक बोला।

''वह सब बाद की बात है।'' कहकर पंडित ने तर्क-वितर्क को विराम दे दिया।

मुनिराज आहार-चर्या को उठे किन्तु पैरों ने साथ नहीं दिया अत: उन्होंने एकाध अंजुलि जलमात्र लेकर आहार का त्याग कर दिया। एक दिन के लिए नहीं, अवशिष्ट इस संपूर्ण जीवन के लिए। वैद्य और चिकित्सकों की भूमिकाएँ प्रारंभ होने के पूर्व ही समाप्त हो गईं। अनंतकीर्ति मुनिराज, आराधनाओं का चिंतन करते हुए, अनंत सुख-स्वरूपी आत्मा में लीन हो

गए। देह और अधिक संकट उत्पन्न करे उसके पूर्व ही देही ने इस देह का त्यागकर देवत्व को प्राप्त कर लिया।

संघ के साधुओं ने जब इस घटनाक्रम को सुना तो उन्होंने अनंतकीर्ति मुनिराज की समता को बारंबार नमोऽस्तु किया तथा उनके नेत्रों में आचार्य महाराज के ऊपर हुए उपसर्गों की शृंखला झूलने लगी। सर्पकृत बाधा हो या चींटी अथवा केकड़ा द्वारा किया गया उपसर्ग, महाराज इन विपरीत परिस्थितियों में अडिग, अविचल बने रहे। उपसर्ग एवं परिषह साधुओं के जीवन की अपरिहार्य घटने वाली घटनाएँ हैं। निकट भविष्य के उपसर्ग से अनभिज्ञ, आचार्य-संघ, शास्त्रीय परिषद् का उत्सव पूर्ण कर मुरैना से राजाखेड़ा पहुँचा। दिगम्बर मुद्रा के अवलोकन मात्र से जहाँ सिंह एवं सर्प जैसे हिंसक जीव भी क्रूरता का त्याग कर शांतचित्त हो जाते हैं, जैसा कि आचार्य महाराज के जीवन की घटनाओं से स्पष्ट भी है वहीं राजाखेड़ा के कुछ धर्म-द्वेषी लोगों का मन कषाय से भर गया।

''चार दिन हो चुके हैं, क्या हम हाथ पर हाथ धरे बैठे रहेंगे?'' एक व्यक्ति ने अपने प्रतिनिधि छिद्‌दी से कहा। ऐसा लगता था कि छिद्‌दी की आत्मा जन्मों से दिगम्बर साधुओं से घृणा करती आ रही थी। और अब जब सामर्थ्य एवं अवसर मिला है तो वह उसे छोड़ना नहीं चाहता था। ऐसे में जब अन्य जनों से प्रेरणा भी मिल जाए तब तो कहना ही क्या।

''कल का दिन, उनका अंतिम दिन होगा।'' वह अभिमानपूर्वक अत्यंत कलुषित भाव से बोला।

समूह में भी दुष्प्रेरणा बड़ी। एक ने पूछा ''हम क्या करेंगे?''

''आक्रमण।'' छिद्‌दी ने एक सैन्य कमांडर की तरह कहा।

''कब, कैसे?'' समूह से आवाज आई।''

''कल जब वे मध्यान्ह के समय प्रांगण में ध्यान कर रहे होंगे।''

''हाँ ये बढ़िया योजना है, उस समय उनके भक्तों की भीड़ भी नहीं होती।'' भीड़ में से एक ने अनुमोदना की।

आहारचर्या के उपरांत प्रतिदिन की भाँति साधक आज भी धर्मशाला के बाहर स्थित चबूतरे पर सामायिक हेतु बैठने की तैयारी कर ही रहे थे कि उसी समय महाराज की दृष्टि आकाश में छाए काले बादलों की ओर गई। ''अहो! ये जलधर मेघ नहीं है।'' महाराज ने अपनी विशुद्धि के प्रभाव से उत्पन्न निमित्त ज्ञान से जान लिया कि ''ये किसी निकट भयानक उपसर्ग की सूचक बदलियाँ हैं।''

यदि आचार्य महाराज को अकेले ही उस स्थान पर सामायिक करनी होती तो वे निर्भय महामना निश्चित ही वहाँ बैठे होते किन्तु संपूर्ण संघ को उपसर्ग से सुरक्षित रखने की पवित्र भावना से प्रेरित हो उन्होंने आदेश दिया। ''आज सभी साधक वसतिका के अंदर ही सामायिक करें।''

संघ सामायिक में लीन हो चुका था अत: परिसर में शांति बनी रहे इस भावना से श्रावक जन वहाँ से विदा ले चुके थे। उस समय अपनी पूर्व योजनानुसार छिद्दी गुंडों को लेकर वहाँ आ धमका। सभी के हाथों में धारधार हथियार थे।

''सरकार यहां का सन्नाटा देखकर लग रहा है कि उन्हें हमारी योजना की जानकारी लग गई थी इसलिए डरकर अन्यत्र चले गए हैं।'' एक ने कहा।

''इनके भक्त तो बड़ा गुणगान करते थे कि ये शेरों से भी भयभीत नहीं होते, ये नरसिंह हैं और अब कहीं दुबककर बैठ गए हैं।'' छिद्दी ने समर्थक की बात की पुष्टि की।

''तो क्या हम वापस लौटें? उनमें से किसी एक ने कटाक्ष की शैली में कहा।

''हम समाज को क्या मुंह दिखायेंगे।'' एक अन्य ने अपनी कुण्ठा व्यक्त की।

''नहीं।'' छिद्दी ने जोर से चिल्लाते हुए, सामने से आते एक श्रावक पर प्रहार किया।

तब तक 10-20 अन्य श्रावक जो यहां-वहां थे वे भी आ गए। नि:शस्त्र उन थोड़े से मुनिभक्तों ने उन सशस्त्र गुण्डों से भयातीत होकर सामना किया।

गुरुभक्तों के साहस को देखकर गुण्डे भयाक्रांत हो घबराने लगे तो छिद्दी ने बड़ी संख्या में अन्य गुण्डों को बुला लिया। कुछ और श्रावक भी आ चुके थे किन्तु गुण्डों की तुलना में वे नगण्य ही थे। किसी की उंगली कट गई थी, तो किसी का पूरा का पूरा हाथ। जगह-जगह चोटों से क्षत-विक्षत, खून से लथपथ वे मुनिभक्त अपने प्राणों की चिंता किए बिना उन आताताइयों से डटकर मुकाबला कर रहे थे। श्रावकों की मुनिभक्ति एवं आचार्य महाराज के आभामंडल का ही ये प्रभाव था कि उस खूनी संघर्ष में न ही किसी मुनिभक्त के प्राणों की हानि हुई थी और न ही साधुओं के प्राणों से होली खेलने के लिए लालायित वे दुर्बुद्धि संघ तक पहुँच सके थे। सूचना मिलते ही रियासत की सेना वहां पहुँच गई। छिद्दी पकड़ लिया गया एवं उसके साथी पलभर में ही तितर-बितर हो गए। आचार्य महाराज एवं संघ के साधुओं की साम्य-शांत मुद्रा देखकर सैन्य अधिकारियों का छिद्दी एवं उसके सहायक उपद्रवकारियों पर भारी क्रोध जागृत हुआ। उन सबको हिरासत में ले लिया गया।

''छिद्दी ठीक तो है? '' आहारचर्या पर निकलने के पूर्व महाराज ने जिस ढंग से पूछा तो लगा कि यह उपसर्गकर्ता नहीं महाराज का कोई अत्यंत प्रिय व्यक्ति है।

सभी मौन हो गए।

''तुम लोग कुछ बोलते क्यों नहीं।''

''महाराज, वह जहाँ है ठीक है।'' घबराते हुए एक स्थानीय श्रावक ने कहा।

''जहाँ है से तात्पर्य?'' उसे महाराज के वचन में थोड़ी कठोरता लगी।

''ऐसे दुष्टों के लिए जेल से अधिक अच्छा स्थान और क्या हो सकता है?'' उसने कुछ गर्व से कहा।

''मैं उससे तत्काल मिलना चाहता हूँ।''

''परंतु महाराज, यह कैसे संभव है?'' अध्यक्ष ने विनम्रतापूर्वक कहा।

''वह सब मैं कुछ नहीं जानता। उससे मिलने के उपरांत ही मैं चर्या कर सकूंगा।'' महाराज ने अपना निर्णय सुना दिया।

सबने अपने-अपने स्तर पर महाराज के समक्ष वस्तुस्थिति रखकर आहार चर्या पर निकलने के लिए अनुनय-विनय की किन्तु महाराज का

निर्णय अटल जान उन्होंने सैन्य एवं पुलिस अधिकारियों को इस तथ्य की सूचना दी। अनेक अधिकारी दौड़े-दौड़े चले आए।

हिन्दू सोच रहे थे कि ''क्या ये कलयुग के राम हैं? तो ईसाई अधिकारी के मन में ऐसी श्रद्धा उमड़ पड़ी कि उन्हें महाराज में यीशु दिखने लगे। मुस्लिमों को लगा कि जरूर ये शख्स पैगम्बर साहब के द्वारा भेजा गया फरिश्ता है। पुलिस अधिकारियों ने यह सोचा कि ''हाँ आप सिद्ध योगी हैं अत: आपकी भावना का सम्मान करते हुए हम उस आतातायी को आपश्री के समक्ष प्रस्तुत कर देंगे तथा आहार ग्रहण के उपरांत पुन: उस दुष्ट को कारागृह में डाल देंगे।''

छिद्‌दी बहुत डरा हुआ था, वह घबरा भी रहा था। पुलिस की लाठियाँ ही ठीक थीं। जाने ये सामने बुलाकर कौन सा तंत्र फेंक दें। पुलिस की कैद से तो मैं कुछ उपाय करके छूट भी जाता किन्तु इनके माध्यम से कहीं मेरा पूरा जीवन ही नष्ट न हो जाये। हे भगवान मुझे बचा लो।''

अपने इष्ट देवता का स्मरण करते हुए छिद्‌दी ने आँखें खोली तो वहाँ का दृश्य देखकर वह दंग रह गया। उसे ऐसा लगा मानो उसके द्वारा किए गए किसी महान कार्य के बदले उसका बड़ा भारी सम्मान किया जाने वाला हो। आचार्य शांतिसागर महाराज ससंघ विराजमान थे। महाराज ने उसे प्रेमाभिसिंचित दृष्टि से वात्सल्यमयी आशीर्वाद प्रदान किया तो छिद्‌दी का संपूर्ण शरीर रोमाञ्चित हो उठा। ''यह अब गुरु की शरण में आ गया है, इसे बंधन मुक्त कर दो।'' महाराज के ऐसे स्नेहमयी वचनों को सुनकर गदगद चित्त हो छिद्‌दी, महाराज के चरणों में साष्टांग दण्डवत हो गया। उसके नेत्रों से बहुत समय तक आँसुओं की अविरल धारा बहती रही। वह बार-बार क्षमा माँगने का प्रयत्न कर रहा था किन्तु मन की कलुषता नष्ट होने से ही मानो कठोर शब्दों के गुण्डे पलायन कर चुके हों। दुर्लभ सद्‌गुणों की भाँति सरस एवं प्रीतिकर शब्दों को जिह्वा तक आने में जितना विलंब हो रहा था, उसकी आत्मा में उतनी स्वच्छता बढ़ती जा रही थी।

फिर छिद्‌दी ने जैन मुनि से इतना द्वेष होने का कारण इस प्रकार बतलाया। ''महाराज मैं बचपन में बड़ा आलसी था। एक बार एक जैन साधु

हमारे ननिहाल आए। मैंने देखा कि वे कभी स्नान नहीं करते हैं। ठंड का समय था, मैंने आलस के कारण नहाना बंद प्राय: कर दिया था।''

सभी लोग छिद्दी के वृत्तांत को ध्यान लगाकर सुन रहे थे।

छिद्दी आगे बोला ''महाराज हम लोग ब्राह्मणवंशी थे, उस पर हमारे पिताजी पुजारी थे। मेरे नहीं नहाने की बात पूरे गांव में फैल गई। जिससे पिताजी को मिलने वाला काम एवं दान-दक्षिणा बहुत कम हो गई।''

महाराज की मुद्रा सदा की भाँति प्रशांत बनी हुई थी। पर अनेक लोगों के मन में प्रश्न उठ रहा था कि ''फिर क्या हुआ?''

मानो इस उत्तर के समाधान स्वरूप ही छिद्दी बोला ''महाराज पिताजी ने बहुत समझाया किन्तु मैंने अपने समर्थन में जैन मुनियों के अस्नान को ढाल बना लिया। तब महाराज.....।'' छिद्दी का गला भर गया।

संघपति की उत्सुकता भी चरम पर पहुँच चुकी थी।

छिद्दी स्वयं को सँभालते हुए बोला। ''फिर हमारे पिताजी एवं उनके कुछ मित्रों ने मुझे जैन मुनि के विरोध में भड़काना प्रारंभ कर दिया। उन्होंने मुझसे आप पवित्रात्माओं के बारे में ऐसी-ऐसी अशुभ बातें कहीं जो एक सामान्य मनुष्य के लिए भी निंदास्पद हैं किन्तु मैं दुर्बुद्धि उनकी बातों में आकर भटक गया। महाराज वह द्वेष की छोटी सी चिंगारी ज्वालामुखी बनकर फटेगी, मैं स्वयं भी न समझ सका।'' ऐसा कहते-कहते छिद्दी पुन: बहुत भावुक हो गया। अश्रुओं के वेग को रोकने में असमर्थ उसने अपना मस्तक महाराज के चरणों में रख दिया। महाराज ने भी उसके ऊपर पिच्छी रखते हुए उसके मस्तक को ऐसे ऊपर उठाया जैसे मानो दु:खमय संसार सागर में डूबते हुए को ही उठा लिया हो।

इस दृश्य के साथी बने पुलिसवाले, दर्शक एवं संघ के सदस्य भी आचार्य महाराज की क्षमादृष्टि और उनके प्रभाव से ऐसे दुष्ट आततायी के जीवन में हुए सकारात्मक परिवर्तन को देखकर उनके चरणों में बार-बार मस्तक झुका रहे थे। कुछ विलंब से सही किन्तु फिर आचार्य संघ की

आहार-चर्या निर्विघ्न रूप से सम्पन्न हुई। साथ ही साथ छिद्दी एवं उसके अनेक सहयोगियों का जीवन भी विलंब से ही सही किन्तु महाराज के पुण्य-प्रभाव से पापमुक्त हो गया।

राजाखेड़ा से विहार करते हुए आचार्य महाराज पं. भूधरदास जी की निवासस्थली आगरा होते हुए, चातुर्मास हेतु मथुरा पहुँच गए। इस नगरी को अंतिम अनुबद्ध केवली जंबूस्वामी की निर्वाणस्थली होने का तो गौरव प्राप्त है ही साथ ही यह वही स्थान है जहां वज्रकुमार मुनिराज के माध्यम से जैन धर्म की अभूतपूर्व प्रभावना हुई थी, जिसके साक्ष्य खुदाई से प्राप्त एक स्तूप में भी अंकित हैं। अमूढ़दृष्टि अंग में प्रसिद्ध रेवती रानी भी इसी मथुरा नगरी की हैं। इन सब महत्व के प्रभाव से आज भी मथुरा की सीमा में प्रवेश करते ही अलौकिकता का अनुभव हो जाता है। जो आचार्य संघ के साधुओं की बढ़ती तपसाधना से स्पष्ट था। नेमिसागर महाराज ने लघु-सिंहनिष्क्रीडित व्रत धारण किया तो दूसरे नेमिसागर जी ने वसन्तउनोदर व्रत का अनुष्ठान किया। अन्य साधुगण भी तपाराधना में तल्लीन हो गए। आचार्य महाराज बहिरंग तपों के साथ अंतरंग तपों की विशेष साधना कर रहे थे।

यहां के स्थानीय एवं प्रबुद्धजन महाराज के उपदेशों एवं चर्चा से बड़ा धर्मलाभ ले रहे थे तो बाहर से खूब अतिथिगण आते रहते थे। एक बार इंदौर से सेठ हुकुमचंद जी पधारे। महाराज का ब्रह्मचर्य व्रत पर उपदेश हो रहा था।

''शास्त्रों का सार है कि अब्रह्म के द्वारा जीव न केवल कलुषित चित्त हो भाव हिंसा करता हुआ परिणामों की निर्मलता का घात करता है अपितु प्रचुर मात्रा में द्रव्य हिंसा भी करता है।''

''महाराज द्रव्य हिंसा कैसे ?'' सेठजी ने दोनों हाथ जोड़कर विनयपूर्वक पूछा।

''आचार्यों ने सचेत करते हुए कहा है कि एक बार के अब्रह्म से अगणित त्रस जीवों का घात हो जाता है।'' महाराज ने आगम का आधार लेकर जब सूक्ष्म, गहन एवं तार्किक व्याख्या की तो सेठजी काँप उठे।

आचार्य महाराज ने आगे यह भी बतलाया कि मनुष्यों की संतति कितनी होती है 4-6 और अधिकतम पर जाएँ तो 10-12, किन्तु बड़ा खेद है कि उनके निमित्त से अनेकानेक संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त मनुष्य जन्म लेकर परिपूर्ण जीवन पाए बिना ही मरण को प्राप्त हो जाते हैं।''

''अच्छा!'' आश्चर्य से भरे हुए सेठजी के मुख से अनायास निकल गया।

''लब्ध-अपर्याप्तक मनुष्यों की तो कोई गणना ही नहीं। वह ऐसे असंख्यात मनुष्यों की हिंसा का भागीदार भी बन जाता है।''

सेठजी बड़े गंभीर हो गए।

''वेगवती गाड़ी को अचानक, बलात् रोकने से दुर्घटना की स्थिति बन सकती है किन्तु पुरानी जर्जर हो रही गाड़ी को अनावश्यक चलाते रहने से जीवन कठिनाई में पड़े बिना नहीं रहेगा।'' महाराज सेठजी की भावदशा समझ रहे थे अत: उन्हें प्रेरित करने के उद्देश्य से आगे बोले ''पूर्व में गेंदनमल जी और दाड़िमचन्द ने भी जीवनभर के लिए ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया है।''

सेठजी विशुद्ध परिणामी थे ही, वे महाराज के उपदेश का सार भी समझ गए। उन्होंने संघपति की हृदय से प्रशंसा करते हुए, महाराज के समक्ष निवेदन किया ''महाराज! आगामी भवों तक के लिए ब्रह्मचर्य व्रत मिले।''

महाराज के मुखमंडल पर मंद हास्य बिखर गया।

सेठजी अपना वाक्य पूरा कर रहे थे ''लौकान्तिकों में जाकर अगली मनुष्य पर्याय में भी ब्रह्मचर्य व्रत पालन करुं, ऐसा आशीर्वाद प्रदान कीजिए।''

आचार्य महाराज के आनन पर पुन: निष्काम मंद-मुस्कान फैल गई।

❁❁❁

5

इस तरह महती प्रभावना करते हुए आचार्य संघ शनैः-शनैः राजधानी दिल्ली की ओर बढ़ने लगा। दिल्ली न केवल भारत का सबसे अधिक जनसंख्या वाला नगर था अपितु इसे दिलवालों की नगरी भी कहा जाता है। अपने नाम एवं प्रसिद्धि के अनुरूप दिल्ली वालों ने आचार्य-संघ की भव्यातिभव्य आगवानी की। स्थान-स्थान पर जैन-जैनेतरों की लाखों की भीड़ आपके दर्शनों से कृतकृत्य हो रही थी। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि दिल्ली ने कभी दिगम्बर मुद्रा नहीं देखी है। सभी के लिए प्रारंभ में आचार्य महाराज का संघ कौतुक एवं आश्चर्य का विषय होता किन्तु फिर वह श्रद्धा और भक्ति में रूपांतरित हो जाता। भारत में यद्यपि अंग्रेजों का शासन था तथा वे किसी प्रभावक संत को अपने मार्ग की बाधा मानते थे। जाने कब कौन संत नेता बन जाए, जाने कब किस नेता के निमित्त क्रांति खड़ी हो जाए? महाराज तो महान प्रभावक संत भी थे और दिगम्बर मुद्रा के धारक भी अतः अंग्रेजों की उनसे स्वाभाविक अप्रीति ही होनी चाहिए थी। व्यक्तिगत रूप से तो अनेक अँग्रेज अधिकारियों एवं अन्य मतियों की महाराज पर अनन्य श्रद्धा थी किन्तु **समुदाय की आंधी में श्रद्धा, सत्य, धर्म, नीति सब नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं।**

महाराज का विहार दिल्ली की गलियों और चौराहों पर हो रहा था। सरकार चाहकर भी कोई कठोर कदम नहीं उठा पा रही थी। अनेक मंत्रणाओं का दौर चला, ब्रिटिश अधिकारी न तो लिखित आदेश-पत्र जारी करना चाहते थे और न ही वे स्वयं सामने उपस्थित होकर कोई संकट मोल लेना चाहते थे अतः वे अधीनस्थ भारतीय अधिकारी एवं कर्मचारियों पर निरंतर दबाव बना रहे थे। भारतीयों की साधुओं पर श्रद्धा तो धर्म की भाँति सनातन रही है वे महाराज के साथ अभद्रता कैसे करते किन्तु एक दिन बड़े अधिकारियों

के द्वारा यह कहा गया कि ''आज दिगम्बर साधु किसी भी सार्वजनिक स्थान से नहीं निकलना चाहिए अन्यथा कार्यक्षेत्र पर उपस्थित मुलाजिम को अपनी नौकरी से हाथ धोना पड़ेगा, दण्ड का भागी होगा वह अलग।''

संयोग था कि महाराज आज दिल्ली के सबसे प्रसिद्ध एवं व्यस्ततम स्थान लाल किले के सामने से गुजर रहे थे। चौराहे पर जैसे ही महाराज पहुँचे ट्रैफिक पुलिसवाले की सांसें फूलने लगीं।

''यदि मैं इन्हें यहां से निकलने देता हूँ तो नि:संदेह मेरे जीवन में बड़ा संकट आ जायेगा।''

''अच्छा?'' उसकी छाया ने कटाक्ष किया।

''हाँ...।'' वह क्षण एक रुका फिर बोला ''अधिकारी के कुपित होने पर अनर्थ होने से कौन रोक सकेगा।''

''और यदि बाधा पैदा करने से साधु क्रोधित हो उठे तब? धर्म कथाएँ तो तुम बहुत सुनते हो, साधुओं के प्रतिकूल होने पर उनके क्रुद्ध होने की कथाएँ तुमने नहीं सुनी क्या?''

''एक नहीं ऐसे अनेक पुराण प्रसंग सुने हैं मैंने।''

''तब फिर?''

''किन्तु ये दिगम्बर साधु हैं।''

उसका वाक्य पूरा भी न हुआ था, छाया ने झट से प्रतिक्रिया दी ''तो?''

''ये स्वयं के जीवन को समाप्त करने वाले, शत्रु पर भी दयादृष्टि रखते हैं। इनके जीवन में क्रोधादि विकारों का वही स्थान है जो संपत्ति का दरिद्र के जीवन में। ये जिस अनुग्रह दृष्टि से भक्त को देखते हैं उसी दृष्टि से वे उपसर्गकर्ता को भी देखते हैं।''

''तो फिर ऐसे महान व्यक्तित्व के प्रतिकूल जाने की बात तुम्हें सोचनी भी नहीं चाहिए।''

''किन्तु यहां तुम्हारे जीवन के अस्तित्व का प्रसंग है।'' प्रतिछाया ने तपाक से उसके प्रति संवेदना व्यक्त की।

''तो इसके मायने, अर्थ के लिए परमार्थ की बलि? यह तो स्वार्थ की पराकाष्ठा हुई।'' छाया ने भी उसी ध्वनि में कहा।

''परमार्थ का अर्थ क्या है?'' प्रतिछाया ने ही उत्तर दिया ''जो स्व के अर्थ के लिए हो। इसे तुम अपनी भाषा में स्वार्थ कहो तो कहो।''

''आप यहां से आगे नहीं जा सकते।'' पुलिस वाले के कंठ से नि:सृत भाव जिव्हा तक आने ही वाले हैं, ऐसा मानकर छाया ने दृढ़तापूर्वक कहा। ''ऐसा अनिष्ट मत करो।''

''जो जीवन के लिए इष्ट है वही तुम्हारे द्वारा करने योग्य है।'' प्रतिछाया भी पीछे नहीं हटी।

छाया सचेत थी मन के स्तर पर और कण्ठ एवं वाणी के स्तर पर भी किन्तु वह शरीर को विस्मृत कर बैठी। प्रतिछाया ने हाथों को संकेत किया। हाथों ने रुकने का संकेत कर दिया। आचार्य महाराज वहीं ठहर गए। पीछे आने वालों की कतार लगती चली गईं। ट्रैफिक जाम बढ़ता जा रहा था। पुलिस वाला परेशान हो गया स्वयं से और इस नवनिर्मित स्थिति से किन्तु महाराज के चेहरे पर अद्‌भुत शांति थी। वे ध्यानारूढ़ लग रहे थे। उनके लिए अनुकूलताएँ एवं प्रतिकूलताएँ प्रभावित नहीं करती थीं। **यह शाश्वत सत्य है कि जो आत्म निर्भर होते हैं वे परिस्थितियों से संचालित नहीं होते। नई परिस्थिति उनके लिए एक नया अनुभव मात्र होती है।**

उच्च अधिकारियों तक संदेश पहुँचने पर उन्हें महाराज को आगे बढ़ने का आग्रह तो करना ही पड़ा, साथ ही उन्होंने आपस में मंथन कर यह निर्णय किया कि जिन्हें **''संसार एवं मोह के दृढ़ बंधन नहीं बांध सके हममें इतनी सामर्थ्य कैसे हो सकती है कि हम उन्हें रोक सकें।''** समूची दिल्ली में निराबाध विचरण का निवेदन कर सरकार ने अपनी पूर्व में की गई त्रुटि का एक तरह से प्रायश्चित भी किया। उस ट्रैफिक पुलिस वाले को ऐसा आनंद जीवन में पहली बार आया। उसे लगा कि वह न केवल महापाप से मुक्त हो गया बल्कि वह किसी अलौकिक अनुभव से गुजर रहा हो। जीवन के चौराहे पर आचार्य महाराज जैसे दिशा-निर्देशक को पाकर उसके जीवन को सही

दिशा प्राप्त हो गई। महाराज के दिल्ली प्रवास पर वह प्राय: महाराज के पास जाता ही रहता था। एक बार उसके साथ एक बड़े अधिकारी महाराज के पास यूं ही कौतुकवश आए किन्तु महाराज के व्यक्तित्व को देखकर रोमाञ्चित हो उठे। उनके मन में सहज जिज्ञासा उठी ''महाराज, आपने संसार क्यों छोड़ा ? क्या संसार में रहकर शांति प्राप्त नहीं की जा सकती है ?''

''संसार क्या है परिवार और परिग्रह। इनके द्वारा मन एवं आत्मा राग-द्वेषादि विकारों से ग्रसित हो जाता है। जिस प्रकार पवन के प्रकोप से दीपशिखा स्थिर नहीं हो पाती, उसी प्रकार इन कुटुंबादिकों के प्रभाव से मन चंचलता को नहीं छोड़ पाता। मन की शांति में ही आत्मा की शांति है।'' महाराज ने उस अधिकारी की ओर दृष्टि की। उसकी जिज्ञासा एवं रुचि को जानकर वे आगे बोले ''संसार का जाल ऐसा है कि उसमें जाने वाला मोहवश कैदी बन जाता है फिर वह स्वयं के हित का चिंतन भी नहीं कर पाता। एक बात और है कि जब मरण होता है तब संसार के ये समस्त संबंधी एवं सामग्रियाँ यहीं रह जाती हैं, साथ जाते हैं तो मात्र जीव के शुभाशुभ कर्म। ऐसे में आप ही कहें संसार में क्या कुछ सारभूत है ?''

अधिकारी ने सिर हिलाकर ''नहीं।'' का संकेत किया।

''संसार में सुख-शांति की प्राप्ति असंभव है तब उसमें रहने का क्या औचित्य ?

वह अधिकारी महाराज के चरणों में नतमस्तक हो गया। उसे न केवल अपने प्रश्न का संतुष्टिपरक उत्तर मिल गया था बल्कि उसने महाराज के श्रीचरणों के प्रसाद से अपने जीवन को संस्कारित भी कर लिया था। दिल्ली में महाराज के पास नितप्रति बड़े-बड़े जज, डॉक्टर, प्रोफेसर व सरकार के अधिकारी भी आते रहते थे। महाराज यदि अपनी साधना में लीन होते तो संघ के अन्य साधु उनसे सूक्ष्म एवं गहन चर्चा करते। वे भी अपने संदेहों का निवारण पाकर कृतकृत्य हो जाते।

इस तरह दिल्ली में सभी वर्ग के लोग महाराज की मुद्रा एवं उपदेशों से लाभान्वित हो रहे थे। लोगों की भक्ति इतनी बढ़ चुकी थी कि जब महाराज

आहार चर्या पर निकलते तो 70-80 से भी अधिक चौके वाले पड़गाहन करते और जब महाराज धर्मोपदेश करते तो, बड़ी भारी संख्या को देखते हुए लाउड-स्पीकर का भी उपयोग करना पड़ जाता था। इस प्रकार महाराज दिल्ली के विभिन्न क्षेत्रों में अभूतपूर्व प्रभावना करते हुए कुछ समय के लिए हस्तिनापुर अवश्य पहुँचे किन्तु दिल्लीवासियों की आंतरिक भक्ति के प्रभाव से चातुर्मास हेतु पुनः दिल्ली पधार गए। चातुर्मास में महाराज यद्यपि अंतरंग साधना पर अधिक बल दे रहे थे किन्तु सुगंधित पुष्पों के उद्यान से उड़ती हुई सुगंधी सहज ही प्रवाहित हो उठती है। वहां प्रभावना के जो कीर्तिमान स्थापित हुए उसे लाल मंदिर में कीर्तिस्तंभ के रूप में अंकित कर दिया गया।

चातुर्मास समाप्ति के उपरांत आचार्य महाराज ने महावीरजी की ओर विहार किया। अतिशयकारी महावीर प्रभु के बिंब से अतिशय विशुद्धि ग्रहण कर अगले चातुर्मास हेतु आप जयपुर पधारे। बड़े-बड़े विद्वानों के लिए प्रसिद्ध इस नगरी में अभी भी मुनि-चर्या के समीक्षकों की भरमार है। महाराज की दिनचर्या इतनी सधी हुई एवं आगम-सम्मत थी कि परीक्षक महाराज की पाठशाला के विद्यार्थी बन गए किन्तु कर्मों की परीक्षाएँ तो कर्म मुक्त होने तक कभी भी हो सकती हैं। महाराज जिस स्थान पर सामायिक कर रहे थे, वहीं आसपास कुछ जैनेतर बच्चे खेल रहे थे।

''बच्चों यहां शोरगुल नहीं करते, महाराज ध्यान कर रहे हैं।'' एक श्रावक जो अन्य शहर से आया था ने बच्चों को समझाया।

''बस पाँच मिनिट।'' एक बच्चे ने बोला और फिर उनकी टोली पुनः खेल में तल्लीन हो गई।

पांच-पांच करते पच्चीस मिनिट से अधिक हो गए किन्तु बच्चों का शोर बंद होने के स्थान पर कुछ बढ़ ही गया था। अपनी अवहेलना होते देख श्रावक आवेश में आ गया।

''तुम लोगों को समझ नहीं आ रहा कि महाराज के ध्यान में व्यवधान हो रहा है।'' उसने डांटते हुए कहा।

''यदि वे ध्यान ही कर रहे हैं तो फिर उन्हें शोर का व्यवधान कैसे ?'' उनमें से सबसे बड़े बच्चे ने उसी शैली में उत्तर दिया।

महाराज की मुद्रा देखकर ऐसा किञ्चित भी नहीं लग रहा था कि उन्हें बाहर की हलचल विचलित कर रही है। न तो उन्हें बच्चों के शोर ने आकुलित किया था और न ही श्रावक और बच्चों के मध्य की गहमागहमी ने क्षुब्ध किया था। बाह्य वातावरण की ये अवांछित उष्माएँ उनके शीतल मन को किञ्चित भी उष्ण करने में समर्थ नहीं थीं किन्तु यह निर्मित परिस्थिति उस श्रावक की गुरु के प्रति भक्ति अथवा फिर स्व-प्रतिष्ठा की भावना का परिणाम थी।

बच्चे के उत्तर ने श्रावक के अहं पर चोट कर दी। वह क्रोध से तमतमा उठा। उसने बच्चों को दो-चार कठोर शब्द कहे तो बच्चों ने ईंट का जबाब पत्थर से दिया। वाणी की यात्रा अपशब्दों तक पहुँच गई। श्रावक उस समय यह भूल चुका था कि यदि बच्चों के खेलने से महाराज के ध्यान में बाधा पहुँच सकती है तो उसका यह विसंवाद निश्चित ही उचित नहीं है, बच्चे भी पीछे नहीं थे। **बच्चों में प्रौढ़ों की अपेक्षा उर्जा बहुत अधिक होती है यदि उसे सही दिशा मिल जाए तो भव्य निर्माण हो जाता है और यदि वह प्रतिकूल मार्ग पकड़ ले तो विध्वंस की कहानियाँ भी लिख देती है।** श्रावक अनियंत्रित हो चुका था अत: उसने एक बच्चे को थप्पड़ जड़ दिया, फिर क्या था मानो संग्राम छिड़ गया हो। वह स्थान मुख्य धर्मशाला से थोड़ा हटकर था अत: अन्य साधु एवं श्रावक घटना से अनभिज्ञ थे। एक सेवक जो किसी कार्य से उस ओर आया था ने जब यह विसंवाद देखा तो उसे भी महाराज का ख्याल आया। ''महाराज ध्यान में बैठे हैं, उसमें बाधा आ रही होगी।''

उसने भी पूर्व श्रावक की भाँति प्रयास प्रारंभ कर दिया। सेवक ने पहिले उस श्रावक को समझाने का प्रयत्न किया किन्तु वह समझने के स्थान पर भभक उठा। उसने एक प्रयास बच्चों के साथ मधुर संभाषण स्थापित

करने का भी किया किन्तु अब बच्चों ने भी जैसे लड़ने की प्रतिज्ञा कर ली थी। दोनों पक्षों से मिली असफलता के परिणामस्वरूप उसके मन में एक दूसरा ही विचार कौंधा। सेवक ने वहां से रास्ता नापा और सीधे महाराज के पास पहुँचा। उसने कक्ष के दरवाजे, खिड़कियों को बंद कर दिया। फिर भी उसे लगा कि अभी भी झगड़े की आवाज महाराज तक पहुँच रही है अत: उसने कक्ष को मानो सीलबंद कर दिया।

आसपास कहीं आग लगी थी अत: उसका धुंआ कक्ष में भरा हुआ था। कमरा बंद होने से महाराज को घुटन होने लगी। महाराज ने न कोई आवाज़ दी न आवाज की। कुछ ही समय में महाराज मूर्छित हो गए। भव्य जीवों का पुण्य शेष था अत: थोड़े ही समय के पश्चात् बाहर चल रहा झगड़ा शांत हो गया। उस श्रावक को भी मूल बात स्मृत हो आई थी कि ''महाराज के ध्यान में विघ्न न पहुँचे इस भावना के होते हुए भी वह अपने अविवेक से उनके ध्यान में कितना विघ्न उपस्थित कर चुका है।'' वह आत्मग्लानि से भरा हुआ महाराज की ओर भागा। दरवाजे को खोला तो महाराज को उस अवस्था में देख घबरा गया। कुछ ही समय में पूरा संघ, कमेटी एवं अनेक श्रावक उपस्थित हो गए। परिस्थिति का आकलन करने से एवं सेवक के भी आ जाने से सब कुछ स्पष्ट हो गया था जिससे महाराज के उपचार में सरलता हो गई। कुछ समय उपरांत जब महाराज सचेत हुए तो उन्होंने सभी को एक सा आशीर्वाद प्रदान किया। अब तक वहां उन बच्चों का भी आगमन हो चुका था। महाराज की इस महानता ने उनके मन को अंदर तक झकझोर दिया। उन्होंने सदाकाल के लिए सप्त व्यसन का त्यागकर अहिंसा व्रत को धारण कर लिया। सेवक जो पहले अर्थ के लिए सेवा करता था अब वह हृदय से सेवाकार्य में संलग्न हो गया। वह श्रावक तो अनेक दिनों तक स्वयं की आलोचना करता रहा। अपराधबोध से ग्रस्त हो उसके मन में आत्मघात तक का विचार आ गया किन्तु महाराज रूपी दिव्य पारसमणि के सामीप्य से तो जंग लगा लोहा भी स्वर्ण बन जाता है तब तो वह श्रावक दीर्घकाल से महाराज का परम भक्त था। महाराज के कुछ दिनों के सदुपदेश के प्रभाव से जब वह

अवसाद से बाहर निकला तो उसने अपने जीवन को संयम से जोड़ लिया। उसने पंचम प्रतिमा के व्रतों को अंगीकार कर लिया। वह उस समय मजिस्ट्रेट के पद पर आसीन था किन्तु गुरुकृपा से उसने अपने जीवन को लोकोत्तर बना लिया। उनकी धर्मपत्नी ने भी संयम धारणकर पति का अनुकरण किया।

अनुकूल-प्रतिकूल संयोग साधुओं के जीवन में भी बनते हैं और संसारी जीवों के जीवन में भी। जहाँ संसारी प्राणी मोहोदयवश उनमें इष्टानिष्ट बुद्धि कर हर्ष विषाद करता है वहीं वीतरागी संत जिस निरपेक्ष दृष्टि से साता से उत्पन्न सुविधाओं को देखते हैं उसी दृष्टि से वे असातोद्भवज परिस्थितियों को। आचार्य शांतिसागर महाराज, संसार में रहते हुए भी संसार से बहुत ऊपर उठ चुके थे। उनकी जीवन रूपी पुस्तक को पढ़कर वीतरागता की परिभाषा सरलता से समझी जा सकती थी। कहते हैं महाराज दक्षिण से उत्तर की यात्रा पर थे किन्तु सही अर्थों में वे ध्रुवधाम की यात्रा पर थे। कहीं चातुर्मास में प्रवास तो फिर कहीं विहार यह सब तो औपचारिक था। उनकी अंतरंग यात्रा अविरल-अविराम चल रही थी।

महाराज ब्यावर, उदयपुर, गोरल में चातुर्मासिक प्रवास करते हुए प्रतापगढ़ पहुँचे। यहां पर चातुर्मास स्थापना के कुछ काल उपरांत ही सत्ता में पड़े कर्मों ने अपनी सामर्थ्य दिखलानी प्रारंभ कर दी। महाराज की देह में दिन प्रतिदिन कुछ परिवर्तन सा दिख रहा था। उन्हें खुजली उठती थी और जलन भी होती थी। एक के बाद एक अनेक वैद्य आ चुके थे किन्तु व्याधि कम नहीं हो पा रही थी।

''मेरे पास एक निदान है।'' वैद्यों की मंत्रणा के बीच एक व्यक्ति ने निवेदन किया।

''आपका परिचय?'' एक वैद्य ने पूछा।

उसने अपना एवं अपने नगर का नाम बतला दिया।

वैद्यों ने सोचा ये उस नगर से आए हुए वैद्य होंगे अत: ''यदि इनके माध्यम से महाराज को लाभ मिलता है तो अच्छी ही बात है।''

''कहिए।'' बारामती के वैद्य शांतिनाथ भुजबली ने उपचार पूछा।

उसने उपचार बतलाया तो सभी वैद्य आश्चर्य चकित हुए, फिर भी सारे प्रयोग असफल हो चुके थे अत: भुजबली जी के परामर्श पर सबने चाहे-अनचाहे उसको अनुमति दे दी।

उस व्यक्ति ने महाराज पर वाष्प का प्रयोग किया। वाष्प की मात्रा एवं वेग अधिक था। महाराज को ऐसा अनुभव हुआ कि जैसे उन्हें आग की भट्टी में रख दिया हो किन्तु उन्होंने न उपचार के लिए कुछ कहा और न इस भयानक स्थिति में कोई प्रतिक्रिया दी। महाराज का मन स्थिर था अत: वह भले ही आकुल-व्याकुल न हुआ हो किन्तु शरीर के भी अपने गुणधर्म होते हैं वह उस वाष्प-वेग को सहन नहीं कर पाया। महाराज की आँखें फिर गईं, उनकी जीभ बाहर निकल आई और अन्तत: वे क्रियाशून्य हो गए।

''महाराज...।'' उस व्यक्ति के मुख से चीख निकली। सारे वैद्य आ गए। जो समझदार थे वे महाराज का नाड़ी परीक्षण कर उपचार में लग गए किन्तु उनमें से एक वैद्य को क्रोध आ गया।

''तुम वैद्य हो या किसी के द्वारा भेजे गए हत्यारे?''

''क्षमा, क्षमा...।'' ये दो शब्द ही उसके मुख से बड़ी मुश्किल से निकल पाए थे। वह बहुत घबरा गया था। वह वैद्य भले ही नहीं था किन्तु वह ऐसा प्रयोग सफलतापूर्वक अनेक लोगों पर कर चुका था, जिसमें वह स्वयं भी शामिल था। महाराज का जीवन तो उसे अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय था अत: वह उस व्यक्ति के कटाक्ष से नहीं बल्कि महाराज की वैसी अवस्था से बहुत दु:खी हो रहा था।

उस वैद्य ने इस व्यक्ति को बहुत खरी-खोटी सुनाते हुए लोगों से कहा ''इसे पकड़कर पुलिस के सुपुर्द कर दो।'' दूसरी ओर बाकी वैद्य महाराज के उपचार में जुट गए थे। कुछ समय के बाह्योपचार से महाराज जब ध्यान से बाहर आए हुए से लगे तो सभी ने चैन की सांस ली।

''भाप देने वाले वैद्य कहां हैं?'' महाराज के मुख से पहिला वाक्य निकला।

जिस वैद्य ने उसे पकड़वा रखा था, उसे अपना कार्य युक्तिसंगत लगा। ''अब महाराज की फटकार लगेगी तो समझ आयेगा कि झोलाछाप डॉक्टर

बनने की गलती उसे नहीं करनी चाहिए थी।''

''आपने इस देह पर बड़ा उपकार किया।''

''महाराज क्या कह रहे हैं?'' सभी आश्चर्य से भर गए।

''महाराज, मुझसे बड़ा अनर्थ हो गया, मुझे क्षमा प्रदान कीजिए।'' कहता हुआ, वाष्प देने वाला व्यक्ति महाराज के चरणों में गिर पड़ा।

महाराज सस्नेह उससे बोले। ''बहुत समय से इसमें रक्त-संबंधी विकृतियाँ चल रही थीं। वाष्पोचार से रक्त का शुद्धीकरण हो गया, जिससे चर्मरोग में तो तत्कालिक लाभ समझ आने ही लगा है, इसने अन्य अनेक प्रकार की व्याधियों के द्वार को भी लंबे समय तक के लिए बंद कर दिया है, इसलिए तुम क्षमा क्यों मांगते हो।''

''महाराज, आपको मेरे उपचार से बड़ा कष्ट हुआ, मूर्च्छा जैसी स्थिति भी निर्मित हो गई थी।'' वह अत्यंत भावुक हो रहा था।

'' इतने काल से जो प्रयोग चल रहे थे, वे कष्ट रहित थे क्या?''

उपस्थित वैद्यों के मस्तक झुक गए।

''मेरे कहने का तात्पर्य है कि उपचार में कष्ट तो होता ही है, इसलिए आप में से किसी को भी उसके प्रति खेद व्यक्त करने की आवश्यकता नहीं है।'' महाराज ने सभी को आकर्षक मुस्कान के साथ देखा तो उन सभी का संकोच दूर हो गया।

''इस घटना ने मेरे ऊपर एक और उपकार किया है।''

''क्या महाराज?'' वाष्प देने वाले ने सभी की जिज्ञासा अपनी आँखों में भर ली।

महाराज ने उसके भाव को समझकर कहा ''जीवन और मृत्यु के मध्य एक समय का भी अंतर नहीं होता है। काल प्रभाव से आज प्रत्यक्ष ज्ञानी उपलब्ध नहीं हैं अतः वर्तमान में कोई भी अपनी आयु की पूर्णता का सुनिश्चित ज्ञान नहीं कर सकता है। साधक को चाहिए कि वह प्रत्येक समय जागृत रहे, न जाने कब यमराज उपस्थित हो जावें। यह मनुष्य पर्याय बड़ी कठिनता से प्राप्त हुई है, सुयोग से यदि संयम प्राप्त

हो गया है तो निरंतर आत्महित में संलग्न रहते हुए इस पर्याय को सार्थक कर लेना चाहिए।''

महाराज की भेद-विज्ञान तथा वैराग्य की धारा इतनी गहरी और आंतरिक थी कि वे जागृत अवस्था मात्र में ही नहीं अपितु सुषुप्त अवस्था में भी देह के प्रति निरपेक्ष भाव रखते थे।

महाराज के गृहस्थ जीवन के छोटे भाई कुंभगौड़ा भी इस घटना के साक्षी बने। पिछले अनेक वर्षों से उनका मन घर-गृहस्थी से विरक्त हो ही रहा था किन्तु इस घटना के उपरांत उन्होंने संन्यास-मार्ग में बढ़ने का संकल्प कर लिया।

''महाराज, मुझे भी आप अपने समान बना लीजिए।'' अन्ततः कुंभगौड़ा ने मन के भावों को अभिव्यक्त कर ही दिया।

''परिवार के प्रति कर्तव्यों से विमुख होकर?'' संघपति पूनमचंद घासीलाल जो प्रतापगढ़ के ही मूल निवासी थे उनके मन में आया।

''हममें इतनी सामर्थ्य नहीं है कि हम किसी को अपने समान बना सकें।'' महाराज मुस्कुराए। ''प्रत्येक द्रव्य का अपना स्वतंत्र परिणमन होता है, उसका उपादान जागृत हो जाए तो फिर कहना ही क्या।''

महाराज ने अपने आपको कर्तव्य से दूर रखते हुए भी ये ऐसा सटीक उत्तर दिया है कि इसमें न कहीं पिछला संबंध सामने आया, न उन्होंने कुंभगौड़ा जी को घर में रहने कहा और न आगे बढ़ने से रोका। सेठजी महाराज के उत्तर पर मुग्ध थे।

''किन्तु महाराज, जैनेश्वरी दीक्षा तो आप गुरुओं के आशीर्वाद के बिना संभव नहीं है।'' कुंभगौड़ा ने जैसे अपना स्पष्टीकरण दिया।

''दिगम्बर साधु की तो सदा ही यही भावना रहती है कि संसार का प्रत्येक प्राणी मुक्ति-प्रदायनी जैनेश्वरी प्रव्रज्या को धारण करे किन्तु हमारी भावना और आशीर्वाद मात्र से तो कुछ नहीं होता, उसकी तैयारी भी तो होनी चाहिए।''

''महाराज, हमें इतना ही पता है कि हम दीक्षा के लिए तैयार हैं बाकी

हमारी कितनी तैयारी है कितनी नहीं यह आप मुझसे बेहतर जानते हैं।''

कुंभगौड़ा भी आखिर में भाई तो उन्हीं के थे, उसी शैली में उन्होंने भी उत्तर देकर अपने निश्चय की दृढ़ता से महाराज को अवगत भी करवा दिया और कहीं से अभिमान का प्रदर्शन भी नहीं किया।

महाराज ने उन्हें ब्रह्मचर्य प्रतिमा के व्रत प्रदान कर मानो गृहस्थी के भार से मुक्त ही कर दिया। महाराज कुंभगौड़ा की तीक्ष्ण बुद्धि एवं स्वाध्याय के प्रति रुचि को भी अच्छी तरह जानते थे अत: प्रतापगढ़ प्रवास के दौरान दोपहर में नियमित रूप से उनका उपदेश होने लगा। चातुर्मास सानंद सम्पन्न होने के उपरांत महाराज ससंघ बड़वानी, सिद्धवरकूट, मुक्तागिरि आदि क्षेत्रों की वंदना करते हुए गजपंथा पहुँचे।

गजपंथा में भव्य पंच-कल्याणक महोत्सव चल रहा था। इसमें संपूर्ण भारतवर्ष के विद्वान एवं श्रेष्ठी आए हुए थे। उन्होंने एक दिन विमर्श किया कि ''महाराज के व्यक्तित्व में अद्‌भुत जादू है।'' एक प्रतिष्ठित विद्वान ने कहना प्रारंभ किया। ''जहां भौतिकता की चकाचौंध के मध्य एक छोटा सा नियम लेना भी असम्भव लगता था, वहाँ आपश्री के प्रभाव से संपूर्ण परिग्रह का त्याग करने वाले अनेक दिगम्बर मुनिराज विचरण करते हुए दृष्टिगोचर होने लगे हैं।''

''मुनिव्रत जिसे असिधारा व्रत कहा जाता था, आपके निमित्त से ऐसे महान व्रतों को भी अनेकानेक भव्य जीव बड़ी सरलता से धारण कर रहे हैं।'' दूसरे विद्वान ने पिछले के समर्थन में कहना प्रारंभ किया। ''मुनि परम्परा की पुन: प्राण-प्रतिष्ठा, आचार्य महाराज की इस युग को दी गई सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण देन है। धर्म रूपी चक्र को संचालित करने वाले ये महामुनि चारित्र के चक्रवर्ती ही हैं।''

''क्या हम महाराज को चारित्र-चक्रवर्ती कह सकते हैं ?''संघपति के मुख से अनायास ही निकल गया था। यह उनका प्रश्न था या प्रस्ताव या फिर घोषणा, वे स्वयं ही न समझ सके थे, बस उन्होंने विद्वानों के समक्ष अपने हाथ जोड़ लिए।

''इसके लिए आगम का भी कोई आधार होगा क्या?'' एक अपरिचित व्यक्ति ने अपना पक्ष रखा।

सभी की दृष्टि उस व्यक्ति पर गढ़ गई तो उसे अपने वाक्य पर लज्जा के स्थान पर जैसे गर्व हुआ। बात विपरीत दिशा की ओर बढ़े उसके पूर्व ही अभी तक शांत बैठे एक वरिष्ठ विद्वान ने कहा ''महान कार्य करने वाले आचार्यों को पूर्व में भी चक्रवर्ती की उपाधि दी गई हैं।'' उन्होंने संघपति के प्रस्ताव पर जैसे मुहर लगाना चाही। वे आगे बोले ''षट्खण्डागम को पूर्ण रूप से साधकर जैन सिद्धांत का उद्योतन करने वाले आचार्य श्री नेमिचन्द्र को सिद्धान्त-चक्रवर्ती की उपाधि प्राप्त थी अत: महान तपश्चरण, आगमानुसार मुनिचर्या का पुनरोत्थान कर, चतुर्विध संघ की स्थापना एवं दिगम्बर साधुओं का निराबाध संचरण सुनिश्चित करने वाले आपश्री को यदि चारित्र-चक्रवर्ती इस उपाधि से विभूषित किया जाता है तो जैन समाज गौरवान्वित अनुभव करेगा।''

''महाराजश्री की आत्मा निरंतर निरुपाधिक आत्मस्वरूप के अमृतोपम महास्वाद को सहज प्रवृत्ति से बराबर लेने में परमानंद का अनुभवन कर रही है।'' वाचक ने चारित्र चक्रवर्ती की घोषणा करते हुए आगे कहा ''आचार्य भगवन को इस उपाधि से क्या? वे उपाधि शून्य स्वभाव मग्न ही हैं। साधु या आचार्य परमेष्ठी की आंतरिक जीवनी का यथार्थ दर्शन इन चक्षुओं का विषय नहीं होता, वह अपने आप में अलौकिक ही होता है। जहां जीवनधार श्वासोच्छवास की तरह इन पूज्यों का श्वास, आत्मा को स्वात्मा में स्थिर बनाये रखने के लिए होता है, वही उच्छवास विश्व में अपनी आदर्श प्रवृत्ति के द्वारा शान्ति स्थापना में और धर्म प्रभावना में उत्कृष्ट निमित्त के रूप में उपस्थित होने के लिए होता है। आचार्यवर्य शान्तिसागर महाराज की लोक-लोकोत्तर अलौकिकता और वैभवशाली विभूतिमत्ता का साक्षात्कार कर यह युग कृतकृत्य हो गया।''

घोषणा पूर्व तक महाराज इस विषय से अनभिज्ञ थे। उस अपरिचित श्रावक के समान अनेक लोग सोच रहे थे। ''उपाधि के उपरांत महाराज के

चेहरे पर कुछ अलग चमक दिखेगी। वे अपने उपदेश में संकोचवशात् शाब्दिक कृतज्ञता भले ही ज्ञापित न कर पाएँ किन्तु उनके व्यवहार और शारीरिक संकेतों से वह अवश्य ही झलकेगी।''

''चारित्र के चक्रवर्ती तो भगवान ही हो सकते हैं।'' महाराज का प्रथम वाक्य लोगों के कानों में पड़ा तो आलोचक स्तब्ध रह गये। समर्थक महाराज की निस्पृहता से पहले से ही परिचित थे फिर भी वे धन्य भाव से भर गए। ''हमें उपाधि से क्या? स्वभाव से निरुपाधिक आत्मा ही हमें शरण है। यदि हमारा स्थान अन्तिम नम्बर के मुनि का है तो हमारे लिए यही सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि है।''

महाराज का यह उपदेश शाब्दिक नहीं था, जब अनेक दिनों तक अनेक अवसरों पर आलोचकों ने अच्छी तरह देख लिया तो उन्होंने भी महाराज को हृदय से गुरु मानकर संयम-पथ की ओर अपने जीवन को गतिमान कर लिया। महाराज को चारित्र-चक्रवर्ती पद से विभूषित कर समाज ने अपनी गुणग्राह्यता एवं त्याग-संयम के प्रति निष्ठा का जो औचित्यपूर्ण प्रदर्शन किया वह योग्य भी था एवं प्रशंसनीय भी।

कुंभगौड़ा तो पिछले बहुत समय से महाराज के संघ में साधनारत थे ही, गजपंथा महा-महोत्सव के अवसर पर भोज से भी अनेक परिजन-पुरजन आए हुए थे। कृष्णा बाई जो महाराज के समान अखण्ड-ब्रह्मचारिणी थीं वह अनेक दिनों से चौका लगा रही थीं। जब वह भोज से गजपंथा आ रही थीं तब साथ वालों ने उनसे कहा था कि ''आपको प्रथम दिन ही महाराज का पड़गाहन मिलेगा।''

''ऐसा क्यों?'' कृष्णा बाई ने सस्मित उनसे पूछा।

''क्योंकि आप उनकी दुलारी बहिन जो हैं।'' एक ने कहा।

''अच्छा!'' कृष्णा बाई ने उसके इस तर्क से जैसे असहमति जताई। ''महाराज, जब घर में थे तब ही घर-गृहस्थी के संबंधों से बहुत ऊपर उठ चुके थे, अब तो वे निर्दोषरीत्या, आचरण का पालन करने वाले महातपस्वी साधक हैं उनकी दृष्टि में नाते-रिश्तों का कोई महत्व नहीं है।'' कृष्णाबाई के

मन में सामने वाले की टिप्पणी के खण्डन में अनेक विचार उत्पन्न हुए किन्तु वे बोली कुछ नहीं।

''माँ की समाधि के पश्चात् आप ही तो आहार चर्या सम्पन्न कराती रही हैं। घर में भी और घर के बाहर भी। सहेली ने अपनी बात की पुष्टि में आगे कहा। ''जब अप्पा स्तवनिधि जाते थे तब आप उनके साथ अवश्य जाती थीं।''

''हाँ कैसा वैरागी हृदय था उनका।'' कृष्णा बाई अतीत में पहुँच गईं। ''स्वाभिमानी बहुत थे। दो-तीन दिन निराहार रह लेते किन्तु किसी को भोजन के लिए संकेत नहीं करते। ऐसे में मेरा जाना अनिवार्य हो जाता था।''

''एक-दो दिन नहीं, कृष्णा पूरे दो सप्ताह हो गए महाराज ने तुझे अभी तक पड़गाहन नहीं दिया।'' एक परिचिता ने टिप्पणी की।

''ताई, आपको तो पता ही है महाराज के उपवास अधिक होते हैं आहार कम। वैसे भी मुझे लौटने की शीघ्रता नहीं है, जैसे अन्य श्रावकों के यहाँ महाराज की विधि मिलती है, पुण्य रहा तो शीघ्र ही हमें भी यह सौभाग्य मिल जायेगा।

''तू भी बड़ी भोली है कृष्णा। ये शास्त्रों की बातें शास्त्रों में ही अच्छी लगती हैं, वास्तविकता में नहीं।''

''मतलब ?'' कृष्णा बाई ने साश्चर्य उसकी ओर देखा।

परिचिता की आँखों में चमक आ गई। वह आत्मीय प्रेम का प्रदर्शन करते हुए बोली ''किसी भी क्षेत्र में सफल होना है तो साम, दाम, दण्ड, भेद सब प्रकार की नीतियां अपनानी पड़ती हैं।''

''ये क्या कुछ भी कहे जा रही हैं।'' कृष्णाबाई को उसकी बातें और प्रयोजन अच्छा नहीं लग रहा था अत: वे वार्ता का समापन करने के उद्देश्य से बोलीं ''ताई मुझे सब्जी खरीदने जाना है, आपसे बाद में मिलती हूँ।''

''महाराज तो बड़े भोले-भाले हैं साथ में संकोची भी। तुम भी वीतरागनी बनी रहोगी तो काम नहीं चलेगा।'' कृष्णाबाई कक्ष से बाहर निकल गई तो वह भी कुछ दूर साथ चल पड़ी। ''महाराज के पास थोड़ा रो-धो लोगी तो वे

दयामूर्ति बिना पिघले नहीं रहेंगे।''

उसके मन में तो यह भी आ रहा था कि वह कह दे कि ''किसी सेठ-साहूकार को पड़गाहन में खड़ा कर लो।'' लेकिन कृष्णाबाई ने कदमों की गति तेज कर दी थी। ताकि वह उस क्षुद्र बुद्धि से बच सके किन्तु स्वयं के मन से बचकर कहाँ जाती। ''वह तो कुछ भी बोल रही थी किन्तु इतनी बात तो सत्य है कि तीव्र भक्ति भावना के उपरांत भी महाराज के अभी तक आहार नहीं हो सके हैं।'' कृष्णा बाई चातक पक्षी की भाँति स्वाति बूंद रूप आचार्य महाराज की प्रतीक्षा कर रही थीं। दिन पर दिन निकलते गए पर महाराज का पड़गाहन उनके चौके में नहीं हो पा रहा था। वे दु:खी तो बहुत थीं किन्तु अपने पूर्वकृत दानान्तराय कर्म का उदय मानकर अपनी भक्ति और विशुद्धि को बढ़ाने में लगी हुई थीं कि एक दिन उन परिचिता से पुन: सामना हो गया। कृष्णा बाई वहां से तत्काल भाग जाना चाहती थीं किन्तु उसने कृष्णा बाई का हाथ कसकर पकड़ लिया था। ''तुझे भले ही मेरी बातें अच्छी न लग रही हों किन्तु सच यही है।''

कृष्णा बाई ने उन्हें तिरछी दृष्टि से देखा तो वह बोलीं ''मेरे पास शास्त्र-सम्मत मार्ग भी है, यदि तुम्हारी इच्छा हो तो कहूं।'' ऐसा कहते हुए उसने कृष्णाबाई का हाथ छोड़ दिया।

''हूँ...।'' कृष्णा बाई उसके इस वाक्य से विस्मित हुईं।

कृष्णा बाई की हुंकार को अपने समर्थन में मानकर वह बोलीं किसी खाद्य वस्तु का त्याग कर दो।''

कृष्णा बाई को उनकी यह बात जम गई।'' कुछ त्याग के परिणाम से यदि महाराज के आहार का लाभ मिल सकता है तो फिर मुझे अवश्य ही अपने किसी प्रिय पदार्थ का त्याग कर देना चाहिए।''

''किसी ऐसी वस्तु का त्याग मत कर देना, जिससे समस्या खड़ी हो जाए।'' उसने चेतावनी दी। तो कृष्णा बाई के चेहरे पर मुस्कान आ गई।

''क्या त्याग करोगी?''

''चावल।''

''पागल हो गई हो क्या?''

''क्यों?''

''तुम्हारा तो भोजन ही चावल है बिना उसके कैसे काम चलेगा।''

''ताई तुम्हीं तो अभी कह रहीं थीं कि त्याग करने से महाराज के जल्दी आहार हो जायेंगे। मेरा नियम तो महाराज के आहार नहीं होने पर्यंत का है, इसलिए आप अधिक परेशान न हों।

''ये भी तो नहीं पता कब आहार होंगे।''

उसका बातूनी आत्म-विश्वास अवसरवादियों के साथ के समान जाने कहां पलायन कर गया वह स्वयं भी न जान सकी। ''मेरे कहने से इसने इतना बड़ा त्याग कर दिया। पता नहीं महाराज के आहार होते हैं या नहीं।'' वह अपने विचारों से बाहर निकलकर बोली ''तो ठीक है मैं कैसे भी करके यह समाचार महाराज तक पहुँचा देती हूँ।''

''नहीं, ताई।'' इस बार कृष्णा बाई ने उसका हाथ कसकर पकड़ लिया। ''आप न महाराज तक कोई संदेश पहुँचाओगी और न किसी अन्य से इस विषय पर चर्चा करोगी।'' कृष्णाबाई को उसकी चंचलवृत्ति पर संदेह था अत: उन्होंने उसे सौगंध दिलाकर शपथबद्ध कर दिया।

महाराज का गजपंथा प्रवास पूर्ण हो गया। वे विहार करके आगे बढ़ गए किन्तु कृष्णा बाई को आहार दान का अवसर नहीं मिला। कृष्णाबाई ने भी साहस नहीं छोड़ा। वे आगे भी चौका लगाती रहीं। तब फिर बहुत लंबे समय के उपरांत योग मिलने पर उन्हें आहार दान का लाभ प्राप्त हुआ। उस दिन जब किसी ने महाराज को बतलाया कि ''कृष्णाबाई का बहुत लंबे काल से चावल का त्याग है।''

''वे संबंध जो कबके छूट चुके हैं उनके प्रति अब तक इतना मोह क्यों?'' महाराज ने कृष्णा बाई की ओर दृष्टि की।

कृष्णा बाई के नेत्र नीचे झुक गए किन्तु चौके के एक अन्य सदस्य ने उत्तर के रूप में प्रश्न किया महाराज, ''क्या मुनिराज के आहार की इच्छा रखना भी अनुचित है।?''

''साधुओं के लिए आहार दान की भावना तो श्रावक के हृदय में होनी चाहिए किन्तु इन्हें ही देना है यह संकल्प क्यों?'' महाराज के मुखमण्डल पर अपार गांभीर्य था। ''निर्बंध को बांधने की इच्छा को कौन विवेकी सम्यक् मानेगा।'' महाराज कुछ रुके फिर आगे बोले ''मुनि के मुनित्व मात्र के प्रति दृष्टि होने पर, उनके रत्नत्रय के प्रति बहुमान होने पर जो दान दिया जाता है वह दृढ़ मोही को भी एक दिन मोहमुक्त करने की सामर्थ्य रखता है किन्तु यदि ऐसे महान साधन से भी अपने मोह की पुष्टि की जाए तो फिर मोहादिक से छूटने के अन्य कौन से उपाय होंगे।''

महाराज का कुछ समय तक उपदेश चलता रहा जिसे सुनकर अनेक लोगों की आँखें खुल गईं। कृष्णा बाई को भी अपूर्व विशुद्धि की प्राप्ति हुई। अणुव्रतों की प्रतिपक्षी अप्रत्याख्यान निस्तेज होने पर एवं संज्वलन तथा नोकषाय की यथायोग्य मंदता आ जाने पर कृष्णा बाई व्रती बन गईं।

महाराज ने सभी व्रतियों को आशीर्वाद देते हुए कहा ''व्रती को कभी खोटी साक्षी नहीं देनी चाहिए। वह सावद्य दोष त्यागकर कम से कम दो बार सामायिक करे। सामायिक का जघन्यकाल दो घड़ी है उसमें वह भगवान का जाप करे तथा एक-देश आत्मचिंतन करे।''

इसी कड़ी में दिवाकरजी ने महाराज के समक्ष एक श्रावक की दुविधा रखी। ''महाराज हमारे परिचित के एक सामायिक प्रतिमाधारी श्रावक जिन्हें वैद्य एवं डॉक्टरों ने पूरी तरह लेटे रहने की सलाह दी थी किन्तु वे बैठकर सामायिक करते हैं इससे उनकी व्याधि में आराम नहीं मिल पा रहा है। महाराज ऐसी परिस्थिति में वह क्या करे?''

''रुग्ण अवस्था में लेटे रहकर भी सामायिक की जा सकती है किन्तु प्रमाद रहित होकर, सर्व-सावद्य के त्यागपूर्वक।'' महाराज ने आगे बतलाया कि यदि बाह्याचरण की दृष्टि से देखें तो सामायिक की अवस्था में शरीर की प्रवृत्ति नहीं होनी चाहिए, जो उसके शवासन के रूप में संभव है ही किन्तु मूल रूप में समता परिणामों का नाम सामायिक है। यदि यह मन विषय-कषायों से निरपेक्ष होकर आत्म-हितार्थ, निर्मल परिणामों को प्राप्त होता है तो समझो

वही सच्ची सामायिक है।''

महाराज के इस समाधान से अनेक व्रती श्रावकों की शंका का समाधान हो गया किन्तु पंडित जी के मन में और भी अनेक प्रकार के प्रश्न उठते चले गए और महाराज तर्कसंगत किन्तु आगमानुकूल उत्तर देते रहे।

तदोपरांत महाराज ने प्रोषधोपवास, सचित्त त्याग आदि प्रतिमाओं का स्वरूप बतलाते हुए सप्तम ब्रह्मचर्य प्रतिमा की मार्मिक व्याख्या की। उन्होंने अष्टम आदि प्रतिमाओं में करने योग्य कार्यों की ओर संकेत करते हुए क्षुल्लक पद की भी बहुत व्यवस्थित व्याख्या की। अनेक जीव महाराज के उपदेशों से लाभान्वित हो व्रतों को ग्रहण कर अपने जीवन को धन्य कर रहे थे किन्तु कुछ लोग ऐसे भी थे जो नियम-धरम को भविष्य के लिए टाल देते थे। महाराज विहार के दौरान पूना के समीपस्थ नीरा स्टेशन के समीप एक कुटी में रुके थे। वहाँ आहार चर्या के उपरांत जैनमित्र के संपादक श्री मूलचन्द कापडिया ने ''दिगम्बर जैन का त्याग'' विशेषांक पूज्यश्री को भेंट किया। उन्हें जाने की कुछ शीघ्रता थी अत: ''फिर आकर मिलेंगे।'' इस भावना से उन्होंने महाराज से पूछा ''महाराज आपका यहाँ पर प्रवास कब तक है?''

''सामायिक तक तो यहीं हैं, आगे का क्या होता है, किसे मालूम।''

संपादक जी के साथ मुंबई के प्रख्यात गुजराती दैनिक के संवाददाता घड़ियाल जी भी थे, वे महाराज के इस उत्तर से विस्मित हुए। ''न इन्हें कोई रोक सकता है और न इन पर कोई बंधन है किन्तु ये कैसा उत्तर?'' महाराज के जब प्रश्न भी उत्तर ही हैं तब तो यह उत्तर ही था। यद्यपि मुनि अनियत विहारी होते हैं। अर्हंत की मुद्रा को धारण करने वाले उन महामना का विहार भी उन्हीं के समान भव्य जीवों के हितार्थ होता है किन्तु यहाँ महाराज का वाक्य किसी विशिष्ट संदेश की ओर इंगित कर रहा था। महाराज ने संपादक जी की ओर दृष्टि की तो उन्हें लगा कि उनके हावभाव को देखकर जैसे महाराज पूछ रहे हो। ''तुम्हें अभी कहीं जाना है?''

''महाराज हमें अभी कहीं जाना है।'' संपादक जी के मुख से अनायास

ही निकल गया।

''अभी इतनी जल्दी क्या है, थोड़ा रुक जाइए।'' निकट खड़े एक परिचित श्रावक ने उनसे आग्रह किया।

संपादक जी ने महाराज की ओर दृष्टि की तो महाराज के मुखारविंद पर स्मित फैल गई। ''महाराज भी कहीं रुकने के लिए कह न देवें, तब फिर उनके आदेश को कैसे टाल पाऊंगा।'' मन में ऐसा विचार उत्पन्न होते ही संपादक जी बोले ''महाराज अभी थोड़ा व्यस्त हूँ।''

''हूँ...।'' महाराज के मुख से निकला।

संपादक जी को लगा महाराज ठीक से सुन नहीं पाए हैं अत: उन्होंने मनोविनोद की शैली में पुनरावृत्ति की। अभी फुरसत नहीं है महाराज।''

''इतने वृद्ध हो गए हो, अब कब फुरसत मिलेगी?''

घड़ियाल जी को महाराज का यह वाक्य करेंट की भाँति लगा। वे यद्यपि स्वयं भी बहुत व्यस्त थे किन्तु उन्होंने कापडिया जी को, महाराज के पास रुकने के लिए कहा किन्तु ''अबकी बार पर्याप्त समय लेकर आयेंगे।'' कहकर कापडिया जी चले गए।

थोड़े ही समय के पश्चात् समाचार मिला कि जैनमित्र के संपादक कापडिया जी नहीं रहे। अहो, यदि यह जीव पूर्ण रूपेण बाहरी आपाधापी में लगे रहने के स्थान पर कुछ फुरसत के क्षण अपने लिए भी निकाल ले, तो वह इहभव एवं परभव में भी कुछ उपलब्धि पा सकता है, अन्यथा तो सर्वत्र इष्ट भौतिक साधनों के साथ संयोग की आकांक्षा में डूबा हुआ वह उपलब्धि के नाम पर शून्य ही रहा है। घड़ियाल जी को महाराज का एवं इस जीवन का भी संदेश समझ आ गया अत: उन्होंने महाराज से यथायोग्य नियमों को ग्रहण कर अपने जीवन को कृतार्थ कर लिया।

❀❀❀

6

महाराजश्री विहार करते हुए चातुर्मास हेतु बारामती पहुँचे। वहाँ एक दिन महाराज का केशलोंच हो रहा था महाराज के पास ही एक नन्हा सा बालक खेल रहा था। क्रीड़ा में संलग्न वह बीच-बीच में महाराज को देखता फिर अपने खेल में लग जाता। इसी बीच उस बालक के मन में विचार आया।

''क्या यह भी कोई खेल है ?''

यद्यपि उसने पूर्व में कभी केशलोंच देखा न था किन्तु उसने किसी से कुछ पूछा नहीं। उसके मन ने ही उसे उत्तर दिया। ''हाँ-हाँ यह बड़ा रुचिकर खेल है।''

''अच्छा!'' बालक विस्मित हुआ।

''तुम भी करके देख लो।'' फिर क्या था मन ने सुझाव दे दिया।

''हाँ-हाँ इस खेल में तो खिलौना भी नहीं चाहिए।'' सोचते हुए बालक ने अपने बालों को खींचना प्रारंभ कर दिया।

अचानक महाराज की दृष्टि बालक पर गई तो महाराज के आनन पर मुस्कान छा गई। बालक भी महाराज की मुस्कान से आकृष्ट हो उनके समीप आ गया। बालक को आशीर्वाद देने के भाव से सहज ही महाराज की पिच्छी उठ गई। उन्होंने पिच्छी बालक के सिर पर रख दी। पिच्छी के सुखद स्पर्श से बालक रोमाञ्चित हो गया।

अनेक लोग वहां उपस्थित थे। उनके चेहरे से स्पष्ट लग रहा था कि उनके मन में यह विचार उठ रहे हैं कि ''हम वर्षों से महाराज के पास आ रहे हैं, दिन-रात उनकी सेवा के लिए तत्पर रहते हैं, दिन में कई-कई बार भक्ति भाव से उन्हें नमोऽस्तु करते हैं किन्तु उन्होंने ऐसी प्रसन्नतापूर्वक कभी हमारे उपर पिच्छी नहीं रखी।''

बोलना कई लोग चाह रहे थे किन्तु उनका साहस नहीं हुआ। एक-दो लोगों की मुखमुद्रा से लगा कि वाक्य उनके मुख तक आ ही चुके हैं किन्तु शब्द जैसे वहीं कहीं विलुप्त हो गए। वहाँ दिवाकर जी भी उपस्थित थे। उन सभी की मनोदशा को समझते हुए उन्होंने महाराज से पूछ ही लिया ''महाराज इस बालक के मस्तक का आपने पिच्छी से स्पर्श कर दिया ?'' पंडितजी का 'क्यों' संकोचवशात् बाहर नहीं निकल सका, फिर भी सभी जनों को बड़ा संतोष हुआ आखिर ''हमारी जिज्ञासा महाराज तक पहुँच ही गई।''

सभी की दृष्टि महाराज के ऊपर टिकी हुई थी। चूंकि महाराज का केशलोंच पूर्ण हो चुका था अत: अब महाराज के लिए मौन रहना अनिवार्य नहीं था। किन्तु महाराज के होठों पर स्पंदन के कोई संकेत नहीं थे। लोगों को ऐसा लगा कि जैसे महाराज ने या तो पंडितजी का वाक्य ठीक से सुना नहीं या फिर हमारी जिज्ञासा की अवहेलना कर दी।

पंडितजी महाराज के मौन संदेश को समझ रहे थे अत: बोले ''मुनिमुद्रा यथाजात होती है अर्थात बालकवत् निर्विकार। नीति भी है कि अपने पक्षवालों को देखकर किसे प्रेम उत्पन्न नहीं होता है। लगता है इसी कारण से आपने उस बालक पर अपना वात्सल्य उडेल दिया।''

महाराज के चेहरे पर मुस्कान बिखर गई। वह बालक भी महाराज को देखकर खिलखिला उठा और उन दोनों की जुगलबंदी को देखकर पंडितजी सहित पूरी जनता प्रसन्नता से भर गई।

पंडितजी को भाव हुआ कि ''ऐसे पुण्यशाली बालक को तो गोद में ले लेना चाहिए।'' वे उसकी ओर बढ़े ही थे कि एकदम पीछे हो गए। बाकी अन्य लोग भी खिसक गए। बालक के कपड़े मलिन हो गए थे, उसके आसपास की भूमि भी गंदी हो चुकी थी। किन्तु महाराज के चेहरे पर ग्लानि का भाव तो दूर वे तो उस बालक को पूर्ववत वात्सल्यमयी दृष्टि से देख रहे थे।

पंडितजी का मन कह उठा। ''वास्तविक निर्विचिकित्सा है यह। सुंदर एवं इष्ट वस्तु में अनुरक्ति नहीं और असुंदर तथा बीभत्स पदार्थ के प्रति घृणा नहीं। अहो ! धन्य हैं ये तपोधन जिनकी निर्मल दृष्टि पुद्गल के परिणमन

को देखती हुई राग-द्वेष की विकृतियों से मुक्त रहती है।''

जो जीव ऐसी महान आत्माओं की संगति में रहते हैं उनका जीवन भी क्रमश: पापमुक्त होता जाता है। महाराज बारामती में जिस स्थान पर चातुर्मास की साधना कर रहे थे, वह सेठ चन्दूलाल सराफ का बगीचा था। उस समय इनके लगभग नौ माह का पुत्र था। एक रात्रि को अचानक उसका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। डॉक्टर उपचार कर रहे थे किन्तु उसकी स्थिति में सुधार होता हुआ नहीं दिख रहा था।

सभी बहुत घबरा रहे थे। डेढ़ वर्ष पूर्व उनके छह वर्षीय पुत्र का एक दुर्घटना में मरण हो गया था। वंश परंपरा को आगे बढ़ाने के लिए एक मात्र यही प्रकाश-पुंज था किन्तु असाता के काले मेघों की ओट में वह भी छिपा जा रहा था।

''सेठजी, महाराज..।'' मालिक को चिंतित देखकर सेवक ने कहा।

''हाँ...।'' चंदूलाल जी ने उसकी ओर देखा।

''छोटे सेठजी को महाराज के पास ले चलते हैं।''

''डॉक्टर को छोड़कर महाराज के पास? पागल हो गए हो क्या? अंध-विश्वास की भी एक सीमा होती है।'' डॉक्टर जो चंदूलाल जी के घनिष्ठ मित्र थे ने डांटते हुए कहा।

सेवक बोला **''डॉक्टर साहब हम छोटे लोगों के विश्वास को भी दुनिया अंध-विश्वास कह देती है और बड़े लोगों का अंध-विश्वास भी महिमामण्डित होता रहता है।''**

डॉक्टर ने उसे वक्र दृष्टि से देखा।

''हमारे यहाँ के सेठ माणिक लाल जी का बेटा आठ वर्ष का हो गया था। बोलता नहीं था उन्होंने उसका बहुत उपचार करवाया। भारत ही नहीं विदेश भी ले गए थे पर कोई लाभ नहीं मिला।''

''तो फिर?'' जिज्ञासावश चंदूलाल जी के मुख से अनायास निकल गया। हालांकि वे सेवक का संकेत समझ रहे थे।

''सेठजी वह एक दिन अपने पुत्र के साथ महाराज के दर्शन करने गए हुए थे।''

''महाराज ने अपने हाथ में लेने वाली झाड़ू उसके सिर पर रख दी और फिर माणिक का हीरा बोलने लगा।'' डॉक्टर ने सेवक पर कसकर व्यंग्य किया।

''हाँ डॉक्टर साहब आप बिल्कुल सही कह रहे हैं। वह बालक आठ ही दिनों में ऐसी बातें करने लगा जैसी बड़े-बड़े लोग भी न कर पाएँ।''

डॉक्टर को तेज क्रोध आ चुका था। उसने चंदूलाल जी की ओर देखा। उनकी आँखों में सेवक की बातों पर पूर्ण विश्वास देख वह गुस्से में वहां से चला गया।

सेवक की तीव्र इच्छा थी कि ''सेठजी अपने बालक को तत्काल महाराज के निकट ले जाएँ। डॉक्टर के संकोच से कथंचित वे ऐसा नहीं कर पा रहे हैं तो अकेले ही चले जाएँ।''

''मैं महाराज के पास होकर आता हूँ।'' सेठजी ने धर्मपत्नी से कहा तो सेवक की आंखें खिल गईं।

''महाराज के पास अभी ?'' सेठानी जी बोलीं।

''क्यों ?'' सेठजी ने प्रतिप्रश्न किया।''

''बहुत रात हो चुकी है।''

''कहीं बहुत देर न हो जाए।'' सेवक के मन में आया।

सेठजी ने सेठानी की ओर बड़ी-बड़ी आँखों से देखा, तो वे आगे बोलीं ''महाराज या तो विश्राम में होंगे या फिर ध्यान में लीन।''

''तो उनके दर्शन करके ही लौट आऊंगा।'' बोलते हुए सेठजी अस्पताल से बाहर की ओर बढ़े।

सेवक को लगा कि जैसे बालक जी उठा। बालक ने एक बार पूरी आँखें खोलीं तो नर्सिंग स्टॉफ भी आश्चर्यचकित हुआ। एक नर्स डॉक्टर को बुलाने दौड़ी किन्तु जब तक डॉक्टर आ पाते तब तक बालक शांत हो गया। सेठजी उल्टे पांव लौट आए।

''जब महाराज के दर्शन हेतु निकल ही गए थे तो दर्शन करके ही

आते।'' सेठानी बोलीं।

''हमारा मुन्ना अब नहीं रहा।'' सेठजी को लगा कि पुत्र-वियोग में उनकी धर्मपत्नी को गहरा सदमा लगा है।

''इस संसार में कोई किसी की आयु को न बढ़ा सकता है और न मृत्यु को टाल सकता है। जो जितनी आयु की रसद लेकर आता है उसके समाप्त होते ही उसे जाना होता है। यमराज छोटे-बड़े में भेद नहीं करता, जो उसकी दृष्टि में आ गया वह गया।'' सेठजी ही नहीं अस्पताल के डॉक्टर भी सेठानी की बातें सुनकर चकित थे।

''सैकड़ों लोगों के मरण होते हुए देखे। उस समय उनके परिजनों की प्रतिक्रिया भी खूब देखी है।'' डॉक्टर सोच रहा था कि ''कितने लोग तो हम डॉक्टर पर ही आरोप लगा बैठते हैं, कि तुम लोगों ने हमारे परिजन को मार डाला। मेरा मित्र तो बड़ा धर्मात्मा है ही किन्तु सामान्य गृहिणी दिखने वाली उसकी यह धर्मपत्नी, किसी साध्वी से कम नहीं है।''

सेठानी आगे बोलीं ''इस सृष्टि में कोई किसी का नहीं है। हम अपने अज्ञान एवं मोह के कारण उन्हें अपना लेते हैं और फिर जब उसका वियोग होता है तब संकल्प-विकल्प करते हैं, दु:खी होते हैं। हमारा मुन्ना, हमारा होता तो सदा हमारे साथ रहता किन्तु वह हमारा था ही नहीं।''

सेवक समझ नहीं पा रहा था कि ''पुत्र की एक छींक में आकुल-व्याकुल हो जाने वाली माँ, आज उसके प्राण पखेरु उड़ जाने पर शोक से मूर्च्छित हो जाने के स्थान पर मानो गीता का उपदेश दे रही है।'' उसे लगा कि ''सेठानी जी को अवश्य ही कोई ऊपरी बाधा हो गई है।''

''धर्म ही एकमात्र हमारा अपना है।'' सेठानी का वाक्य कान में पड़ते ही सेवक सचेत हुआ। ''इसलिए चाहे तो जीवन में कितना भी प्रतिकूल समय आवे, हमें धर्म को कभी नहीं छोड़ना चाहिए।''

जब महाराज को इस घटना की जानकारी लगी तो उनके मुख से सहज ही निकल गया। ''ऐसी बाई हमने कहीं नहीं देखी। पुत्र का मरण हो गया और ऐसी समता।'' सेठजी का उतरा हुआ मुँह देखकर महाराज बोले ''तुम्हारी

धर्मपत्नी सही कहती है। संसार में कुछ नहीं है। कितने पुत्र-पुत्री हुए? कौन किसके साथ कितना रह पाया? संसार ऐसा ही है। इसमें शोक नहीं करना चाहिए।''

महाराज का उपदेश सुनकर एवं सतत सेवा करते रहने से सेठजी के भी हृदय का संताप दूर हो गया।

एक दिन सेठ चन्दूलाल को देखते ही महाराज के मुख से अनायास ही निकला ''काका...।''

सेठजी विस्मित भी हुए और उन्हें हंसी भी आ गई। पुत्र वियोग के बहुत लंबे अंतराल के उपरांत वे आज हंसे थे। कथंचित इसीलिए ही महाराज के द्वारा उन्हें काका शब्द से संबोधित किया गया था।

''तुम व्रत ले लो।''

सेठजी पुन: अचरज में पड़ गए। ''महाराज कौन से व्रत लेने की बात कर रहे हैं?''

''हमारे सरीखा कहने वाला तुम्हें नहीं मिलेगा।'' महाराज ने हास्यमिश्रित गंभीर वाणी में कहा।

''मैंने जो पूर्व से नियम ले रखे हैं, उन्हें निर्दोष पालने में ही बड़ी कठिनाई होती है। अब तो एक छोटा सा नियम लेने के लिए भी दस बार सोचना पड़ता है।'' सेठजी ने सोचा किन्तु बोले ''महाराज हमसे व्रत नहीं बनेंगे।''

''तुम हमारी बात मान लो।'' महाराज ने पुन: अपना अभिप्राय दुहराया।

सेठजी को लगा कि ''कहीं महाराज कोई बड़ा व्रत दे ही न दें। एक बार महाराज के मुख से निकल गया फिर उनकी आज्ञा की अवहेलना मेरे लिए असंभव कार्य होगा।'' अत: वे झट से बोले ''दान करने के लिए दस हजार के स्थान पर बीस हजार की प्रेरणा दे दीजिए वह हम कर देंगे।''

महाराज के आनन पर स्मित फैल गई। वे समझ गए कि ''यद्यपि यह सरल परिणामी जीव है किन्तु अभी चारित्र मोहनीय कर्म के प्रभाव में है अत: चाहकर भी पुरुषार्थ नहीं कर पायेगा। जब मोह का प्रकोप कम होगा तो स्वयं

ही ऊपर उठ जायेगा।''

निकट ही सेठानी जी बैठी थीं। महाराज की दृष्टि उन पर गई तो सेठानी के हाथ जुड़ गए, वे अपनी मौन भाषा में ही कह रही थीं कि ''पतिदेव की तो नहीं पता लेकिन, मैंने संसार के स्वरूप को अच्छी तरह से समझ लिया है। निरंतर मृत्यु की ओर गतिशील इस संसार से यदि सुरक्षित रहना है तो गुरु के द्वारा दिए जा रहे इन व्रतों के सुरक्षा कवच का होना अनिवार्य है।'' सेठानी संसार से अत्यंत विरक्त हो चुकी थीं। ''हम संसार के प्रीतिकर संबंधों को स्थायी मानकर उनमें तल्लीन हो जाते हैं किन्तु हाय खेद है न पुत्र का संबंध नित्य है न पति का और न ही इस देह का। एकमात्र मेरी आत्मा मेरी है किन्तु आत्मोपलब्धि, बिना रत्नत्रय के संभव नहीं है। क्या मुझ पतिता को भी कभी रत्नत्रय की प्राप्ति हो सकेगी?'' सेठानी का मन भीग गया।

''बाई, तुमने इतने लंबे समय तक मुनियों की सेवा की है, वैसे ही जैसे माता अपने बच्चों की करती है।'' महाराज के मुख से निकले इस वाक्य को सुनकर सेठानी की आँखें भी भीग गई। महाराज आगे बोले ''तुमने सच में बहुत सेवा की है हम सोचते हैं, तुमको कुछ दे दें।''

''महाराज के पास तो एक कौड़ी भी नहीं है ये सेठानी जी को क्या देंगे?'' पास खड़े सेवक के मन में आया।

''क्या दूँ?'' महाराज के मुख से निकला।

''क्या महाराज हमें संतति प्राप्ति का आशीर्वाद देवेंगे?'' सेठजी के मन में आया।

''हम तुमको एक रत्न देते हैं।''

''हाँ महाराज के पास तो बड़े-बड़े सेठ-साहूकार आते रहते हैं। उन्होंने भेंट स्वरूप महाराज को मूल्यवान दुर्लभ रत्न अर्पित किए होंगे जो वे सेठानी जी को देने वाले हैं अन्यथा हमारे सेठजी के पास भी रत्नों की कमी थोड़े ही है।'' सेवक का मन रत्न की खोज में जौहरी बाजार पहुँच गया था।

''बाई, तुम व्रत प्रतिमा का पालन करना!'' कहकर महाराज मौन हो गए।

सेठजी एवं सेवक सहित उपस्थित सभी के मन में जैसे कर्फ्यू लग गया किन्तु सेठानी भाव-विभोर हो गईं। सेठानी को लगा कि ''उन्हें सचमुच में आज ऐसा रत्न मिला जिसको पाकर अब वे असंयम की निर्धनता से मुक्त हो गईं।'' आज सेठानी के मन में यह विश्वास जागृत हो गया कि ''निश्चित ही उन्हें किसी निकटवर्ती पर्याय में रत्नत्रय भी प्राप्त होगा।''

सभा में सेठ तुलजाराम जी उपस्थित थे। सेठानी के व्रत ग्रहण पर उन्होंने बहुत प्रशंसा की तो महाराज का उपयोग उनकी ओर चला गया।

''तुम भी व्रत ले लो।'' महाराज ने उनके कल्याण की भावना से कहा।

सेठजी ने सोचा, ''हंसे सो फंसे वाली बात हो गई।''

तुलजाराम जी सभा के पीछे बैठे हुए थे। आजू-बाजू वाले उन्हें आगे जाने के लिए कह रहे थे लेकिन वे वहां से नहीं उठे। उन्हें देखकर महाराज सस्मित बोले ''पास में आने से क्यों डरते हो, क्या हम अग्नि हैं?''

तुलजाराम जी संकोच में आ गए। वे उठकर आगे आए और महाराज के निकट बैठने लगे तो महाराज हंसते हुए बोले ''देखो, यहां संयम की अग्नि है। हमारे पास मत बैठना।''

''महाराज ये अग्नि मुझे बड़ी प्यारी लगती है। आगामी जन्म में ऐसी ही अग्नि चाहता हूं।''

महाराज तुलजारामजी के वाक्-चातुर्य को समझ रहे थे अत: प्रतिउत्तर में बोले ''पुराणों में आता है कि राजा का एक केश सफेद हुआ तो वैराग्य युक्त हो राज्य का परित्याग कर देते थे और यहां तो चाँदनी छा गई फिर भी व्रतधारण के प्रति रुचि नहीं होती।''

तुलजारामजी का मस्तक नीचे झुक गया।

''जिनके अयोग्य आयु का बन्ध हो जाता है, उनके भी व्रत लेने के भाव नहीं होते।'' कहकर महाराज ने अपना वाक्य पूर्ण किया।

''महाराज हमारी छ: पीढ़ियों में मेरे सरीखा भाग्यशाली कोई नहीं हुआ।'' तुलजारामजी के स्वर में गर्वोक्ति नहीं आत्म-विश्वास था। ''इसी से तो आप समान श्रेष्ठ वीतरागी गुरु का सान्निध्य मिला।''

''बातों से कुछ नहीं होता।'' आत्म-प्रशंसा से विरक्त महाराज बोले ''कल्याण तो व्रतों से ही होगा।''

''अव्रती श्रावक भी तो स्वर्ग जाता है फिर व्रती बनने की क्या आवश्यकता?'' तुलजारामजी नियमित स्वाध्याय करते ही थे अत: अपने पक्ष के समर्थन में उनका मन आगम के संदर्भ भी ढूंढ लाया।

सामान्यत: तो जिनवाणी की ओर बहुत कम लोगों की रुचि हो पाती है। कारण बहुत सरल है जिन्हें ऊंचे स्थानों वाली कषायों का समागम प्राप्त होता है उन्हें आगम कैसे प्राप्त हो सकता है? जगत् में क्रोध को ही कषाय मानने की धारणा है। कभी अभिमान को और कभी-कभी मायाचार को भी कषाय मान लिया जाता है किन्तु लोभ का अतिरेक प्राय: हमें समझ ही नहीं आता। क्रोध, मान, माया, लोभ ये चारों एवं शास्त्रोक्त अन्य नो-कषायों की जब तक मंदता नहीं होती तब तक जीव को जिनवचन नहीं सुहाते। कषाय की हीनता एवं तीव्र पुण्योदय से कथंचित् किसी विरले जीव को दुर्लभ-जिनागम पर श्रद्धा हो भी जाए तब भी अनेकानेक लोग उसे अपनी कषायों की पुष्टिकरण का साधन बना लेते हैं। कुछ भोले प्राणी ऐसे भी होते हैं जो जिनागम पर विश्वास तो बहुत करते हैं किन्तु पूर्वाग्रह से ग्रसित हो आगम के हार्द को नहीं समझ पाते। फलत: जिनवचनों की अमूल्य निधियाँ पाकर भी वे जन्म-जन्मांतरों तक संसार की निर्धनता पाने के लिए अभिशप्त रहते हैं।

तुलजारामजी तो सरल हृदय थे, जिस पर वे महाराज को अपना आराध्य मानते थे। हाँ चारित्र मोहनीय के तीव्र उदय में व्रत-धारण नहीं हो पाता। महाराज के मन में भाव आए कि ''कहीं इन्हें ऐसा तो नहीं लग रहा है कि महाराज हम पर जबर्दस्ती क्यों करते हैं?'' अत: महाराज मुस्कुराते हुए बोले ''स्वर्ग जाते समय हमें साथी चाहिए।'' सभी के चेहरों पर स्मित छा गई।

महाराज की इन प्रेरणाओं और कर्म की मंदता आने पर कुछ काल पश्चात् न केवल सेठ तुलजाराम जी बल्कि सेठ चन्दूलाल जी एवं अन्य अनेक श्रावकों ने व्रतों को बड़ी निष्ठापूर्वक धारण कर लिया।

इस तरह अनेकानेक लोग महाराज की प्रेरणा एवं प्रभाव से व्रती बनते जा रहे थे। महाराज के प्रवास और विहार दोनों के समय भव्य जीवों को अनेक प्रकार से धर्म लाभ मिलता रहता था। बारामती चातुर्मास के उपरांत महाराज के कदम उत्तर-पश्चिम भारत की यात्रा पर बढ़ गए। बीच में महाराज का कुछ समय इंदौर भी प्रवास हुआ, जहां सरसेठ हुकुमचंद ने बड़े-बड़े नियमों को धारण किया। महाराज ने इंदौर से आगे विहार करते हुए पहले पावागढ़ फिर गोरल चातुर्मास किया।

अब तक द्वितीय विश्वयुद्ध की गूंज भारत में सुनाई पड़ने लगी थी। जर्मनी ने बड़ा साम्राज्य स्थापित करने की लालसा से प्रारंभ में पोलैंड पर हमला किया तो फिर यह क्रम बढ़ता ही चला गया एक ओर जर्मनी ने महाद्वीपीय यूरोप का बड़ा भाग अपने अधीन कर लिया था तो दूसरी ओर सोवियत रूस ने भी अनेक पड़ोसी राष्ट्रों को हथिया लिया था। एशिया में जापान भी धुरी राष्ट्रों की ओर से युद्ध में कूद गया। जापान ने यूरोपीय देशों एवं संयुक्त राज्य अमेरिका के आधिपत्य वाले क्षेत्रों पर हमला करते हुए कुछ ही समय में पश्चिमी प्रशांत पर अधिकार स्थापित कर लिया। फ्रांस की हार के बाद यूनाइटेड किंगडम के नेतृत्व से भारत भी एक तरह से इस युद्ध में शामिल हो गया।

महाराज यद्यपि राजनीति की बातों से दूर ही रहते थे, किन्तु दर्शनार्थ पधारे सरसेठ हुकुमचंद जी ने राजनैतिक विषय को छेड़ दिया।

''महाराज लाखों सैनिकों के अलावा लाखों की संख्या में सामान्य नागरिक मारे जा रहे हैं।'' उन्होंने चिंतित स्वर में कहा ''अक्ष-राष्ट्र संधि करके युद्ध विराम की घोषणा भी कर देते हैं किन्तु फिर संधि का उल्लंघन करते हुए पुनः युद्ध प्रारंभ कर देते हैं। दिन-प्रतिदिन उनका पलड़ा भारी होता जा रहा है। ब्रिटेन ने पहले भारत का शोषण किया अब जबर्दस्ती भारत को अपनी ओर से युद्ध में शामिल कर लेने से हम अक्ष-राष्ट्र के विरोधी कहलाए जा रहे हैं। यदि अक्ष-राष्ट्र विजयी होते हैं, जिसकी पूरी संभावना दिख रही है तब फिर भारत में भीषण नरसंहार को कैसे रोका जा सकेगा?''

''जो घटित नहीं हुआ, उसकी चिंता नहीं करनी चाहिए।''

''किन्तु महाराज राजनैतिक पर्यवेक्षकों का आकलन तो इसी ओर संकेत कर रहा है।'' सरसेठ ने अपनी चिंता की पुष्टि में कहा।

''नेहरूजी का क्या कहना है?''

सरसेठ को महाराज से ऐसे प्रश्न की अपेक्षा नहीं थी अत: उनके चेहरे पर विस्मय देख महाराज सहास बोले ''मैंने कुछ असंबंधित पूछ लिया है क्या?''

'' महाराज आपके उद्‌गार सीमित भले ही होते हैं किन्तु वे संबंधित भी होते हैं और सारगर्भित भी।'' सरसेठ आगे बोले ''नेहरू जी एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में ग्रेट-ब्रिटेन के साथ नाजी शक्तियों के विरुद्ध खड़े होने का समर्थन करते हैं।

''कुछ और भी कहना चाहते हैं।'' सरसेठ के संकोच को दूर करने के उद्‌देश्य से महाराज ने कहा।

''भारतीय राजनीति में नेहरू जी के समकक्ष एवं उनसे भी कद्‌दावर कई नेता हैं किन्तु आपने नेहरू जी का विचार पूछा?''

''भारत की बागडोर जिन हाथों में आने वाली हो, उसका अभिमत ही भारतीयों का अभिमत हो सकता है न?''

इस चर्चा को सुनने वाले सारे लोग स्तब्ध रह गए। वार्ता विश्वयुद्ध से भारतीय परिदृश्य की ओर मुड़ चुकी थी।

''महाराज के मुख से निकले वाक्य अन्यथा नहीं हो सकते हैं।'' सरसेठ के मन में, विचार शृंखला चल पड़ी। ''अर्थात् शीघ्र ही भारत स्वतंत्रता प्राप्त करने वाला है।'' सरसेठ रोमाञ्चित हो उठे।

''भारत के स्वतंत्र होने पर नेहरू जी भारत के राष्ट्राध्यक्ष?'' वार्ता में उपस्थित गेंदनमलजी संघपति ने महाराज के वाक्य का अर्थ निकाला। ''महाराज के पास हम वर्षों से आ-जा रहे हैं। न वे राजनैतिक पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ते हैं और न वे किसी से इन विषयों पर चर्चा करते हैं तब फिर ऐसी भविष्यवाणी?''

''महाराज की जैन-जैनतरों में बड़ी मान्यता है।'' निकट ही खड़े एक व्यक्ति के मन में विचार उठे ''दिल्ली प्रवास के समय नेहरू जी महाराज से मिले होंगे इसलिए महाराज को उनका नाम स्मरण में रहा आया होगा।''

''क्या नेहरू जी से पूर्व में आपकी भेंट हो चुकी है?'' मानो सरसेठ ने उस व्यक्ति की जिज्ञासा को भांप लिया था।

''न मैं नेहरू को जानता हूँ और न जिन्ना को, मिलने जुलने का तो प्रश्न ही नहीं है।''

''फिर आपने उनके बारे में ये जो भविष्यवाणी की है?'' सरसेठ के मन में संदेह किञ्चित भी नहीं था किन्तु जिज्ञासाएँ बहुत थीं।

''बस मेरे मन में आया और मैंने कह दिया।''

महाराज के इस वाक्य से यद्यपि इस विषय पर आगे कोई प्रश्न करने का साहस नहीं कर पाया। इसलिए सरसेठ ने ही मूलवार्ता की ओर गति कर दी। उन्होंने पुन: अपने वाक्य की पुनरावृत्ति की।

''महाराज नेहरू जी का अभिमत है कि भारत को एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में मित्र राष्ट्रों का साथ देना चाहिए।'' महाराज के चेहरे पर हास्य बिखर गया।

सरसेठ इसके मायने निकालने लगे। ''सच है किसी राष्ट्र का मुखिया उसे ही होना चाहिए जो उस राष्ट्र की स्वतंत्रता की इच्छा रखता है।''

''साथ ही उसके अंदर मानवीय संवेदना भी होनी चाहिए।'' संघपति भी अपने विचारों में खो गए थे। ''ध्रुव राष्ट्र भले ही शक्तिशाली दिख रहे हों किन्तु जो कभी विश्वगुरु का मुकुट धारण किए हुए था ऐसा हमारा भारत अन्याय के पक्ष में क्योंकर खड़ा होगा। मित्र राष्ट्रों का साथ देने से उसका नैतिक पक्ष अवश्य ही मजबूत होगा।''

''महाराज ये मारकाट, ये नृंशस हत्याएँ कब तक चलती रहेंगी? क्या कोई इसे रोक भी पायेगा? युद्ध में किसकी विजय होगी? किसकी पराजय?'' सरसेठ का करुण हृदय चीख उठा।

''चिंता मत करो।'' महाराज ने एक पटकथा लेखक की भाँति मानो आगे की कथा का चित्रण कर दिया। ''युद्ध प्रारंभ करने वाले पक्ष को जयश्री का लाभ नहीं मिल सकेगा।''

पुनः महाराज का विहार दक्षिण की ओर होने लगा। इस शृंखला में अकलूज, कोरोची, डिगरज एवं फिर कुंथलगिरि चातुर्मास हो गए। विश्व-युद्ध में भी समीकरण ऐसे बदले कि युद्ध की दिशा क्रमश: ध्रुव राष्ट्र से मित्र राष्ट्रों के पक्ष में होने लगी। एक ओर जापान नौसैनिक झड़पों में परास्त होने

लगा तो दूसरी ओर यूरोपीय ध्रुवीय ताकतें अफ्रीका में पस्त पड़ गयीं। जर्मनी को यूरोप में ही लगातार हार खानी पड़ रही थी। इटली पर मित्र राष्ट्रों ने आक्रमण कर दिया। सोवियत संघ को भी अपना हित मित्र-राष्ट्रों के खेमे में नजर आने लगा था अत: मित्र राष्ट्रों के संयुक्त प्रयासों से जहां फ्रांस का कब्जा युक्त क्षेत्र मुक्त हो गया वहीं बर्लिन पर कब्जा होते ही जर्मनी ने बिना शर्त आत्मसमर्पण कर दिया। महाराज के फलटण में चातुर्मास स्थापना होते ही एशिया में भी जापानी आत्म-समर्पण से 15 अगस्त 1945 को विश्व युद्ध समाप्त हो गया।

प्रसन्नता से भरे हुए वकील वेणीचंद शहा ने जब युद्ध समाप्ति की सूचना महाराज को दी तो इस समाचार को सुनकर प्रसन्न होने के स्थान पर उन्हें महाराज की मुखमुद्रा पर किञ्चित् म्लानता दिखी। ''महाराज आपकी भविष्यवाणी अक्षरश: सच हुई है फिर भी आप प्रसन्न नहीं दिख रहे हैं?'' वेणीचंद जी की जिज्ञासा ने शब्दों का रूप ले लिया।

''सुना है हजारों-लाखों की जनहानि हुई है?'' महाराज करुणा से ओतप्रोत दिख रहे थे।

''ध्रुवपक्ष के एक करोड़ बीस लाख और मित्र पक्ष के छह करोड़ दस लाख सैनिकों एवं नागरिकों की मृत्यु हुई है।'' वेणीचंद जी ने अंतर्राष्ट्रीय एजेंसीज द्वारा अनुमानित आंकड़े बतला दिए।''

''ओह।'' महाराज के मुख से आह निकल गई। ''जब इतने मनुष्यों का संहार हुआ तो पशु-पक्षियों की संख्या कितनी होगी?'' महाराज कुछ क्षण रुके फिर बोले ''प्रभुत्व स्थापित करने की दुराशा से चंद मनुष्यों के द्वारा युद्ध प्रारंभ होते हैं किन्तु उसका परिणाम?'' महाराज की दृष्टि मोतीचन्द कोठारी जी की ओर गई। ''अनगिनत जीवों का घात।''

महाराज का एक-एक शब्द अहिंसा की भावना से ओतप्रोत था। ''युद्ध के प्रारंभक कथंचित जीत जाते तो वे अपना विजयोत्सव कितने समय तक मना पाते?'' सभी तन्मय होकर महाराज का उपदेश सुन रहे थे। ''यमराज जब ललकारता है तब यह अस्पतालों की ओर दौड़ लगाता है। वहां शरण

नहीं मिलने पर मंदिर–मस्जिद, देवी–देवता, तंत्र–मंत्र सबसे याचना करता है किन्तु सृष्टि में कोई इतना समर्थ नहीं है जो कालबली से प्राणी की रक्षा कर सके। हाँ किन्तु यदि हम बाह्य शत्रुओं की अपेक्षा अंतरंग विकारों को जीतने में इतना पुरुषार्थ कर लेवें तब न केवल शाश्वत रूप से अमर हो सकते हैं, अपितु एकछत्र अंतरंग साम्राज्य के अधिपति होकर सदाकाल निराबाध आनंद का अनुभव कर सकते हैं।''

''किन्तु महाराज अंतरंग मुक्ति के साथ–साथ बहिरंग मुक्ति भी तो आवश्यक है।'' वेणीचंद जी ने अपनी वकीली बुद्धि का प्रयोग करते हुए, भारत की आजादी के संबंध में महाराज की भविष्यवाणी की अपेक्षा की।

महाराज के नेत्र बंद हो गए। होठों का संचालन पहिले ही रुक गया था। वकील साहब को लगा कि ''कहीं उन्होंने मर्यादा का अतिरेक तो नहीं कर दिया।'' उन्होंने क्षमा मांगने के लिए हाथ जोड़ लिए। वे कुछ बोलते कि उसके पूर्व उन्होंने देखा महाराज की दो अंगुलियाँ उठी हुई थीं। कोठारी जी सोच रहे थे कि ''ऐसी आशीर्वादात्मक मुद्रा तो पहले कभी नहीं देखी।''

देखते ही देखते कुछ ही समय में दिल्ली से लेकर लंदन तक भारतीय स्वतंत्रता के बारे में सारभूत चर्चाएँ होने लगीं। भारत की आजादी तय थी बस तिथि का निर्धारण होना था। भारतीय राजनेताओं और अंग्रेजी सत्ता की ओर से अनेक तारीखें प्रस्तावित हो रही थीं किन्तु दोनों पक्ष की सहमति नहीं हो पा रही थी। किन्तु जैसे ही 15 अगस्त 47 का प्रस्ताव आया सभी एकमत हो गए। भारत की स्वतंत्रता की घोषणा होते ही न केवल कोठारी जी अपितु समूचे भारतवर्ष को महाराज की दो अंगुली उठाने वाली मुद्रा का रहस्य ज्ञात हो गया। दो अंगुली दो वर्ष की समयावधि का संकेत थी। जन–समुदाय की यह दृढ़ श्रद्धा हो गई कि महाराज के ज्ञान में भविष्य स्पष्ट झलकता है। इस अवसर पर सोलापुर में चातुर्मास कर रहे महाराज के पास जब फलटन वालों की मंडली पहुँची तो महाराज के मुखमण्डल पर एक बार पुनः वैसी ही म्लानता दिखी जैसी द्वितीय विश्व–युद्ध की समाप्ति के उपरांत दिखी थी।

''हाँ भारत का विभाजन वैसे भी एक बड़ी विभीषिका से कम नहीं था, उसमें भी दिन-प्रतिदिन उग्र होती हिंसा।'' वकील साहब सोच रहे थे कि ''जब हम जैसे सामान्य मनुष्य भी दु:खी हैं तब तो ये करुणा के सागर ही हैं।'' वकील साहब ने अपने विचार महाराज के समक्ष अभिव्यक्त कर दिए।

महाराज ने दीर्घ नि:श्वास छोड़ा।

''जैन धर्म पर भी संकट की आहट सुनाई दे रही है। महाराज की चिंता ने अंतत: शब्दों का रूप ले ही लिया। क्षण एक के लिए सभी स्तब्ध हो गए। ''महाराज किससे और कैसा संकट?'' कोठारी जी ने पूछा।

''शासन से।''

''जब अंग्रेजी हुकूमत थी, तब तो कथंचित इसकी संभावना बनी रहती थी किन्तु आपकी तपस्या और पुण्य के प्रभाव से वैसा कुछ नहीं हुआ।'' वकील साहब बोले ''अब भारतीय सत्ता स्थापित होने पर, जैन धर्म पर संकट?'' वकील साहब ने जैसे महाराज के समक्ष ही प्रश्न खड़ा कर दिया।

''वह सब तो मुझे अधिक नहीं पता। हमारे पास कोई अवधिज्ञान नहीं है कि हम भविष्य की घटनाओं को यथावत बतला सकें किन्तु हमारे मन में सहज ही जो बात आयी वह हमने कह दी।''

फलटण में महाराज का चातुर्मास प्रारंभ ही हुआ था कि समाचार मिला। ''सांगली में कुछ जैनेतर व्यक्तियों ने बम्बई सरकार के एक कानून का सहारा लेकर गलत उद्देश्य से जबर्दस्ती जैन-मंदिर में प्रवेश किया है।'' महाराज की आशंका सत्य सिद्ध होने लगी।

फलटण समाज ने भी महाराज को अवगत कराया कि ''कुछ समय पूर्व यहां के धर्मांध जैनेतरों ने एक ऐतिहासिक जैन मंदिर को हड़प लिया है।'' परिस्थितियां बिगड़ रही थीं किन्तु अहिंसा प्रिय जैन शांत थे। जैनों की इस अहिंसा को धर्मांधों ने कायरता समझ लिया अत: उन्होंने खुले मंचों से कहना प्रारंभ कर दिया। ''साँप सोडावा पण जैन मरावा—साँप को भले ही छोड़ दो किन्तु जैनियों का अवश्य ही संहार करो।''

इस समय एक विशेष प्रबुद्ध वर्ग ने अपनी सोच महाराज के समक्ष रखी। ''बुद्धिमानी इसी में है कि बहुसंख्यकों से मिलकर रहें। हवाओं का

रुख जैनों के विपरीत है अत: बहुसंख्यकों में विलीन हो जाने में ही सार है।''

''धर्म पर आक्रमण होते देख पीछे हट जाना बुद्धिमानी नहीं कायरता है।'' प्रबुद्धों की इस निम्न सोच से असंतुष्ट महाराज के मुख से अनायास ही निकल गया।

''महाराज जिनेन्द्र का धर्म मात्र जैनों के लिए तो नहीं है। चतुर्थ काल में जब तीर्थंकरों का विचरण होता था और इसी पंचम काल का पिछला इतिहास इस बात की पुष्टि करता है कि जो जैन नहीं हैं वे भी जैन धर्म को धारण करते रहे हैं फिर कोई भी मंदिर आवे-जावे, हमें आपको विरोध क्यों होना चाहिए।'' प्रबुद्धों ने बड़ा सशक्त तर्क दिया था कथंचित ऐसा तर्क तो विरोधी वकील भी कोर्ट में नहीं दे पाया था।

''जिनकी जिनदेव पर आस्था है जैन धर्म उनका है और वे जैन ही हैं। जैनों के लिए एक आचरण-संहिता होती है। वे श्रद्धापूर्वक भक्ति के साथ-साथ, शुद्धि-अशुद्धि का ध्यान रखते हुए विवेक पूर्वक उनकी पूजा-अर्चना करते हैं। जैन-मंदिर, जैन नीति-निर्देशों का पालन करने वालों के स्थान हैं, बलात् प्रवेश कर आधिपत्य वालों के नहीं।'' महाराज की वाणी में ओज था।

''किन्तु महाराज हमारे बहुतेरे रीति-रिवाज एक जैसे हैं। हमारी और उनकी पूजा-पद्धति में अनेक समानताएँ हैं। राम, हनुमान आदि अनेक महापुरुष दोनों जगह पूजे जाते हैं। आदिनाथ भगवान को ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि नामों से संबोधित किया जाता है तब फिर जैन धर्म को पृथक सिद्ध करने का आग्रह क्यों?'' प्रबुद्ध भी यथार्थ में प्रबुद्ध ही थे जो उनके तर्कों से स्पष्ट हो रहा था।

''स्त्री जाति सामान्य की अपेक्षा से माता भी स्त्री है और पत्नी भी किन्तु भावपक्ष से दोनों में आकाश-पताल का अंतर है।'' जहां बुद्धिजीवियों की तर्कणाएँ समाप्त होती थीं वहां से महाराज की सोच प्रारंभ होती थी। महाराज ने अपनी बात को आगे स्पष्ट किया ''परंपराओं में समानता दिख सकती है, नाम एक जैसे हो सकते हैं किन्तु भावपक्ष में आमूल-चूल भेद-भिन्नता है। जैन आम्नाय में जिस ईश्वर की मान्यता है वह सृष्टि का कर्ता या व्यवस्थापक नहीं है एवं अन्य मतों से हटकर सृष्टि को स्वत: परिणमनशील

मानने वाले शास्त्र ही यहां पूज्य हैं। जैनों के यहां ऐसा नहीं है कि अमुक ही परमात्मा है बल्कि वीतरागता, सर्वज्ञता आदि गुणों का धारक जो भी है वह परमात्मा है, अत: यहां हर एक के पास परमात्मा बनने का मार्ग खुला हुआ है। यथार्थ में हमारे यहां परमात्मा की आराधना परमात्मा बनने के लिए ही की जाती है।''

''फिर भी महाराज तालाब में रहकर मगर से बैर क्यों करना?'' उपदेश की पूर्णता पर एक प्रबुद्ध ने अपनी राय दी।

''जब तक मंदिर हैं तब तक जैन धर्म है। प्रतिमाजी हमारे प्राण हैं। धर्म का लोप देखते हुए हम चुप कैसे रहें? यदि गृहस्थ अपने कर्तव्यों से विमुख होते हैं तब फिर साधु वर्ग को ही कुछ करना होगा।''

महाराज के इस रूप को देखकर वे सभी घबरा गए।

महाराज सोच रहे थे। ''ये लोग ऐसे आगे आने वाले नहीं है ?''

''तो कैसे आगे आयेंगे ?'' महाराज की छाया प्रकट हो गई।

महाराज ने उसे एक दृष्टि देखा और फिर नेत्र बंद कर लिए।

''मुनि की अपनी मर्यादाएँ होती हैं।'' छाया ने महाराज को जैसे स्मरण कराया।

''जो मुनि नहीं हैं, उनके कोई कर्तव्य नहीं हैं क्या?''

उसने महाराज को इतना अशांत पहले कभी नहीं देखा था। ''क्या करें बेचारे घर-गृहस्थी वाले हैं। उन्हें आगे-पीछे भी तो सोचना पड़ता है।''

''लगता है तुम धर्मान्धों की प्रतिनिधि बनकर आयी हो।''

''जब मन अशांत होता है तब बुद्धि ढंग से काम नहीं करती।'' छाया ने कुछ ऊंचे स्वर में कहा। लेकिन फिर मृदु भाषा में समझाते हुए बोली ''नीति है-जैसी चले बयार पीठ पुनि तैसी कीजे।''

''हमें अपने बाप का नाम लेने पर फांसी दे दी जाए या गोली ही क्यों न मार दी जाए, हमें स्वीकार है किन्तु डरकर दूसरे को अपना बाप नहीं बोलेंगे।''

छाया महाराज का नया अवतरण देख विस्मित थी, वह बोली ''आपकी

उग्रता सिद्ध कर रही है कि आप हिंसा का भी सहारा ले सकते हैं?''

महाराज ने छाया को तिरछे नेत्रों से देखा।

''यावत्-जीवन के लिए अहिंसा महाव्रत का संकल्प लिया था?'' छाया ने व्यंग्यात्मक शैली में कहा ''निज चेतन तीर्थ को खण्डित करके जड़ मंदिरों की सुरक्षा का उद्यम? कहीं यह मार्ग से स्खलन तो नहीं है?''

छाया का प्रश्न बहुत गहरा था किन्तु महाराज ने धर्म को बहुत गहराई से समझा भी था और धारण भी किया था। ''जो परम शुद्धोपयोग एवं शुक्ल ध्यान की सामर्थ्य रखते हैं ऐसे महामुनियों के उपयोग में यदि जैन धर्म के संकट की बात आ जाती है तो वे भी धर्मरक्षा के बावत् शस्त्र धारण कर लेते हैं तब यदि मैं उनका अनुसरण कर सकूँ तो यह मेरे जीवन की सार्थकता होगी।''

''विष्णुकुमार मुनिराज से प्रतिस्पर्धा करेंगे।'' छाया हंसी फिर बोली ''वे चतुर्थकालीन चरम शरीरी मुनि थे, गुणस्थानों से गिरकर भी उन्हें उठना ही था अत: भावुक होकर नकल करने के स्थान पर बुद्धि-विवेक का प्रयोग कीजिए, शांतिसागरजी।''

''आदर्शों से प्रतिस्पर्धा नहीं की जाती, वे तो प्रेरणा स्रोत होते हैं, जिनका अनुसरण अनुकरणीय होता है। धर्म-रक्षा के लिए यदि गुणस्थान से पतित होना भी पड़े तो यह खेद का विषय नहीं है। पतंग को ऊंचे उड़ाना है तो बीच-बीच में नीचे खींच लेना उसकी ऊंची उड़ान में सहायक ही होता है। जिनाज्ञा की डोर से बंधी हुई यह आत्मा रूपी पतंग पुन: गुणस्थानों की ऊंचाई प्राप्त कर लेगी किन्तु यदि जिनाज्ञा की डोर टूट गई तो न केवल पतंग कटकर नीचे गिर जायेगी बल्कि वह दोबारा कब उड़ पायेगी कुछ कह नहीं सकते। जिन धर्म से विमुख होकर वह सप्तम से प्रथम गुणस्थान में जा गिरेगा, फिर पता नहीं उन्नति की यात्रा में कितने भवों की प्रतीक्षा करनी पड़ जाए।''

छाया इस संपूर्ण वार्ता में महाराज की दृढ़ इच्छा शक्ति से प्रभावित हुई और इस बात को लेकर आश्वस्त भी हुई कि धर्म-रक्षा के लिए वे जो भी

करेंगे, शास्त्रानुकूल ही करेंगे।''किन्तु आप क्या करेंगे ?'' उसने विनम्रतापूर्वक अपनी जिज्ञासा रख दी।

''जब तक बंबई कानून से आई हुई विपत्ति, जैनधर्म के आयतनों-जिनमंदिरों से दूर नहीं होती, तब तक मैं अन्न ग्रहण नहीं करूंगा।''

''नहीं।'' छाया से ही नहीं, जिसने सुना उसके मुख से प्रथम बार यही एक शब्द निकला।''महाराज को इतनी कठोर प्रतिज्ञा नहीं लेनी चाहिए थी।''

महाराज का संकल्प सुनकर अनेक विशिष्ट लोगों का महाराज के पास आगमन हो रहा था। कुछ लोग महाराज के समर्थन में नहीं थे ऐसे ही एक समूह का यह भाव था कि ''महाराज की इच्छा तीन जन्म में भी पूरी नहीं हो सकेगी।''

''अभी जैनधर्म का लोप नहीं होगा। ऐसी भगवान की वाणी है वह त्रिकाल में भी मिथ्या नहीं हो सकती।'' महाराज की दृढ़ता एवं आत्म-विश्वास देखकर वह समूह चकित था। महाराज आगे बोले ''जब जैन धर्म का लोप होगा तब दुनिया से सब धर्मों का भी लोप हो जायेगा। मुझे समझाने से बेहतर होगा लोग अनावश्यक नियमों को बनाने वालों को समझाएँ।'' कहकर महाराज ने तो मौन धारण कर लिया किन्तु भारतवर्ष के जैन-समाज में विप्लव सा आ गया।

प्रमुख जैन-बंधुओं ने बंबई में शीघ्र ही एक बैठक की। तदोपरांत सरसेठ भागचंद सोनी, सेठ राजकुमारजी इंदौर एवं पं. सुमेरचंद दिवाकर, श्री तलकचंद शाह वकील के साथ महाराज के पास फलटण पहुँच गए।

''महाराज अभी तक हम सोच रहे थे कि कार्य लगभग असंभव है किन्तु अब जब आपने इस कार्य का होना सोच लिया है तब यह अवश्य पूर्ण होगा।'' सोनी जी ने विनम्रतापूर्वक मानो भूमिका बनाई।

''महाराज राजनीति का यंत्र बड़ी धीमी गति से चलता है।'' राजकुमार जी ने सोनी जी की बात को आगे बढ़ाते हुए कहा ''विधायिका द्वारा बनाए गए नियमों में संशोधन वैधानिक पद्धति से ही होगा।'' राजकुमार जी ने वकील साहब की ओर दृष्टि कर दी, वकील साहब ने भी उनकी बात का

संकेतों में समर्थन किया। साथ ही उन्होंने दिवाकर जी को डॉ. राजेंद्र प्रसाद जी, अध्यक्ष भारतीय गणतंत्र शासन द्वारा प्राप्त समाचार का भी उल्लेख किया। ''प्रिय सुमेरचंद आपका तार मिला, मैंने उसे राजकीय मंत्रिमंडल के पास उचित जाँच तथा कार्यवाही निमित्त भेज दिया है।''

''किन्तु महाराज यह कार्य समय-साध्य है अत: आप अन्न ग्रहण कर लीजिए।'' दिवाकर जी ने निवेदन किया। ''संपूर्ण समाज आपकी इच्छा और निर्देशानुसार कार्य करेगा।''

''हमने जिनेंद्र प्रभु के समक्ष जो नियम लिया है क्या उसे तोड़ दें?''

महाराज के इस वाक्य से वहां क्षण एक के लिए सन्नाटा छा गया। ''यदि यह धर्मसंकट दूर न हुआ तो इस जन्म में हम अन्न ग्रहण न करेंगे। इस देह का अंत इसी तरह होगा।''

वातावरण बहुत गंभीर हो चुका था अत: दिवाकर जी ने अपने वाक्-कौशल का प्रयोग किया। ''महाराज यदि आप इस जन्म में अन्न ग्रहण नहीं करेंगे, (जो जैन-समाज होने नहीं देगा) तो अगली पर्याय में भी अन्न-ग्रहण नहीं होगा।''

महाराज के मुखारविंद पर हास्य बिखर गया। उपस्थित लोग भी समझ गए कि महाव्रतों के साथ यदि देह परिवर्तन होता है तो देव पर्याय ही प्राप्त होती है।

निरंतर प्रयास करते रहने पर कुछ ही समय उपरांत जबलपुर आगमन पर डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जी से दिवाकर जी की भेंट हो गई।

''महान तपस्वी साधक जैनाचार्य शांतिसागर जी ने आप के लिए आशीर्वाद भेजा है।'' दिवाकर जी ने वार्ता का प्रारंभ किया।

''आचार्य महाराज को हमारा प्रणाम कहिये। ऐसा कहते हुए डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जी के दोनों हाथ जुड़ चुके थे। दिवाकर जी एवं उनके साथ गया प्रतिनिधि मंडल प्रसाद जी की विनम्रता और गुरुभक्ति से बड़ा प्रभावित हुआ। प्रसाद जी मुस्कुराते हुए आगे बोले ''शास्त्री जी महाराज मात्र जैनों के नहीं, सभी के गुरु हैं।''

दिवाकर जी का मन प्रसन्नता से भर गया। उन्हें लगा कि ''इनके माध्यम से निश्चित ही आचार्य महाराज का ध्येय पूर्ण हो सकेगा।''

''जैनधर्म पर कभी संकट नहीं आयेगा। बंबई कानून के विषय में हम विचार करेंगे।'' प्रसाद जी ने अत्यंत आग्रह पूर्वक कहा ''महाराज से अन्न ग्रहण करने अनुरोध करिये।''

दिवाकर जी ने जब यह समाचार देते हुए महाराज से प्रार्थना की तो महाराज बोले ''निश्चित ही देश के प्रथम पुरुष के कथन आशावादी हैं किन्तु एक बार नीति-निर्माताओं का मन्तव्य भी तो जान लेवें।''

महाराज के वाक्य से दिवाकर जी महाराज का दृष्टिकोण समझ गए अत: वकील तलकचंद के साथ वे मुंबई सरकार के गृहमंत्री से मिले। मंत्री जी ने भी आदरणीय प्रसाद जी की तरह आचार्य महाराज से अन्न ग्रहण कर लेने का संदेश दिया साथ ही उन्होंने सरकारी मत दुहरा दिया। इस कड़ी में आरा की पंडिता चंदाबाई, मुख्यमंत्री बंबई सरकार से मिलीं किन्तु बहुत सकारात्मक परिणाम नहीं मिले।

महाराज द्वारा अन्न त्याग किए हुए एक वर्ष हो चुका था अत: सरकारी उदासीनता के विरुद्ध कवलाना से लेकर कन्याकुमारी तक जैन समाज की देशव्यापी हड़ताल हुई किन्तु हाथ कुछ नहीं आया। अन्न त्याग से महाराज का शरीर क्षीण होता जा रहा था, ऐसे में एक दिन उनका शरीर निश्चेष्ट होने लगा। सांस की गति इतनी मंथर हो गई कि वह चल भी रही है कि नहीं कह पाना मुश्किल हो गया। कुछ समय के लिए शरीर ठंडा भी पड़ गया किन्तु फिर वैद्यों के कुशलतापूर्वक उपचार एवं समाज के प्रबल पुण्योदय से महाराज सोए हुए से जाग्रत हो गए।

आचार्य महाराज द्विगुणित ऊर्जा के साथ लक्ष्य प्राप्ति के लिए संकल्पबद्ध हो गए। वे शांति से समग्र स्थिति पर मंथन करते हुए अनेक प्रभावशाली लोगों पर विचार कर रहे थे कि तभी यकायक महाराज के स्मृतिपटल पर शिरगूरकर पाटील का नाम कौंधा जिनकी कांग्रेस में अच्छी पैठ थी। शिरगूरकर जी एक सच्चे गुरु भक्त थे अत: महाराज की इच्छा ज्ञात होते ही वे तत्काल महाराज

के पास रावलगांव (नासिक) पहुँच गए।

महाराज ने समग्र स्थिति की विवेचना करते हुए सार रूप में कहा ''जैनियों की जो स्थिति बम्बई सरकार के संविधान में है, वही स्थिति कहीं केंद्र सरकार में भी न हो जाए अत: भारत के संविधान पारित होने के पूर्व केंद्र सरकार को अपने पक्ष में लेने की भी पहल करनी चाहिए।''

''जी इस संदर्भ में बाबा साहेब जी से शीघ्र ही मिलता हूँ।''

''तुम अंबेडकर जी के अत्यंत विश्वसनीय व्यक्ति हो अत: वे तुम्हारी बात अवश्य समझेंगे किन्तु...।''

शिरगूरकर जी महाराज का आशय समझकर बोले ''महाराज आपके आशीर्वाद से प्रधानमंत्री जवाहरलाल नहेरू जी से मुलाकात का प्रबंध भी कर लेंगे किन्तु...।''

इस बार किन्तु भक्त की ओर से था। महाराज ने शिरगूरकर जी के प्रति आत्मीयता दर्शाते हुए सस्नेह कहा ''संकोच मत करो।''

''महाराज मैं राजनीतिज्ञ हूँ जैन विद्वान नहीं।'' शिरगूरकर जी ने निवेदन किया ''इस कार्य की सफलता हेतु हमें एक विद्वान की आवश्यकता होगी। वह विद्वान न केवल जैन धर्म का ज्ञाता हो अपितु अपने विषय के प्रस्तुतीकरण में व्यवहार कौशल्य का पुंज हो तथा शब्द सामर्थ्य से समृद्ध हो। शिरगूरकर जी कुछ रुककर आगे बोले ''महाराज वह निर्भीक वृत्ति वाला भी होना चाहिए।''

''ऐसा क्यों?'' महाराज के चेहरे पर लक्षित इस भाव को समझकर शिरगूरकर जी बोले ''इस प्रतिनिधि को सामान्य राजनीतिज्ञों से नहीं अपितु कैबिनेट मंत्री मौलाना आजाद एवं बाबा साहेब अंबेडकर जैसे प्रभावशाली व्यक्तित्वों को अपने तथ्यों से प्रभावित करना होगा तभी प्रधानमंत्री नेहरू जी से मुलाकात संभव हो सकती है। और फिर नेहरू जी स्वयं षड्दर्शन ज्ञाता एवं वाद-कुशल व्यक्तित्व हैं।''

इस परिस्थिति में महाराज के मन में एक ही नाम उभर कर सामने आया और वह नाम था पं. तनसुख लाल काला नांदगांव।

आचार्य महाराज का आशीर्वाद प्राप्त कर शिरगूरकर जी के साथ पंडित जी 23-11-1949 को दिल्ली पहुँच गए। सप्तम प्रतिमा का निर्दोष रीति से पालन करते हुए, कार्य की सफलता मिलने तक सन्ध्याकालीन अन्न त्याग की दृढ़ प्रतिज्ञा कर वे अपने कार्य में जुट गए। पंडित जी के प्रस्तुतीकरण से न केवल उपरोक्त नेता अपितु रक्षा मंत्री, कांग्रेस अध्यक्ष एवं स्वयं महामहिम राष्ट्रपति भी प्रभावित हुए। बीच के काल में सभाओं द्वारा जन-जागरण एवं सामाजिक स्तर पर एक सुदृढ़ माहौल बनाने का भी कार्य चलता रहा। अंततः संविधान लागू होने के एक दिवस पूर्व 25 जनवरी 1950 को माननीय प्रधानमंत्री जी से भेंट हो ही गई। इस वार्ता में उपरोक्त गणमान्यों एवं अन्य 18 सदस्यीय प्रतिनिधि मंडल में क्षुल्लक श्री सूर्यसिंह जी की भी गरिमामयी उपस्थिति रही। पौराणिक, पुरातात्त्विक एवं वर्तमान कालिक साक्ष्यों के परिप्रेक्ष्य में 42 बिन्दुओं के आधार पर कालाजी के कालजयी प्रस्तुतिकरण से नेहरू जी पूर्णतः संतुष्ट हो गए फलतः उनके मुख से ये शब्द मुखरित हुए **''जैन कभी भी हिन्दू नहीं थे और न हो सकते हैं।''**

कुछ ही दिनों के उपरांत प्रधानमंत्री कार्यालय से शिरगूरकर जी के नाम एक पत्र प्रेषित हुआ, जिसमें संविधान के आर्टिकल 25 धारा 2 के मंतव्य को स्पष्ट करते हुए यह कहा गया कि ''जैनधर्म हिन्दू धर्म से सर्वथा भिन्न है जिसे संविधान में भी पृथक रूप से स्पष्टतया दर्शाया गया है।''

कुछ समय के पश्चात इसी बात के समर्थन में प्रधानमंत्री कार्यालय से एक दूसरा पत्र पंडित काला जी को भी प्राप्त हुआ।

उपरोक्त कड़ी में केंद्र सरकार के गृहमंत्री सरदार पटेल जी की ओर से जनगणना आयोग को यह निर्देश दिए गए कि जैनों की गणना हिन्दुओं से पृथक करने के लिए जैनों का एक स्वतंत्र कालम जोड़ा जाए।

इन सब सकारात्मक घटनाओं से यह स्पष्ट हो गया था कि जैन धर्म को हिन्दू धर्म में शामिल करने की कुछ साम्प्रदायिक लोगों की दुराशा अब सफल नहीं होगी अतः चारों ओर उत्साह का वातावरण निर्मित हो गया किन्तु आचार्य महाराज ने सभी को अपने संकल्प पूर्ण हो जाने की स्वीकृति देकर भी स्वयं अन्न त्याग का संकल्प जारी रखा। महाराज बड़े निमित्तज्ञानी थे, उन्हें

जैसे अभी निकट भविष्य का संकट स्पष्ट दिख रहा था। केन्द्र सरकार के इतने स्पष्ट निर्देशों के उपरांत भी बंबई (वर्तमान मुंबई) सरकार की ओर से पुन: जैनधर्म को हिन्दू धर्म के अंतर्गत मानने वाले विषय को हवा दी जा रही थी। इस परिस्थिति में प्रधानमंत्री जी से मुलाकात संभव न हो सकने की स्थिति में जब राष्ट्रपति पद पर सुशोभित हो चुके माननीय डॉ. राजेंद्र प्रसाद जी से पुन: इस विषय में हस्तक्षेप करने का निवेदन किया तो उनकी ओर से इस प्रकार उत्तर मिला। ''इस विषय में राष्ट्रपति की हैसियत से वे प्रत्यक्ष रूप से कुछ नहीं कर सकेंगे। इस संबंध में आपको भारत सरकार से निवेदन करना चाहिए।'' माननीय प्रसाद जी से ही सबसे अधिक आशा थी किन्तु उनके इस समाचार से समाज में निराशा व्याप्त हो गई। समाज के अंदर के विरोधी लोग जो ढीले पड़े हुए थे वे पुन: हावी होने लगे। आपसी मतभेदों का लाभ उठाकर धर्मांध एक बार पुन: उग्र होने लगे। एक रात उन्होंने शासन का सहयोग लेकर अकलूज के जैन मंदिर का ताला तोड़ दिया। इस दुर्घटना की भर्त्सना और विरोध करने वालों को गिरफ्तार कर लिया गया। उस समय ऐसा लग रहा था कि स्वतंत्र भारत में जैन समाज परतंत्र हो गया है। अब एकमात्र न्यायालय से ही आशा शेष रह गई। बंबई में जैन महासभा की बैठक हुई तो उसमें न्यायालयीन कार्यवाही के लिए सर्व सम्मति बन गई। कलकत्ता निवासी सेठ गजराज जी गंगवाल ने महाराज के समक्ष संकल्प लिया कि ''इस कार्यवाही में जो भी खर्च आयेगा वे वहन करेंगे।''

श्री गजराज जी के सहयोग से पटना के प्रसिद्ध वकील श्री पी.आर. दास ने इस केस को लड़ना स्वीकार कर लिया। वे पूर्व में भी इस तरह का एक केस जीत चुके थे अत: जैन समाज को उनसे बड़ी आशा थी। दास बाबू के परामर्श पर केस सुप्रीम कोर्ट के स्थान पर बंबई हाई कोर्ट में दर्ज कराया गया।

इस रात्रि महाराज को स्वप्न आया। ''एक मुर्दे का दाह-संस्कार चल रहा है। बहुत लोग सूखी लकड़ियाँ डालकर उसे जलाने का प्रयत्न कर रहे हैं किन्तु वह पूरी तरह जल नहीं पा रहा है। वह मुर्दा उनके निकट आने लगा।

इस दृश्य को देखकर लोग चकित हो गए।''

महाराज ने उसे ऊपर से नीचे तक अच्छी तरह से देखा।

फिर उन्होंने भी उस पर एक छोटी सी लकड़ी डाल दी। वह कुछ ही समय में भस्म हो गया।

उन्होंने जब स्वप्न लोगों के समक्ष रखा तो एक ज्योतिषाचार्य ने उसका अर्थ इस प्रकार बतलाया।

''वह जैन धर्म पर संकट का शव है। सभी के अथक प्रयत्न करने पर भी वह संकट समाप्त नहीं होगा। अंत में आचार्य महाराज की विशुद्धि की शक्ति से वह संकट पूरी तरह समाप्त हो जायेगा।''

महाराज स्वप्न के फल को स्वयं जानते थे तथा ज्योतिषाचार्य के कथन से संतुष्ट थे किन्तु वे आत्म-प्रशंसा से परहेज करते थे अत: बोले ''अभी धर्म-ध्वंस का समय नहीं आया है। अभी तो हजारों वर्षों तक जिनधर्म की ध्वजा पताका लहराती रहेगी। आप सभी के पुरुषार्थ और पुण्य के योग से इस संकट को दूर होते देर न लगेगी।''

यहां चर्चा चल ही रही थी कि वहां गजराज जी का यह संदेश आ गया कि 24 जुलाई की तारीख मिली है। नियत तारीख पर माननीय मुख्य-न्यायाधीश मोहम्मद अली करीम चागला तथा माननीय न्यायधीश श्री गजेन्द्र गडकर की बेंच में केस पर सुनवाई प्रारंभ हुई। महाराज ने पिछले तीन दिनों से अखण्ड उपवास धारण किया हुआ था। इधर उपवास के समय में ध्यान लीन रहने वाले महाराज निरन्तर जिनेन्द्र प्रभु की भक्ति में लगे हुए थे और उधर कोर्ट में आज की सुनवाई से ऐसा लग रहा था कि केस हाथ से छूटा जा रहा है। सुनवाई के दौरान उपस्थित प्रतिनिधि मंडल अत्याधिक निराश हो चुका था। दास बाबू की शैली भी वैसी ही सांत्वनापूर्ण थी जैसी कि असफल होने पर प्राय: वकीलों की हो जाती है। मध्याह्न की सामायिक के उपरांत महाराज ने पुन: अत्यंत विशुद्धिपूर्वक भगवान का नाम स्मरण प्रारंभ किया ''**अद्यापि यस्याजित शासनस्य सतां प्रणेतुः प्रतिमंगलार्थं**'' पूज्यवर

समंतभद्र आचार्य का यह कथन अन्यथा नहीं हो सकता है। महाराज का हृदय भक्ति के रस से भीग गया। बाह्य परिस्थिति से हटकर उनका चित्त पूरी तरह प्रभु की आराधना में एकीकृत हो गया।

इधर कोर्ट में लंच के पश्चात् जब कार्यवाही प्रारंभ हुई तो परिस्थितियाँ कुछ बदली हुई लगने लगीं। दास बाबू की ओर से जैनों का पक्ष सुनने के उपरांत मुख्य न्यायधीश ने सरकार की ओर से उपस्थित एडवोकेट जनरल की ओर रुख किया। ''आप अभी कुछ कहना चाहेंगे?''

एड. जनरल ने सरकारी नियम के समर्थन में अपना पक्ष रखा तो लंच पूर्व जिस तर्क से जज संतुष्ट दिख रहे थे अब रुष्ट हुए दिखे। ''क्या आपके कानून का यह अभिप्राय है कि जो संप्रदाय, प्राचीनकाल से चला आ रहा है, उसे जरा सी कलम चलाकर समाप्त कर दिया जाए?'' मुख्य न्यायधीश ने बड़ी दृढ़ता के साथ कहा कि ''भारतीय संविधान के तहत बनाये गए कानून का यह मन्तव्य कदापि नहीं हो सकता है कि एक पक्ष विशेष के लिए बनाए गए कानून द्वारा दूसरे पक्ष को हानि पहुँचाई जाए।''

मुख्य न्यायधीश ने जैन पक्ष के समर्थन में अपना फैसला सुना दिया। जस्टिस गडकर जी ने भी कुछ समय पूर्व सोलापुर कलेक्टर के कृत्य की भर्त्सना करते हुए उन्हें फटकार लगाई थी। ''श्री एडवोकेट जनरल, यह बतलाइये कि आपके कलेक्टर को जैन मंन्दिर का ताला तोड़कर 8 बजे रात में जैनेतरों को मंदिर में ले जाने का अधिकार किसने दिया।'' उन्होंने अपना वाक्य समाप्त करने के पूर्व हिदायत देते हुए कहा ''कलेक्टर का कार्य कानून के अनुसार ठीक नहीं था अत: भविष्य में उनके अथवा किसी अन्य के द्वारा ऐसे किसी कृत्य की पुनरावृत्ति नहीं होनी चाहिए, अन्यथा इसकी जिम्मेदारी सरकार की होगी।''

हाईकोर्ट का निर्णय सुनते ही सब दंग रह गए। कानून के बड़े-बड़े विशेषज्ञ भी चकित थे कि एकदम विपक्ष में जाने वाला निर्णय पक्ष में कैसे हो गया। जैन-समाज में आश्चर्य मिश्रित आनंद की लहर व्याप्त हो गई। आचार्य

महाराज तो यह समाचार सुनकर ऐसे प्रमुदित हुए कि जैसे कभी भगवान महावीर स्वामी को प्रथम बार देखकर गौतम स्वामी हुए थे।

समाचार देने के उपरांत तलकचंद जी ने कहा महाराज ''इस असंभव से दिखने वाले महान कार्य में यदि सफलता मिली है तो वह आपकी भक्ति, तपस्या और साधना का ही प्रभाव है।''

''हमारा कुछ नहीं है।'' महाराज कृतज्ञता सी ज्ञापित करते हुए बोले ''यह सब तो वीर प्रभु की कृपा, सहस्रों नर-नारियों द्वारा धारण किये गए व्रतादि एवं धर्म के लिए समर्पित कर्तव्यनिष्ठ श्रावक श्रेष्ठियों के अहर्निश श्रम का परिणाम है।''

महाराज की निरहंकारिता देखकर उपस्थित जन-समुदाय का श्रद्धा से माथा झुक गया। सभी विनीत श्रावकों को आशा थी कि अब महाराज अन्न-आहार करने लगेंगे किन्तु ऐसा नहीं हुआ तब दिवाकर जी ने कहा ''महाराज सेवा करने वाला, काम पूरा होने के बाद मजदूरी की अपेक्षा रखता है।''

''अच्छा!'' महाराज सस्मित बोले।

''आपके अन्न-त्याग के साथ ही हम लोग अपने सारे काम-काज बंद कर एक मात्र, आपकी भावना पूर्ण करने में जुट गए थे। अब आपकी इच्छानुरूप सफलता मिल चुकी है अतः आप अन्न ग्रहण कर हमें कृतार्थ करें, यही हमारी मजदूरी है।''

महाराज के मुखमंडल पर एक आकर्षक मुस्कान फैल गई। लंबे समय से महाराज की सन्निधी में रहने वाले सभी गुरुभक्त समझ गए कि महाराज अभी कुछ दिन और अपनी साधना जारी रखेंगे। फिर 1105 दिन के अन्न त्याग के उपरांत आचार्य महाराज जब पड़गाहन को निकले तो ऐसा लगा कि आज यथार्थ रक्षा-बंधन है। सेठ चंदूलाल जी को यद्यपि महाराज के पड़गाहन का सौभाग्य मिला था किन्तु उन्होंने आज बारामती वासियों को ही नहीं संपूर्ण भारतवर्ष से उपस्थित श्रेष्ठियों को अपने परिवार का सदस्य मानकर आगे कर दिया। इस दृश्य के साक्षी बने धर्माराधकों को ऐसा लग रहा था कि आज उत्तम पात्र, उत्तम दाता, उत्तम द्रव्य और उत्तम विधि का अद्‌भुत संयोग है।

ऐसे शुभ अवसर पर उपस्थित रहकर यदि अनुमोदना ही कर ली जाए तो उत्तम भोगभूमि का लाभ मिल सकता है।'' जो वहां उपस्थित न हो सके ऐसे लाखों श्रावकों ने परोक्ष रूप में ही महाराज के आहार की अनुमोदना कर बहुत पुण्य का संचय किया।

❀❀❀

7

काले दिन निकल चुके थे किन्तु रात्रि तो काली ही होती है। दिन में तपश्चरण के द्वारा महाराज की देह क्लांत हो जाती अत: अल्प काल के निद्रा-विश्राम से पुन: ऊर्जावान होकर वह देह अगली अभूतपूर्व तपस्या के लिए तैयार रहती थी किन्तु कितनी रात्रियाँ व्यतीत हो गईं महाराज ने क्षणएक भी निद्रा की अनुभूति नहीं की।

''दिवाकर जी के पत्र से कितना आनंद आ रहा था।''

''तो फिर आनंद भग्न का कारण ?'' प्रतिलोम ने जानना चाहा।

गहन अंधकार में भी उसे महाराज की स्मित दिख गई किन्तु उत्तर नहीं मिला।

''अरे मैं तो भूल ही गया था कि ये तो गंभीर चिंता में डूबे हुए हैं।'' प्रतिलोम ने सोचा, फिर उसने महाराज के विचार को स्पर्श करने का प्रयत्न किया।

''महाराज महाधवल के चालीस हजार श्लोक प्रमाण ग्रंथ में से चार से पाँच हजार श्लोक नष्ट हो गए हैं।'' दिवाकर जी के इस समाचार से महाराज के मन में उथल-पुथल मची हुई थी।

''पूज्यवर धरसेन स्वामी एवं पुष्पदंत महाराज की भावनानुसार भूतबली महाराज ने अपने जीवन को होम करके यह सिद्धांत ग्रंथ हमें सौंपा था किन्तु हम उसका उचित रीति से संरक्षण नहीं कर पाए।''

''उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्, आप इस आर्ष वाक्य को कैसे विस्मृत कर सकते हैं।'' प्रतिलोम ने महाराज की आंखों पर दृष्टि गाढ़ दी।

''हाँ मित्र, यदि लोगों की इस सूत्र से दृष्टि ओझल न हुई होती तो ऐसा कष्टकारी समाचार न सुनना होता।'' महाराज ने जैसे आह भरी।

प्रतिलोम को कुछ समझ नहीं आया। वह पूछना चाहता था ''कैसे ?''

किन्तु होंठ साहस नहीं कर पाए इसलिए यह कार्य उसके नेत्रों को ही करना पड़ा।

''जब उत्पन्न हुई देह को मिटना ही है, तब इसके निमित्त यह प्राणी क्यों विषयों में इतना आसक्त हो जाता है कि...।''

प्रतिलोम को लगा कि महाराज दिशा बदल रहे हैं किन्तु वह मूक बना रहा।

महाराज आगे बोले, ''उसे शरीर सुख के अतिरिक्त कुछ और दिखता ही नहीं है। नित नई कामनाओं की धुन में वह आत्महित के साधनों का रख-रखाव करना भी भूल जाता है। यदि श्रुत संरक्षण की प्रक्रिया सतत चल रही होती तो शास्त्र भी यथावत सुरक्षित रहते।''

''ओह...।'' प्रतिलोम महाराज की दृष्टि से अचंभित हुआ। ''महाराज आप सत्य कह रहे हैं किन्तु अब नष्ट हुए श्रुत को पुनर्जीवित तो नहीं किया जा सकता है न।''

''किन्तु जो उपलब्ध है उसे तो दीर्घकाल के लिए संरक्षित किया जा सकता है।''

''कैसे?'' प्रतिलोम ने ही सुझाव दिया। ''यदि शास्त्र ताम्रपत्र पर उत्कीर्ण हो जाएँ तो?'' कहता हुआ प्रतिलोम मौन हो गया।

''अच्छा विचार है किन्तु तुम सशंक क्यों दिख रहे हो?''

''इसमें व्यय बहुत होगा।''

''उसे व्यय न कहो। धर्म कार्यों में लगी राशि गुणित होकर फलित होती है अत: यह तो एक तरह से आय का साधन है।''

''उसे व्यय कहो, आय कहो, कुछ भी कहो, ये तो शब्द का रूपांतरण मात्र है। यथार्थ में आज का जैनी दान-पुण्य के नाम से दूर भागता है। हाँ आपके अनन्य भक्तों की बात ही कुछ और है।''

प्रतिलोम ने व्यंग्य किया था या नहीं यह उसे ही स्पष्ट नहीं था।

वह आगे बोला, ''किन्तु आप तो अपने भक्तों को भी कुछ नहीं कहते।''

''दान की महिमा बतलाई जा सकती है, जिसे मैं प्राय: बतलाता ही

रहता हूँ किन्तु किसी से व्यक्तिगत रूप में कहना तो उसे बाध्य करना जैसा ही हुआ न।''

रात्रि की लंबाई अधिक हो सकती है किन्तु रात्रि व्यतीत होने के पश्चात् दिन आता ही है। जैसे ही श्रावकों को ज्ञात हुआ कि महाराज की भावना है कि ''सिद्धांत ग्रंथ के रक्षण के निमित्त उन्हें ताम्रपत्र पर टंकित करवाया जाए।''

तो तत्काल श्रावक शिरोमणि गेंदनमल जी ने भावभीना किन्तु एकतरफा प्रस्ताव ही रख दिया ''महाराज यह काम मैं कर दूँगा।''

महाराज के मुखमण्डल पर स्मित छा गई।

किन्तु गेंदनमल जी कुछ असहज हो गए। वे बोले ''महाराज आप ऐसा बिल्कुल न समझें कि इससे मुझ पर कोई बोझ पड़ जायेगा।''

''सबके करने योग्य काम, सबकी ओर से हो तो अधिक उचित है।'' कहकर महाराज सामायिक में स्थित हो गए।

महाराज की भावना समझ गेंदनमल जी का मन, इन महामना की भक्ति से ओतप्रोत हो गया। ''एक व्यक्ति के द्वारा कार्य करवाने से मात्र उसकी भावनाएँ जुड़ती हैं किन्तु जन-जन में भावनाएँ विकसित करने के लिए, कार्य में उन्हें भी प्रत्यक्ष रूप से शामिल कर लेना चाहिए।''

महाराज की सामायिक पूर्ण होते-होते त्वरित गति से लाखों की राशि एकत्रित हो गई।

एक ओर ताम्र उत्कीरण का कार्य द्रुतगति से चल रहा था तो दूसरी ओर महाबंध का कार्य निष्पन्न कर दिवाकर जी, महाराज के समक्ष उपस्थित हो गए।

''सच पूछो तो यह ताम्रपत्र का महान् कार्य तुम्हारे ही कारण हुआ है।'' महाराज ने गदगद चित्त होकर कहा।

''नहीं महाराज ऐसा न कहें, यह कार्य मेरे निमित्त कैसे संभव है।'' दिवाकर जी ने भीगे मन से अत्यंत विनयपूर्वक कहा ''महान कार्य तो आप जैसे महान पुरुषों के द्वारा ही पूर्ण हो सकते हैं।''

''क्या हम मिथ्या बात भी करते हैं ?'' महाराज के लहजे से दिवाकर जी क्षणएक लिए झिझक गए। महाराज आगे बोले, ''तुम्हारे पत्र से हमें प्रेरणा मिली और वीरप्रभु की कृपा से यह कार्य भी पूर्णता की ओर है। इसलिए हमें इस संदर्भ में कोई चिंता नहीं है।''

दिवाकर जी महाराज की इस निरीहवृत्ति के बारे में सोच रहे थे कि ''महाराज की प्रेरणा और आशीर्वाद के बिना ऐसे बड़े-बड़े काम अकल्पनीय हैं किन्तु वे सदैव श्रेय दूसरों को ही देते हैं।'' तभी उनका उपयोग महाराज के अंतिम वाक्य पर गया। ''अब हमें इस संदर्भ में कोई चिंता नहीं है।''

दिवाकर जी के मन में विचार कौंधा, ''अर्थात् किसी अन्य प्रकरण को लेकर महाराज चिंतनमग्न हैं।'' सहजता में ही दिवाकर जी के हाथ जुड़ गए।

''उत्तर भारत से छपी श्री धवल जी की प्रथम पुस्तक के सूत्र 93 में संजद पद नहीं है। इस ताम्रपत्र में कुछ लोग संजद पद जोड़ने के लिए आतुर हैं।''

''महाराज इसमें कोई बाधा है क्या ?'' दिवाकर जी ने अल्पज्ञ बनकर पूछा।

''उस सूत्र का अर्थ है—मनुष्यनियाँ सम्यग्दृष्टि, असंयत सम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयत गुणस्थानों में नियम से पर्याप्तक होती हैं। यहाँ यदि संजद शब्द भाव स्त्री की अपेक्षा से लिया गया है तो इससे सिद्धांत का किञ्चित भी लोप नहीं होता, कारण कि भाव स्त्री के चौदह गुण स्थानों का वर्णन अनेक स्थानों पर आता है। किन्तु यदि यह वर्णन द्रव्य स्त्री की अपेक्षा है तो इससे दिगंबर परंपरा का ही उच्छेद हो जायेगा, जिसका दोष हम पर आयेगा।''

''महाराज आप पर दोष कैसे आ जायेगा ?'' तलकचंद शहा वकील ने कहा।

''वह शब्द प्रतिलिपिकार के प्रमादवश आया हुआ जान पड़ता है किन्तु यदि आगम के ज्ञाता संशोधकों ने भी उसे वहीं रख दिया तो गर्दन कटने सदृश बात हो जायेगी। हाँ तब द्रव्य स्त्री को भी निर्वाण मानना पड़ेगा, इससे तो सत्यधर्म का लोप हो जायेगा।''

महाराज ने यह घोषणा भी करवाई कि ''यदि कोई विद्वान हमारे पास आकर हमारी बात को दोषयुक्त, आगम के प्रतिकूल बतलावेंगे तो हम अपनी

भूल को सुधारकर प्रायश्चित्त भी लेंगे।''

बारामती के इस प्रवास में महाराज के पास दोनों पक्ष के अनेक विद्वानों का समागम होता रहा। वे सभी महाराज की असाधारण विचारशील धारणा शक्ति एवं सिद्धांत सूत्रों के गंभीर चिंतन आदि को देखकर बहुत प्रभावित हुए। भावपक्ष के समर्थक विद्वानों ने भी महाराज के पक्ष का समर्थन किया किन्तु आचार्य महाराज का पक्ष सदा से ही आगम का पक्ष रहा है। वे आगम के परिप्रेक्ष्य में इस सूत्र पर सतत आलोड़न करते रहे। कुछ वर्षों के शास्त्रावलोकन एवं मंथन के उपरांत उन्हें उस सूत्र में संजद पद उपयुक्त प्रतीत हुआ अंततः उन्होंने स्वयं ही संजद पद का समर्थन भी कर दिया।

निकटता से जुड़े हुए एक श्रावक ने महाराज से कहा, ''महाराज ऐसे में तो आपका नाम खराब हो जायेगा।''

''किन्तु भव तो खराब होने से बच जायेगा न।'' आचार्य महाराज ने सिद्धांत चक्रवर्ती नेमिचंद्र जी द्वारा गोम्मटसार जीवकाण्ड में कथित एक गाथा उद्धृत की—

सुत्तादो तं सम्मं दरिसिज्जं जदा ण सद्दहदि।
सो चेव हवइ मिच्छाइट्ठी जीवो तदो पहुदि।

भावार्थ यह है कि सूत्र से समीचीन रूप से ज्ञात होने पर भी जब यह जीव उस अर्थ पर श्रद्धा नहीं करता, वह जीव उस समय ही मिथ्यादृष्टि हो जाता है। महाराज अत्यंत गंभीर वाणी में बोल रहे थे। ''जब गणधर परमेष्ठी, श्रुत केवली तथा बारहवें गुणस्थानवर्ती महामुनि भी परिपूर्ण ज्ञानी नहीं हैं तब अपने को उस श्रेणी में रखकर आगम का हठाग्रह करने से हानि ही हानि है।''

ऐसे सर्वमान्य महातपस्वी ज्ञानी-ध्यानी आचार्य भी जब जिनवाणी से प्राप्त ज्ञान के समक्ष अपनी पूर्व धारणाओं का परित्याग कर देते हैं तब वे अति निकट भव्य जीव की पंक्ति में स्थित कहे ही जायेंगे किन्तु जिन मार्ग का अनुकरण करने वाले जीव यदि आचार्य शांतिसागर महाराज के इस आदर्श को शुद्ध हृदय से स्वीकार कर लेते हैं तो उनका भी संसार बड़ा निकट

समझना चाहिए।

ऐसे महान् सिद्धांत ग्रंथों का संपादन एवं ताम्र-उत्कीर्ण कार्य निष्पन्न होने पर महाराज का चित्त आत्मिक प्रसन्नता से गदगद हो गया। जन-समुदाय ने भी इस आनंद को आत्मसात करने के लिए बड़ा-भारी उत्सव किया। गजराज के ऊपर सवार होकर जिनराज प्ररूपित ग्रंथों को विराजमान कर नगर-भ्रमण हुआ। एक स्थान और एक दिन नहीं, अनेक गांव एवं नगरों में अनेक दिनों तक चले इस महा-महोत्सव से जिनधर्म की महती प्रभावना हुई।

कार्यक्रम के लिए एकत्रित हुए लोग प्राय: प्राय: जा चुके थे किन्तु एक छोटी सी बच्ची जो महाराज के निकट बहुत शांति से बैठी हुई थी। इस वय के बच्चे प्राय: माता-पिता के साथ ही घर से बाहर निकलते हैं किन्तु उसके साथ कोई नहीं दिख रहा था। वेशभूषा से वह संभ्रांत परिवार की दिख रही थी किन्तु उसकी गतिविधि को देखकर ऐसा बिल्कुल भी नहीं लग रहा था कि वह अपने परिजनों से बिछड़ गई हो।

''तू किसकी बेटी है?'' वहाँ उपस्थित एक श्रावक ने उससे पूछा।

वह बच्ची कुछ नहीं बोली तो श्रावक को लगा ''हो सकता है कि यह हिन्दी न जानती हो।'' अत: उसने मराठी में पूछा ''तू काय आई ची आहेस।'' तेरी माँ कौन है। यह सुनकर भी बच्ची ने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी। महाराज बच्ची के गांभीर्य को समझ रहे थे किन्तु तभी श्रावक ने मनोविनोद की शैली में पूछ लिया ''बापाची, क्या तू पिता की है?'' श्रावक हंसा फिर बोला ''अरे बाबा तू किसकी है, बता तो सही।

''मी माझी—मैं अपनी हूँ।'' बच्ची के मुख से निकला।

बच्ची का उत्तर सुनते ही महाराज आनंदित हो गए।

''मैं अपनी हूँ कितना सत्य कह रही है यह बालिका। अहो संसार का कौन सा संबंध हमारा स्वकीय संबंध है। छोटा-सा परिवार छोड़ा तो इतना विशाल भक्त परिवार बन गया।'' बच्ची के उस वाक्य से महाराज की चिंतन धारा मुखर हो उठी ''मैं जगत् के उद्धार में लगा हुआ हूँ किन्तु मेरा हित

किसमें है ?''

महाराज की अंतरात्मा से ही उत्तर आया कि ''आत्मलीनता। हाँ जब मैं अपना ही हूँ तब अपने में ही रमणता होनी चाहिए। समयसार का भी तो यही सार है कि पर दृश्यों से भिन्न निजात्मा की गति होनी चाहिए।'' महाराज ने एक बार शरीर का अच्छी तरह से निरीक्षण किया।

''इसके प्रयोजन ? प्रतिबिंब ने पूछा।

''बहुवचन में प्रयोग ?'' महाराज के मुखमण्डल पर स्मित फैल गई।

''कोई संसारी, देह की ओर दृष्टि करता है तो उसका अर्थ स्पष्ट होता किन्तु एक आपके जैसा संन्यासी यदि वही कार्य करे तो वह रहस्यात्मक होने से अनेक अर्थों की संभावनाएँ समेटे रहता है।

''यहां ऐसा कुछ नहीं है।'' महाराज ने जैसे स्पष्टीकरण दिया। ''इसने अब तक अच्छा साथ दिया।''

''सच्चा साथी जो है।''

''किन्तु कब तक के लिए ?''

''जब तक आयु है तब तक के लिए।''

''यह देवलोक का शरीर नहीं है जो सदा रोगमुक्त रह सके, पीछे से जरा अलग पीछा कर रही है।''

''कुछ उल्टा-सीधा मत सोचना ?''

''हूँ...।'' महाराज के मुख से सहास्य निकला। ''सीधा-सीधा ही सोच रहा हूँ भाई।''

''क्या..... ? कहीं सल्लेखना के बारे में तो...।''

प्रतिबिंब का वाक्य आश्चर्य के अतिरेक में अधूरा ही छूट गया।

''हाँ, तुम्हारा अनुमान सत्य है।''

''किन्तु स्वस्थ शरीर को बलात् मृत्यु की ओर ढकेलना, उचित नहीं है।''

''डॉक्टर कह रहा था कि इसके गले में असाध्य रोग है।''

''वह तो मूर्ख है।'' प्रतिबिंब ने आक्रोश में कहा।

''विदेश से डिग्री लेकर आया है।'' महाराज मुस्कुराए।

''गरीबों के शोषण और अंग्रेजों की चापलूसी से बाप ने जो अपराध धन संगृहीत कर रखा है न, ये उसकी डिग्री है, योग्यता की नहीं।''

''चलो मान लिया आज रोग नहीं है किन्तु शरीर तो व्याधियों का घर है।'' महाराज कुछ क्षण मौन हुए फिर दीर्घ नि:श्वास छोड़ते हुए बोले ''बुढ़ापा स्वयमेव एक बीमारी है।''

''मैं आपकी बात से पूरी तरह असहमत नहीं हूँ किन्तु सिंह बूढ़ा होने पर भी बड़ी सामर्थ्य रखता है।'' प्रतिबिंब ने महाराज को सहमत होते न देख उन्हें समझाने की अलग विधा सोची। ''रत्नत्रय से संयुक्त जिस शरीर से तपश्चरण कर बहुत निर्जरा की जा रही हो उसको असमय में समाप्त कर असंयम की ओर ले जाना, बुद्धिमानी तो नहीं है।''

''मैं बुद्धि से नहीं अपनी अंतरात्मा की आवाज पर निर्णय लेता हूँ।''

''अंतरात्मा....ऽ!'' प्रतिबिंब ने ठहाका लगाया। ''जो न दिखती है, न बोलती है उसके परामर्श पर चला जा रहा है?'' उसने कटाक्ष किया।

''महान् लोग पर्दे के पीछे से ही कार्य कर लेते हैं।'' महाराज मुस्कुराए। फिर आगे बोले ''सल्लेखना दो प्रकार से ली जाती है। एक असाध्य रोग, उपसर्गादिक आने पर ली जाती है और एक क्रमिक तैयारी की अपेक्षा ली जाती है। मैं अभी पहले वाली सल्लेखना नहीं ले रहा हूँ किन्तु आयु अस्सी का स्पर्श कर रही है अत: इस शरीर एवं मन को भी अब उस रूप ढालना अनिवार्य है।''

''आप तो दीक्षा के पूर्व से ही यह कार्य कर रहे हैं?'' प्रतिबिंब ने प्रश्नात्मक शैली में पूछा।

''हाँ व्रत अंगीकार करते ही साधक सल्लेखना का लक्ष्य बना लेता है किन्तु जीवन के उत्तरार्ध आने पर इस साधना को विशेष गति देनी होती है। समझे।'' महाराज ने पुचकारते हुए कहा।

''नहीं समझा। समझना भी नहीं चाहता हूँ।''

''अच्छा'' महाराज मुस्कुराए।

''अभी इतनी जल्दी, मैं आपको सल्लेखना की ओर नहीं बढ़ने दूंगा।''

''तो कब अपनी अनुमति दोगे?''

''श्रावकों के पुण्य से आपकी अभी बहुत आयु शेष है।''

''कितनी?'' महाराज ने सस्मित पूछा।

''ये तो मुझे नहीं पता किन्तु 4-5 वर्ष तो कुछ ऐसा-वैसा सोचना भी नहीं।''

''बहुत ठीक।''

''अर्थात् आपने मेरी बात स्वीकार कर ली है?'' प्रतिबिंब ने साश्चर्य पूछा।

''मैं तो बारह वर्षों की साधना के बारे में सोच रहा था, तुमने तो उस डॉक्टर की तरह...।''

प्रतिबिंब लज्जित हो तत्काल भागना चाहता था पर उसे लगा कि जैसे महाराज ने अपने अंतिम वाक्य सुनाने के लिए उसे कीलित कर दिया हो किन्तु महाराज आगे कुछ बोले नहीं। उनके मुखमण्डल पर संतुष्टि का भाव था क्योंकि उनका निर्णय सुविचारित भी था और आत्महित के लिए श्रेयस्कर भी।

महाराज ने सल्लेखना के योग्य अनेक स्थानों का विचार किया। मुक्तागिरि भी योग्य था किन्तु योग कुंथलगिरि बन गया, तिथि भी तय हो गई। एक श्रावक गौतम म्हसवड़कर साधुओं के प्रति बड़ा समर्पित था। महाराज की दिन-रात सेवा भी करता था, वह महाराज के साथ विहार में रहना चाहता था किन्तु उसके साथ एक दुर्घटना घट गई। उसका एक छोटा सा बगीचा था। मजदूरों के नहीं आने पर फल आदि तोड़ने के लिए वह प्राय: पेड़ों पर चढ़ा करता था। बचपन का अभ्यास था अत: वह ऊंचे से ऊंचे पेड़ों पर बड़ी फुर्ती से सरलता पूर्वक चढ़ जाया करता था किन्तु कभी-कभी बड़ा से बड़ा अभ्यासी भी मात खा जाता है। एक दिन गौतम जामुन के पेड़ से गिर गया। उसके पैर में गहरी चोट आई। वह एक दिन महाराज के समक्ष उपस्थित हुआ। वह बहुत दु:खी था, इस बात से नहीं कि उसके साथ दुर्घटना हो गई है अपितु इस बात से कि वह अब महाराज का विहार कराने में असमर्थ हो गया है। उसके भाव पढ़कर महाराज उसे समझाते हुए बोले '' पैरों में चोट आई है, कोई बात नहीं मान लेना कि पूर्व में बांधे हुए पाप कर्म से मुक्ति मिली।''

महाराज की दृष्टि गौतम पर ही टिकी हुई थी वे उससे आगे बोले ''किन्तु मन पर चोट नहीं आनी चाहिए।''

किन्तु महाराज मैं जो बहुत समय से आपके साथ विहार करने का सपना संजो रहा था, पैर क्या टूटा मेरा वह सपना ही टूट गया।'' गौतम का गला भर आया।

''गौतम तुम मेरे साथ-साथ कुंथलगिरि अवश्य चलना।''

''महाराज ये क्या कह रहे हैं।'' गौतम को महाराज का यह वाक्य समझ नहीं आया। ''अरे जब घर से महाराज की वसतिका आने के लिए दूसरों की सहायता लेनी पड़ी तब विहार?''

''कारण, मेरे नेत्रों की ज्योति मंद पड़ रही है।''

कहीं महाराज यह तो नहीं कहना चाह रहे हैं कि ''तुम लंगड़े और मैं अंधा होता जा रहा हूँ।'' गौतम के मन ने ही उत्तर दिया ''छि: छि: कैसा अशुभ सोच रहा है तू।''

तभी ''अंधे-लंगड़े की जोड़ी बराबर रहेगी न।'' मनोविनोदात्मक स्वर में कहते हुए महाराज हँसने लगे।

''महाराज ये शरीर भले ही लंगड़ा हो जाए किन्तु आप इस जगत् के मार्गदर्शक हैं आपकी नेत्र-ज्योति अक्षीण रहे। वीर प्रभु के चरणों में हमारी यही विनम्र प्रार्थना है।'' कहते हुए गौतम ने महाराज के चरणों में अपना, मस्तक रख दिया।

महाराज के चरणों के दिव्य स्पर्श और गौतम की भक्ति का यह अतिशय हुआ कि बिना सहारे न चल पाने वाला गौतम अकेले ही महाराज के विहार में पहुँच गया। तपन बहुत थी ऊपर से सूरज की और नीचे धरती की। महाराज का निश्चय दृढ़ था और गौतम की भक्ति भी पक्की थी। विहार होने के कुछ समय उपरांत ही मौसम बदलने लगा। सूरज को बादलों ने ढक लिया, शीतल हवाएँ चलने लगीं और देखते ही देखते झमाझम बारिश होने लगी। साथ चल रहा गौतम और अन्य लोग इसे महाराज की साधना का ही प्रभाव मान रहे थे किन्तु महाराज निष्प्रयोजनीय विषय बतलाकर चर्चा को

विराम देने की प्रेरणा दे रहे थे।

अंधड़ तो चल ही रही थी, पानी भी तेज होने लगा तो एक छोटी सी कुटिया दिखने पर गौतम के निवेदन से महाराज उसमें रुक गए। लोगों को भीगते हुए देख महाराज ने कहा ''तुम लोग भी अंदर आ जाओ।''

''महाराज लोग बहुत हैं किन्तु अंदर जगह कम है।'' गौतम ने सभी की ओर से उत्तर दिया।

''जगह की मारामारी बाहर होती है, अंदर तो जगह ही जगह है।'' महाराज ने मुस्कुराते हुए कहा।

सभी महाराज का उपदेश समझ गए किन्तु उस कुटिया में भी बहुत कम स्थान था और सांसारिक बंधनों में उलझे लोगों को अंतरंग की वृहत्तर विश्राम स्थली दिखती ही नहीं है। लोगों ने हाथ जोड़ लिए उत्तर में कुछ कहा नहीं तो महाराज पुन: सस्मित बोले ''भीगना ही है तो बाहर क्यों भीगते हो भीतर आकर भीगो।''

इस तरह महाराज के मुख से उभय लोक कल्याणकारी मृदुल वचनों को सुनकर सभी आनंद से तरबतर हो गए। कुछ समय में बारिश रुक गई और मौसम बड़ा सुहावना हो गया। महाराज का विहार प्रारंभ होना ही था कि साथ चल रही बारामती की एक स्त्री की बहुमूल्य नथ गुम गई। वह बहुत दु:खी हो रही थी। उसकी व्याकुलता का एक कारण यह भी था कि वह परिजनों की इच्छा के विरुद्ध हठपूर्वक विहार में आई थी। ''वैसे ही उसकी सास उससे नाराज थी अब यह उनके द्वारा दी गई, नथ गुम गई, वह घर पहुँचेगी तो क्या स्थितियाँ बनेंगी।'' यह सोचकर ही वह काँप उठी। उसे शोकाकुल देख जब किसी ने उसे ढांढस बंधाते हुए कहा ''यदि एक आभूषण के मूल्य पर हमें महाराज का दुर्लभ सान्निध्य मिला है तो उसका हर्ष ही मनाना चाहिए। व्यर्थ में शोक करने से कोई लाभ नहीं है।''

वह महिला इस वाक्य को सुनकर भड़क गई। उसे शांत होता न देख गौतम से रहा न गया तो उसने भी समझाने का प्रयत्न किया किन्तु उस महिला को जितना-जितना समझाया जा रहा था वह उतनी-उतनी उग्र होती

जा रही थी।

''घर में इतना पैसा भरा पड़ा है कि वह ऐसी दस-बीस नथ बनवा सकती है किन्तु एक नथ के लिए पागल हुई जा रही है।''

जब दो लोगों की आपस की यह खुसर-फुसर उस महिला के कान तक पहुँची तो उसने आपे से बाहर होते हुए शब्द-बाणों की वर्षा प्रारंभ कर दी। जिन पर उसे संदेह हो रहा था उनके नाम अभी तक उसके मन में ही थे किन्तु अब वह एक-एक का नाम लेकर आरोप लगा रही थी। कुछ देर के तूफान के उपरांत जब कुछ क्षण की शांति हुई और महिला ने अपने वस्त्र बदले तो वह नथ उसकी साड़ी में फंसी मिली। वह अपने कृत्य पर लज्जित तो थी किन्तु बड़े घर की बहू, उस पर बड़ेपन का भाव, अहंकार सामने आकर खड़ा हो गया। जब बात महाराज को ज्ञात हुई और वह महिला महाराज के समक्ष पहुँची तो महाराज ने उससे कहा ''तुमने भावावेश में आकर कई लोगों पर दोषारोपण किया है?''

महिला का मस्तक तो वैसे भी नीचे झुका हुआ था, महाराज के कठोर लगने वाले किन्तु कल्याणकारी वचनों को सुनकर उसका मान भी झुक गया।

''महाराज क्षमा।'' बहुत श्रमपूर्वक वह इतना ही कह पाई।

''तुम्हें इसका प्रायश्चित्त लेना चाहिए।''

''जी महाराज आज्ञा कीजिए।''

कुछ लोग सोच रहे थे कि ''अब इसकी विहार से छुट्टी।''

एक-दो लोग यह भी सोच चुके थे कि ''महाराज इसके परिजनों को बुलायेंगे।''

वह महिला भी बहुत घबरा रही थी किन्तु उसे महाराज के ऊपर पूर्ण विश्वास था अत: वह कुछ-कुछ निश्चिंत भी दिख रही थी।

''सभी को श्रद्धा भक्ति से प्रेमपूर्वक भोजन कराना।'' महाराज ने अत्यंत आत्मीयता से कहा।

वह महिला पानी-पानी हो गई। अहंकार का कांटा तुंकारी के समान सदा-सदा के लिए उसके मन से निकल गया किन्तु विहार करते समय एक दिन महाराज के पाँव में कांटा चुभ गया। महाराज ने बिना किसी को अहसास कराते हुए अपना विहार जारी रखा। महाराज का मुखमण्डल भले ही अपरिवर्तित था किन्तु पैरों की गति मंद पड़ गई। इसे देख लोगों ने अनुमान लगाया कि हो न हो महाराज के पैर में अवश्य कोई बाधा है।

''महाराज, पैरों में कुछ कष्ट है।'' संघपति ने निवेदन के स्वर में पूछा।

महाराज ने मुस्कुरा दिया, वे बोले कुछ नहीं। गजानन भाऊ एवं गौतम ने भी खूब आग्रह किया, अन्यों ने विनम्र निवेदन किया तिस पर भी महाराज के पैर थमे नहीं। हां वे बोले अवश्य ''अब अधिक भ्रमण की आवश्यकता कहाँ है?''

''महाराज, गंतव्य अभी दूर है।'' उस महिला ने भी अपनी भावना व्यक्त की।

''हाँ कुछ दूर तो अवश्य है कर्म चक्र जो घुमा-फिरा रहा है।'' इस तरह महाराज शरीर से अत्यंत निस्पृह हो उसकी अवहेलना कर रहे थे। किन्तु फिर जब महाराज विश्राम कर रहे थे तब गौतम ने बड़ी बुद्धिमत्ता से कांटा निकाल दिया।

बाद में महाराज ने कहा ''मिथ्या, माया और निदान के बड़े बड़े काँटे इस जीव को अनादिकाल से लगे हुए हैं। खेद है उसे इसकी चुभन तो महसूस होती है किन्तु गुरुओं द्वारा सतत प्रेरित करते रहने पर भी वह उन्हें निकालने लिए के कभी तैयार नहीं होता।''

महाराज की इस प्रासंगिक किन्तु आध्यात्मिक देशना से प्रेरित हो अनेक लोगों का न केवल अगृहीत मिथ्यात्व खण्ड-खण्ड हो गया अपितु विहार में साथ चल रहे बहुत से श्रावक-श्राविकाओं ने नि:शल्य होकर अणुव्रतों को भी धारण कर लिया किन्तु जिसे विशेष लक्ष्य बनाकर महाराज ने उपदेश दिया था ऐसा वह गौतम पीछे हट रहा था।

''गौतम...।''

महाराज के संबोधन से गौतम को लगा कि ''अब बच पाना कठिन है।'' अत: वह कुछ भयभीत सा दिखा।

''गणधर।'' महाराज ने मुस्कुराते हुए नाम पूरा किया तो सभी को हंसी आ गई। गौतम का मन भी क्षण एक में ही बिगड़ती हुई परिस्थिति से बाहर आ गया।

''तुम तो सदा अपने हाथ से ही भोजन, बनाते हो। महाराज के मुख से अगला वाक्य निकला तो गौतम के मन रूपी तट से एक विचार टकरा गया। ''आटा?''

''आटा पीसने का प्रश्न कोई कठिन नहीं है।''

''महाराज क्या मन की बात को भी जान लेते हैं?'' गौतम विस्मित हुआ।

''मन की बात तो मन:पर्यय ज्ञान से सम्पन्न महामुनि अथवा केवली भगवंत जान सकते हैं, जो हमारे पुण्य की कमी से हमें आज प्राप्त नहीं हैं। सबके प्रश्न, सबकी समस्याएँ और सबकी परिस्थितियाँ न्यूनाधिक एक ही प्रकार की होती हैं।'' महाराज सस्नेह गौतम से बोले ''बड़े-बड़े अधिकारी तक आहार-दान के हेतु स्वयं चक्की चलाकर आटा पीसा करते हैं किन्तु आटा पानी जैसी इतनी छोटी सी बात के लिए तुम्हें या किसी अन्य को भी व्रत रूपी बहुमूल्य निधि का तिरस्कार नहीं करना चाहिए।''

महाराज के पवित्र अन्त:करण से नि:सृत इस कल्याणकारी धर्मोपदेश को सुनकर गौतम भी नि:शल्य-व्रती बन गया। बाबूलाल मार्ले पूर्व से दो प्रतिमाधारी व्रती थे अत: वे इस घटनाक्रम से स्वयं को असंपृक्त मान रहे थे। आचार्य महाराज ने उनसे कुछ कहा नहीं था और न कोई संकेत दिए थे। निश्चित तौर पर यह उपदेश उनके लिए नहीं है वे ऐसा मानकर चल रहे थे। महाराज का विहार हुआ तो वे कमण्डल उठाने लगे।

''तुम हमारे कमण्डल को हाथ मत लगाना।''

महाराज के मुख से ऐसे अप्रत्याशित वचन सुनकर न केवल मार्ले बल्कि जिसने सुना वही चकित हुआ। सभी सोच रहे थे कि 'मार्ले बाबू से कोई भारी भूल हुई है, अन्यथा महाराज के मुख से ऐसे वचन स्वप्न में भी नहीं निकल सकते।

''मैंने सुबह ही तो महाराज का कमण्डल उठाया था, उस समय तो महाराज मंद-मंद मुस्कुरा रहे थे।'' पिछले पाँच-छह घंटों में उससे क्या त्रुटि हुई होगी, उसने आत्मावलोकन किया किन्तु उसे कुछ समझ नहीं आया। उसकी आँखें भीग चुकी थीं, कण्ठ भी रुंधा हुआ था, साहस चूक रहा था क्योंकि बात ही ऐसी थी कि जिसके भरोसे अपनी जीवन नौका छोड़ दी हो वही यदि हमसे अप्रसन्न हो जाए तब फिर और कौन सहारा। ''महाराज, हमसे क्या अपराध बन पड़ा है। कमण्डल उठाने से क्यों मना करते हैं।'' अंततः मार्ले की पीड़ा ने शब्दों का आकार धारण कर ही लिया।

''यदि दीक्षा लेने की प्रतिज्ञा करने का मन हो तो ही कमण्डल लेना।'' महाराज का यह वाक्य सुनकर कुछ श्रावक हर्ष से रोमाञ्चित हो यह सोचते हुए कमण्डल उठाने के लिए आगे बड़े ''कि महाराज चाहते हैं कि मार्ले बाबू दीक्षा ले लेवें।''

''नहीं, हम अपना कमण्डल स्वयं उठायेंगे।'' महाराज का वाक्य पूर्ण होते ही उन सबके कदम पीछे हो गए।

मार्ले सोच में पड़ गया।''पंजाब से शास्त्री जी आए थे कितने दिन तक ब्रह्मचर्य प्रतिमा की माँग करते रहे किन्तु महाराज टालते रहे। फिर जब उन्होंने दीक्षा की याचना की तब उन्हें ब्रह्मचर्य प्रतिमा दे दी। एक समय एक अन्य व्यक्ति बड़ा व्रत माँग रहा था किन्तु महाराज ने छोटा व्रत दिया। मैंने पूछा ''महाराज आपकी बात समझ नहीं आयी। उसके भाव तो बढ़े-चढ़े थे उसे आप उसकी माँग के अनुसार व्रत दे सकते थे न?''

''उसकी अंतरङ्ग स्थिति को हम समझते हैं। वह बड़े व्रत को अच्छी तरह नहीं पाल सकेगा। भावना में बहकर व्रत लेकर यदि पीछे भङ्ग कर दिया तो उसकी आत्मा का अहित हो जायेगा। हमें ऐसा काम करना है, जिससे जीव की भलाई हो।''

मार्ले समझ नहीं पा रहा था कि ''जब महाराज दूसरों के लिए मांगने पर भी ऊंचे व्रत नहीं देते तब वे मेरे नहीं चाहने पर भी मुझे क्यों बड़े व्रतों को लेने

के लिए इतनी प्रेरणा दे रहे हैं। उसे लगा कि संभव है कि महाराज मनोविनोद कर रहे हों।'' ऐसा सोचते हुए उसने बिना महाराज की ओर दृष्टि किए कमण्डल उठा लिया।

''देखो, क्षण भर का भी भरोसा नहीं है।'' महाराज मनोविनोद नहीं कर रहे हैं। यह इस छोटे से वाक्य से ही मार्ले समझ चुका था महाराज आगे बोले ''कल क्या हो जायेगा क्या पता। तुम आगे दीक्षा लोगे, यह ठीक है किन्तु बताओ अभी क्या लेते हो?''

महाराज के होठों का स्पंदन थम गया था किन्तु उनके मुखमण्डल पर गहन शांति छा गई थी। महाराज के उपदेश से मार्ले का मन सोच में पड़ गया किन्तु महाराज के मौन से मन मुखरित हो उठा।''तेरे हित के लिए ही कह रहे हैं वे।''

''हाँ, किन्तु।''

''किन्तु तू अपनी अकूत धन-संपदा को ऐसे कैसे छोड़ सकता है। कर्तव्यशीला धर्मपत्नी है, आज्ञाकारी संतानें हैं, समाज में बहुत यश है। सब ओर से अनुकूलताएँ होने पर कल्याण-वल्याण की बातें बेईमानी हैं, नहीं हैं क्या?'' मन ने जैसे उसे जोर का थप्पड़ जड़ा।

''जब तक पुण्य का उदय है तब तक ये संयोग अनुकूल हैं यह मैं भलीभाँति जानता हूँ किन्तु...।''

''तो किसने बांध रखा है तुम्हें?''

''संसार, असार लगने लगा है किन्तु...।''

मन ने बीच में ही मार्ले का वाक्य काट दिया।''इतने सारे किन्तुओं का बोझ ढोते रहोगे तो ऐसे महान गुरु की सन्निधि पाकर भी अपेक्षित उत्थान न कर सकोगे।''

''महाराज, मैं सप्तम प्रतिमा के व्रत लेता हूँ।'' मार्ले के मन ने जिह्वा का आकार धारण कर लिया था। उसका अन्त:करण तो पूर्व से चारित्र मार्ग पर उत्तरोत्तर अग्रसर होना चाहता था किन्तु संज्वलन के द्विस्थानी अनुभाग स्थानों में भी बड़ा तारतम्य रहता है अत: संयमासंयम विरोधिनी अप्रत्याख्यान

के अनुदय होने पर भी जीव प्रथम प्रतिमा से ग्यारहवीं प्रतिमा तक की यात्रा बड़ी कठिनाई से कर पाता है।

महाराज के मुख से सहज ही निकल गया ''बहुत अच्छा।'' मार्ले ने महाराज के चरणों में अपना शीश रख दिया। महाराज ने भी उन्हें एक छोटे से मनोविनोद के बहाने मानो मुक्तिरमा से मिलाप कराने ब्रह्मचारी बना दिया।

मार्ले ने अपना मस्तक उठाया तो महाराज दीवाल की ओर मुख करके सामायिक में लीन हो गए। मार्ले बहुत समय तक उनकी उसी मुद्रा को निहारता रहा। विहार काल में धूल और धूप के कारण बहते पसीने के संयोग से उन तपोधन के पृष्ठ भाग में मल की परतें चढ़ी हुई थीं। संघपति एवं गौतम से लेकर अनेक श्रावकों ने कई बार उनके शरीर को स्वच्छ करने का प्रयत्न किया तो महाराज का प्रतिउत्तर होता ''यह शरीर स्वभाव से ही मलिन है एवं जब स्वेच्छा से अस्नान महाव्रत को धारण किया है तब फिर पुरुषार्थ पूर्वक इसके संस्कार की क्या आवश्यकता है?''

महाराज ने चर्चा करते समय दो-तीन बार उस स्थान पर पिच्छी लगाई थी। मार्ले के मन में विचार आया कि ''कहीं महाराज को खुजली तो नहीं हो रही है। प्रतिदिन स्नान एवं शरीर संस्कार के उपरांत भी जब सामान्य मनुष्यों को दाद हो जाती है तब इन्हें...। महाराज भले अपने शरीर से निस्पृह हैं किन्तु हमारे लिए तो उनकी देह अमूल्य है।''

संघपति, मार्ले के भाव समझ चुके थे अत: उन्होंने तत्काल मार्ले को एक स्वच्छ वस्त्र थमा दिया।

''महाराज के ध्यान में बाधा...।'' गौतम के मुख से निकलना चाहा किन्तु फिर निकला ''हमारी भी अनुमोदना है।

मार्ले ने भी सोचा। ''यदि ऐसा करना अनुचित है तो वह महाराज से प्रायश्चित्त ले लेगा और यदि पीछे महाराज उसके इस कार्य से अप्रसन्न भी होते हैं तो भी वह पीछे नहीं हटेगा।'' जैसे एक जिनभक्त बड़े भक्ति-भाव से जिन-प्रतिमा का परिमार्जन करता है वैसे ही धीमे-धीमे हाथों से मार्ले ने महाराज के शरीर का मार्जन कर दिया। महाराज की पीठ को भयानक दाद ने

आक्रान्त कर रखा था।

जब तक औषधि आती महाराज की सामायिक पूर्ण हो चुकी थी। अब भक्तों की कठिनाईयाँ बढ़ चुकी थीं क्योंकि उन्हें अब महाराज की अनुमति जो लेनी थी।

''महाराज औषधि लगानी है।'' एक अपराधी की भाँति मार्ले ने कुछ भयभीत सा होते हुए कहा। किन्तु महाराज ने निषेधवाचक संकेत किया।

''महाराज औषधि क्यों नहीं लगाने देते? इस लेप के प्रयोग से दाद शीघ्र दूर हो जायेगी।'' गौतम ने आग्रह पूर्वक कहा।

''अरे आपके भाई-बंधु इस पर बहुत प्रकार की औषधियों का प्रयोग कर चुके हैं। इस पर तेजाब तक लगाया जा चुका है किन्तु यह शरीर का साथ नहीं छोड़ती।'' महाराज ने उन्हें व्याकुल देख जैसे सांत्वना देते हुए कहा ''मैं एक औषधि जानता हूँ उसे लगाने से यह शरीर सभी रोगों से मुक्त हो जायेगा।''

मार्ले का चित्त खिल उठा। गौतम को अभी भी पैरों में कष्ट रहता था किन्तु वह महाराज का संकेत पाते ही दौड़कर औषधि ले आने की शीघ्रता में उठा। संघपति भी बिल्कुल तैयार थे वे सोच रहे थे ''जहां भी मिलेगी वे किसी भी कीमत पर उसकी व्यवस्था कर लेंगे, बस एक बार महाराज के मुख से उस अचूक औषधि का नाम निकल जाए।''

एक व्यक्ति वहाँ ऐसा भी था जो यह विचारने लगा कि ''महाराज अब पहले जैसे नहीं रहे। जीवन के पूर्वार्द्ध में तो अकल्पनीय साधना की। अब जब शरीर की स्थिति का भरोसा नहीं है तब शरीर से विरक्त होने के स्थान पर उससे प्रीति दिखा रहे हैं।''

''वह औषधि तुम लोग न ला सकोगे।''

महाराज के वचनों से सभी को निराशा हुई किन्तु शंकालू के मन में आया ''तो क्या महाराज स्वयं दवा का प्रबंध करेंगे? हाय-हाय एक समय उद्दिष्ट व्रत को बड़ी दृढ़ता से पालन करने वाले, महाराज आज उसे भंग कर देंगे क्या?''

''उसकी व्यवस्था मैं ही करता हूँ।'' महाराज सस्मित बोले।

''अब तो निश्चित हो गया।'' शंकालू का शरीर कांप गया और भक्तों के चेहरे खिल उठे। अन्ततः महाराज की व्याधि जो दूर होने वाली थी।

''यह शरीर पिछले कुछ समय से हमें बहुत तङ्ग कर रहा है। पहले, दांतों ने उपद्रव किया। उसके उपरांत आँखों के चोंचले चालू हो गए। एक की ज्योति मंद पड़ चुकी है और दूसरी भी चेतावनी दे रही है।'' महाराज गंभीर हो चुके थे और शंकालू पश्चाताप से भर गया था। भक्तों की सांसें फूलने लगीं।

''कहीं महाराज ऐसा-वैसा तो नहीं सोच रहे हैं।'' गौतम चिंतामग्न हो गया।

''यम समाधि तो नहीं...।'' इस विचार मात्र से मार्ले की आत्मा हिल गई।

''हमने जीवन में किसी की पराधीनता स्वीकार नहीं की, फिर भी इस शरीर का समुचित पोषण किया। यथासमय योग्य उपचार भी किया किन्तु अब हम इस शरीर के लिए अपना अमूल्य समय नष्ट नहीं कर सकते।''

महाराज के एक-एक शब्द लोग बड़े ध्यान से सुन रहे थे। भक्त भावना कर रहे थे कि उनका अनुमान असत्य निकले।

''अब हम थोड़े ही दिनों में यम समाधि धारण कर लेंगे।''

गौतम जब वृक्ष की शाखा से गिरा था तब उसे पांव के टूटने पर जो पीड़ा हुई थी, यह पीड़ा उससे बहुत अधिक थी।

मार्ले को लगा कि ''कदाचित उसकी समूची संपत्ति लुट जाती तब भी उसे ऐसा दुःख न होता, जैसा अभी हो रहा है।''

''अर्थात् महाराज के कहने का अर्थ था कि वे समाधि धारण कर वर्तमान शरीर को छोड़ नवीन शरीर को प्राप्त कर लेंगे।'' इस एक घटना से शंकालू, श्रद्धालू बन चुका था। ''पंचम काल है अन्यथा ये महात्मा तो मोक्ष की साधना कर लेते। इन्हें तो निश्चित ही महर्द्धिक देवों का दिव्य शरीर प्राप्त होगा जिसमें दाद-खाज क्या, शरीरांत तक कोई व्याधि ही न होगी।''

बैतूल के जिनकुमार भी यहां उपस्थित थे। इस दृश्य को देखकर वह

बहुत भावुक हो चुके थे। गजपंथा प्रवास की स्मृतियां उनके मानस पटल पर चलने लगीं। गौतम ने उसे हिलाया तो अश्रुपूरित नेत्रों से वह उन्हें साझा करने लगा। ''रात्रि के समय में महाराज के निकट ही सोता था। महाराज के समीप पूर्ण नीरवता रहती, इतनी कि उनकी श्वासों की आवाज भी तब सुनाई पड़ती जब पूर्ण उपयोग पूर्वक सुनें।'' जिनकुमार जिस तन्मयता से बतला रहा था, उपस्थित श्रोताओं को लगा कि वे साक्षात् अतीत में ही पहुँच गये हों। ''एक बार महाराज को बहुत ज्वर, था, उनके शरीर से मानों लपटें छूट रही थीं किन्तु वे चुपचाप शांत थे ऐसे कि जैसे निरोग अवस्था में रहते थे।''

''बहुत पुण्यशाली हो भैया, जो ऐसे तपस्वी महाराज की देखभाल का लाभ मिला।'' मार्ले ने जिनकुमार की सेवा-भावना की अनुमोदना की।

जिनकुमार को हंसी आ गई। सभी को आश्चर्य हुआ कि ''अभी-अभी तो यह आंसू बहा रहा था और अब असमय में हंसी?''

''देखभाल...।'' जिनकुमार एक बार पुनः हंसा किन्तु फिर सभी के चेहरों से उनकी जिज्ञासा समझकर आगे बोला ''मैं महाराज की क्या देखभाल करता, वे ही मेरा ध्यान रखते थे।''

''कैसे?'' संघपति ने साश्चर्य पूछा।

''महाराज को लघुशंका आदि की बाधा तो नहीं है ऐसा सोचकर जब कभी मैं उठता तो महाराज को ध्यानावस्था में ही पाता।''

''तो इसमें हँसने वाली क्या बात?'' गौतम ने सोचा किन्तु वह बोला कुछ नहीं।

''एक दिन मुझे गहरी नींद आ गई। प्रातः महाराज ने पूछा रात को तुम कहाँ चले गए थे। मैं उनके वाक्य का अर्थ नहीं समझ सका तो महाराज ने हंसते हुए मेरे खर्राटों का हाल सुनाया।''

''अच्छा तो आपको इस हादसे पर हंसी आ रही थी।'' गौतम सहित सभी ने जोर का ठहाका लगाया।

''हाँ किन्तु महाराज इनकी देखभाल करते थे, ऐसा अर्थ तो ध्वनित नहीं हो रहा है।'' नवीन श्रद्धालू पुनः शंकालू बन गया।

''महाराज मुझसे सस्नेह बोले, माना कि शरीर के श्रम निवारण हेतु निद्रा आवश्यक है किन्तु इस बात को विस्मृत नहीं करना चाहिए कि मृत्यु न दिन देखती है और न रात।'' शंकालू को लगा कि उसका मन कितना अधीर है।

जिनकुमार को एक और संस्मरण याद आ गया। ''सामायिक पूर्व, मैं महाराज के नेत्रों में औषधि लगाता था। औषधि लगाते ही महाराज के नेत्रों से आँसू निकलने लगते थे।''

अरविंद रावजी ने महाराज से पूछा ''महाराज, जिनकुमार इतने दिनों से अंजन लगा रहा है, इससे आपको कुछ लाभ भी होता है कि नहीं।''

''इतने बड़े शरीर में इतनी-सी औषधि क्या करेगी ?'' महाराज ने विनोदपूर्ण मुखाकृति के साथ कहा।

''जिनकुमार, फिर तुम महाराज के कोमल नेत्रों में ये तीखा अंजन लगाकर, महाराज को कष्ट क्यों देते हो ?''

''आंसू बहने से नेत्रों में ठंडक आ जाती है, इससे महाराज को कुछ शांति मिलती होगी।'' अपने उत्तर के समर्थन में, मैंने महाराज की ओर देखा।

महाराज कुछ कहते उसके पूर्व ही अरविंद रावजी का मन बोल पड़ा ''शरीर से आत्मा को शांति कैसे ? सिर में दर्द है तो पैर में पट्टी लगाने का क्या प्रयोजन ?'' उन्होंने भी अपनी अव्यक्त जिज्ञासा महाराज के समक्ष रख दी।

''हमारी आत्मा में अगाध शांति है, थी और वह आगे भी कम न होगी। किन्तु शरीर को शांति मिलने से क्षण भर ही सही किन्तु मन को भी शांति का आभास हो ही जाता है।''

महाराज के इस एक वाक्य से हम दोनों की जिज्ञासाओं का समाधान हो गया।

''सत्य कहा आपने।'' शंकालू श्रावक ने बड़ी श्रद्धा से कहा ''महाराज की आत्मा में अखंड, अनंत शांति है, वह शारीरिक रोगों से न खंडित हो सकती है और न कम हो सकती है।''

इस तरह श्रावक समुदाय महाराज की उपस्थिति में उनकी साक्षात्-भक्ति में लीन रहता एवं उनके ध्यानस्थ होने पर उनके संस्मरणों में डूब

जाता। ग्रीष्म का कष्टप्रद दिखने वाला यह लंबा विहार ऐसे पूर्ण हो गया जैसे समवसरण की यात्रा पूर्ण हो जाती है। महाराज ने एक चातुर्मास कुंथलगिरि में सम्पन्न किया तो अगला फलटन में एवं फिर चातुर्मास की शृंखला समापन करने वाले चरम-चातुर्मास हेतु कुंथलगिरि पहुँचे गये।

''मैं यहां एक विशेष उद्देश्य से आया हूँ।'' महाराज के इस वाक्य के साथ उद्बोधन प्रारंभ हुआ। जब तक मेरा शरीर मेरे संयम में सहायक रहेगा तब तक मैं इसको चलाने के लिए दाना-पानी देता रहूँगा किन्तु जैसे ही यह मेरे संयमाचरण में बाधक बनने लगेगा मैं भी इसकी उपेक्षा करके आत्मशुद्धि में लग जाऊँगा।'' कुंथलगिरि की इस भव्य आगवानी पर अपार जन-समुदाय उपस्थित था, वह महाराज के भावों को समझ रहा था। ''जब तक यह मेरा दूसरा नेत्र मेरी समितियों का सहयोगी बना रहेगा तब तक आहार पानी लेने का मार्ग खुला रहेगा।'' महाराज ने जैसे अपने प्रारंभिक वाक्यों का स्पष्टीकरण कर दिया।

महाराज के उपदेशों से परम शांति का पान करने वाली जनता आज उन्हीं महाराज के उपदेश से विचलित सी हो उठी। भक्तों के मन में रह-रहकर एक आशंका उठने लगी कि ''कहीं यह महाराज का अंतिम चातुर्मास न हो।''

2 अगस्त से महाराज ने अपना आहार दो कौर पर सीमित कर दिया। तदनंतर 10 अगस्त से मात्र बादाम का जल, वह भी अल्प मात्रा में लेने लगे। 14 अगस्त को सेठ चंदूलाल की भक्ति सफल हुई। बहुत काल के पश्चात् उन्हें महाराज का पड़गाहन प्राप्त हुआ था। वे बहुत दु:खी थे कि आहार में कुछ दे ही नहीं पा रहे हैं। महाराज की अंजुली छूटते ही बहुत समय से बलात् रोककर रखी उनकी अश्रुधारा बह निकली। महाराज उन्हें देखकर मुस्कुराये।

श्रावक महाराज की इस मुस्कान का रहस्य समझने में लगे थे कि तभी महाराज के मुख से एक वाक्य निकला ''सेठजी दु:खी हो रहे हैं जबकि इनके भाग्य में तो अंतिम आहार का लाभ लिखा था।''

चंदूलाल जी धड़ाम से गिर गए। पूरे भारतवर्ष में यह समाचार फैल

गया। गेंदनमलजी मुंबई से भागे-भागे आए किन्तु महाराज पिछले दो दिनों से जल भी नहीं ले रहे थे। आज 17 अगस्त का दिन है, कुछ अंजुलि जल लिया अतः संघपति को कुछ संतुष्टि तो हुई किन्तु मन नहीं मान रहा था अतः महाराज से निवेदन किया।

''महाराज आप अभी आहार लेना बन्द मत कीजिए।''

''क्यों ?'' ऐसा महाराज पूछेंगे, उपस्थित अन्य लोग सोच रहे थे किन्तु महाराज के मुखमण्डल पर मुस्कान रूपी उत्तर था, उनके मन से जैसे प्रश्नों की इच्छाएँ भी समाप्त हो चुकी थीं।

''आपके सभी भक्त दूर-दूर हैं। वे सब आपके दर्शन एवं सेवा-पूजन के अभिलाषी होंगे। कम से कम उनमें से कुछ प्रमुख लोगों को तो यहां आ जाने दीजिए।'' गेंदनमलजी को लगा, महाराज पर उनकी बात का जैसे कोई प्रभाव ही नहीं पड़ा अतः वे आगे बोले ''महाराज चौमासा होने से दूर चातुर्मासरत मुनि, आर्यिका आदि नहीं आ पा रहे हैं। चौमासा पूर्ण होने पर वे गुरुदर्शन पाकर कृतकृत्य अनुभूत करेंगे।''

''ये सी एकला जास ऐकला। साथी कुणि न कुणाचा।'' महाराज बोले ''प्राणी अकेला जन्म धारण करता है और अकेला ही जाता है। कोई किसी का साथी नहीं है।''

''महाराज...!'' गेंदनमल जी के मुख से निकला।

''न हम किसी को आने से रोकते हैं न किसी को जाने के लिए कहते हैं फिर हम कैसे किसी के लिए रुक सकते हैं ?''

''महाराज, आपके शिष्यों की तीव्र भावना है, वे आपके पास अवश्य आना चाहते हैं।'' गेंदनमल जी ने पुनः सभी साधुओं की ओर से महाराज तक उनकी भावनाएँ प्रेषित कीं।

''कौन किसका शिष्य कौन किसका गुरु।'' महाराज मानों शिष्य-गुरु के संबंधों से ऊपर उठ चुके थे। **आत्मा एव आत्मनः गुरुः इष्टोपदेश** ग्रंथराज की इन पंक्तियों को चरितार्थ करते हुए ''जिनका जैसा भाग्य होगा, आत्म-कल्याण का अवसर उन्हें उस रूप में अवश्य प्राप्त होगा। दूसरे के

कर्मों का निर्धारण हम थोड़े ही कर सकते हैं। हमारा अपने ही ऊपर अधिकार है और अपने ही कर्मों के लिए हम उत्तरदायी हैं। हमारी अंतरात्मा कह रही है कि अब सही समय आ गया है। दूसरों के लिए हम अपनी आत्मा के हित में बाधा डालें ?''

महाराज की कोमल वाणी में वज्र-सम कठोर संकल्प की गूंज थी। यह उस वीतराग की प्रतिज्ञा थी जिसने पिछले अनेक वर्षों से अथवा यूं कहें कि अनेक भवों से तो कोई अतिशयोक्ति न होगी, निरंतर तपस्या से वैभाविक भावों पर विजय प्राप्ति की यात्रा प्रारंभ कर दी थी। वे प्रत्येक कार्य आत्म-कल्याण की कसौटी पर कसकर परखते थे और खरा उतरने पर उसे करते ही थे, फिर चाहे सारा संसार ही उनके विपक्ष में हो या फिर मोहवश दिन-रात आंसू बहाता रहे, महाराज के संकल्प को न भक्तों के आंसुओं की धारा गला सकती थी और न विरोधियों की आग ही उसे जला सकती थी।

महाराज का निश्चय अटल जान गेंदनमल जी के मुख से फिर एक शब्द भी न निकला। हाँ ऐसा अवश्य लगने लगा कि महाराज तलहटी से पर्वत की ओर जाने वाले हैं तो निकट बैठे जिनसेन स्वामी ने कहा ''महाराज आज का दिन ठीक नहीं है, आज तो अमावस्या है।''

''बहुत उत्तम।'' गेंदनमल जी मन ही मन बोल उठे। ''चूंकि महाराज सभी महत्त्वपूर्ण कार्य मुहूर्त आदि के विचारपूर्वक करते हैं अत: अधिक नहीं तो कुछ समय और मिल जायेगा।'' उनका मन प्रसन्नता से भर गया।

''भगवान महावीर स्वामी अमावस्या को ही मोक्ष गए हैं।'' महाराज के मुख से ऐसे वचन सुन न केवल गेंदनमल जी, अपितु वहां उपस्थित सभी लोग भाव-विह्वल हो गए। महाराज को तत्काल समाधि से रोकने के सारे प्रयास बंद हो गए थे अत: मन-मसोसकर उन्होंने आपस में चर्चा कि ''महाराज का मन समाधि के लिए बड़ा उत्सुक है तथा वे अंतिम तीर्थेश को सदा चित्त में धारण किए रहते हैं अत: कथंचित विचारपूर्वक ही उन्होंने इस तिथि का निर्णय लिया होगा।''

महाराज ने पर्वतराज पर पहुँचने के उपरांत शीघ्र ही समाधि की ओर

बढ़ने के रहस्य का उद्घाटन किया।

''लोणंद चातुर्मास समापन की रात्रि में एक स्वप्न आया था।'' चंदूलाल जी एकदम सचेत होकर महाराज का स्वप्न सुनने लगे। ''हमारे आसपास पाँच-सात सौ व्यक्ति बैठे थे।'' गेंदनमल जी ने कौतुकवश चारों ओर देखा तो अभी पाँच-सात व्यक्ति भी नहीं थे। ''लगभग 12 हाथ लंबा सर्प घेरा बांधकर बैठ गया।''

कुंथलगिरी मंत्री के मन में कुछ भय का संचार सा हुआ अत: उन्होंने सब ओर खूब अच्छी तरह निरीक्षण कर लिया किन्तु यहाँ कोई सांप नहीं था। ''सर्पराज लोगों के पास से आकर, हमारे सिर पर चढ़ गया।'' जिनसेन स्वामी सर्प को भगाने सचमुच उठ गए। महाराज ने सभी को शांत रहने कहा।

जिनसेन जी को सर्प नहीं दिखा तो उन्होंने पूछ ही लिया ''क्या सर्प चला गया?''

''हाँ।'' महाराज बोले। ''सर्प यमराज का प्रतीक था।''

''किन्तु सर्प के जाने का अर्थ यह हुआ कि अब वह संकट टल गया।'' सब मानो एक साथ यह कहना चाह रहे थे।

''चेतावनी एक बार मिलती तो अलग बात है।''

''अर्थात् और भी स्वप्न आए थे आपको।'' गेंदनमल जी के मुख से साश्चर्य निकल पड़ा।

''वारसी में एक विशालकाय सिंह दिखा था। उसके मुख में पूरा एक आदमी समा सकता था। उसने हमारी गर्दन को पकड़कर अपने मुँख में रख लिया।''

गेंदनमल जी को लगा कि ''काश वो उस सिंह के दोनों जबड़ों को पकड़ लेते।''

चांदमल जी सोच रहे थे कि ''वह महाराज को सिंह के मुख से खींचकर, उसकी क्षुधा मिटाने स्वयं को वहां रख देते।''

''किन्तु उसके दाँत नहीं लगे।'' महाराज के इस वाक्य से दोनों के प्राण में प्राण आए।'' फिर आपने प्रभु का स्मरण करते हुए, सिंह के कान

पकड़कर उसे भगा दिया होगा!'' ब्र.भरमप्पा जो अभी-अभी महाराज के कक्ष में पहुँचे थे उन्होंने पूर्ण आत्मविश्वास के साथ कहा।

महाराज ने मुस्कुरा दिया। वे बोले ''कुछ दिनों तक चिंतन किया तब यह अर्थ द्योतित हुआ कि विपत्ति का समाधान कहीं न कहीं अन्न त्याग में है।'' सभी टकटकी लगाकर महाराज की ओर देख रहे थे। महाराज ने आगे बतलाया ''एक रात एक और स्वप्न आया जिसका आशय था कि अब हमारे अन्न त्याग का समय आ गया है।''

भरमप्पा का मन फलटण पहुँच गया। ''कार्तिक मास की ठंड पड़ने लगी थी। सूर्योदय भी कुछ विलंब से हो रहा था किन्तु बड़ी देर तक ध्यान में स्थित रहने वाले महाराज को उस दिन सूरज का देर से उदित होना असहज था। सूर्य की प्रथम रश्मि के पड़ते ही महाराज जिन-मंदिर पहुँच गए और फिर उस दिन के उपरांत उन्होंने अन्न ग्रहण नहीं किया।''

''महाराज, कुंथलगिरि में भी आपने कोई स्वप्न देखा है?'' जिनसेन जी ने जिज्ञासा रखी। ''आप दो दिन पूर्व कुछ बतलाने वाले थे किन्तु पता नहीं क्यों आपने टाल दिया।''

महाराज ने गेंदनमल जी की ओर दृष्टि की। उनके हाथ जुड़े हुए थे ''जैसे वे स्वप्न को सुनना भी चाह रहे थे किन्तु उनका भाव यही लग रहा था कि बस अब और कोई स्वप्न-वार्ता नहीं।''

महाराज ने मुस्कुराकर उन्हें जैसे आश्वस्त किया। फिर बोले ''एक समय हम जंगल में एकाकी खड़े थे। एक मजबूत सींगों वाला भयंकर जंगली भैंसा दौड़ता हुआ आक्रोशपूर्वक हम पर झपटा। कहीं से एक साधु आ गए। उनके हाथ में एक बड़ी सी लकड़ी थी। उन्होंने उससे भैंसे को ताड़ित किया, तो भैंसे ने मानो आत्मसमर्पण कर दिया। हम उस समय सिद्ध प्रभु का जाप कह रहे थे। साधु ने हमसे कहा ''अब आप संकटमुक्त हैं।''

उपस्थित सभी लोगों ने राहत की सांस ली। सबको लग रहा था कि पर्वत चढ़कर, फिर इतनी लंबी वार्ता करके महाराज बहुत थक चुके होंगे अत: अब मौन धारण कर लेंगे किन्तु उनके मुखमण्डल पर एक रहस्यमयी भाव

दिखा अत: न चाहते हुए भी सभी की ओर से जिनसेन जी ने महाराज से उसका कारण पूछा। महाराज बड़े संकोचपूर्वक बोले ''विपत्ति भले ही दूर हो गई, किन्तु स्वप्न से ऐसा ध्वनित होता है कि अब कालक्रम से प्रशांत साधु के दर्शन दुर्लभ होते जायेंगे।''

अब महाराज के दर्शन कुछ ही दिन हो सकेंगे ऐसे दुर्लभ क्षणों के साक्षी बनने देश-विदेश से विद्वत्-वर्ग एवं भक्तगण एकत्रित होने लगे। ऐसे में महाराज के पूर्व जीवन के संबंधी भी पीछे कैसे रहते। आदरणीय कुंभगौड़ा के सुपुत्र जिनगौड़ा पाटील भी उपस्थित हो गए। महाराज को देखते ही जिनगौड़ा का मन विचारमग्न हो गया। ''आपकी गोद में खेलकर बड़ा हुआ हूँ। आपने मुझे प्रेम भी दिया और संस्कार भी दिए। पिताजी तो साथ छोड़कर चले गए अब आप जाना चाहते हैं।'' उनकी आँखें आँसुओं से भर गईं।

''हमने समाधि शरीर के विनाश के लिए नहीं, आत्मा की रक्षा के लिए ली है।'' जिनगौड़ा को दु:खी देख महाराज ने कहा ''संयम के द्वारा अन्य जीवों को अभय-दान तो मिलता ही है हमारी आत्मा भी अमरता को प्राप्त हो जाती है। समाधि संयम-साधना का उपसंहार है।'' महाराज सस्नेह बोले ''तुम्हें दु:खी होने की अपेक्षा दु:खों से छूटने का उपाय करना चाहिए।''

''महाराज, उसके लिए क्या करूँ।''

''हमारी तरह दैगम्बरी दीक्षा धारण...।''

''महाराज, इनका भरा-पूरा परिवार है उनके प्रति अभी इनके बहुत कर्तव्य शेष हैं।'' एक मुँह लगे श्रावक ने कहा ''अभी आप इन्हें अणुव्रत की ही प्रेरणा दीजिए, पीछे जब योग्य समय, आयेगा तब महाव्रत ग्रहण कर लेंगे।

''आपका कहना सही है।'' पाटील परिवार के एक अन्य शुभचिंतक ने पहले वाले की बात का समर्थन करते हुए कहा ''वर्धमान सागर जी ने जैसे गृहस्थी संबंधी समस्त कर्तव्यों का अच्छे से निर्वहन किया फिर यथासमय मुनि बन गए।''

''ना बाबा।'' महाराज बोले ''वह गृहस्थी के जाल में उलझे हुए थे जिस प्रकार सुनार चांदी के तार को यंत्र में से जोर से खींचता है उसी प्रकार

हम उसे खींचकर संयम में लगा पाये हैं।''

''अर्थात् आप पाटील जी को भी खींच लेना चाहते हैं।'' प्रथम शुभचिंतक ने हँसते हुए कहा।

''खींचना तो कुंभगौड़ा को भी चाहा था किन्तु उसके पहले उसे मृत्यु खींच ले गई, वह सात प्रतिमा ही ले पाया, मुनि न बन सका।'' महाराज कुछ अधिक गंभीर हो गए थे।

''कुछ समय अभ्यास कर लूं फिर मुनि बनूंगा।'' जिनगौड़ा ने संकल्प लिया।

''यदि यह मुनि बनता है तो तुमको कोई आपत्ति तो नहीं है ?'' महाराज ने जिनगौड़ा की धर्मपत्नी लक्ष्मीदेवी की ओर दृष्टि की।

''महाराज कल के बदले यदि ये आज ही मुनि बनना चाहें तो बन जाएँ।'' लक्ष्मी देवी ने एक साधिका की भाँति कहा ''न इन्हें मेरी ओर से रोक-टोक है और न इन्हें मेरे लिए रोक-टोक होना चाहिए।''

महाराज के मुखमण्डल पर संतोष की स्मित फैल गई। उन्होंने जिनगौड़ा की संतति की ओर देखा तो उन्होंने भी अपनी सहमति दर्शा दी। ''जिनगौड़ा तुम जब मुनि बनने लगो तो अपने पुत्र को भी आगे मुनिपद धारण करने की प्रेरणा अवश्य देना।'' महाराज क्षण एक रुके फिर बोले ''पाटील घराने में संयम धारण करने की परंपरा निरंतर चलती रहे इसका सभी जन ध्यान रखना।''

जिनगौड़ा और लक्ष्मी देवी ने हर्षपूर्वक प्रतिमाओं को धारण किया एवं उनके बच्चों ने भी यथायोग्य नियम स्वीकार किये।

अनेक सुधी-श्रावक महाराज से यथायोग्य नियम-संयम धारण करके स्वयं को धन्य अनुभूत कर रहे थे। आसपास साधनारत साधु-संत भी महाराज के समीप पहुँच रहे थे। 12 क्षुल्लक, 5 क्षुल्लिकाएँ और 15 ब्रह्मचारी उपस्थित हो चुके थे। श्रेष्ठी एवं विद्वानों में पं. सुमेरचंद, माणिकचंद, मक्खनलाल, महावीर प्रसाद, सूरजमल आदि अनेक गणमान्य व्यक्ति वहां एकत्रित थे।

''हम स्वयं के संतोष से अपने प्रथम निर्ग्रंथ शिष्य वीरसागरजी को इस परंपरा का संरक्षण एवं संवर्धन करने के लिये आचार्य पद प्रदान करते हैं।

महाराज के मुखारविंद से नि:सृत इस घोषणा से वहाँ नीरवता छा गई।

महाराज ने आगे कहा ''वीरसागरजी बहुत दूर हैं, यहां नहीं आ सकते, अन्यथा हम उन्हें प्रत्यक्ष ही उत्तरदायित्व सौंपते।''

उस समय हजारों किलोमीटर दूरी पर विराजमान वीरसागर महाराज ने जब महाराज के यह वचन सुने कि ''वीरसागर को हमारा आशीर्वाद। उन्हें शोक करने की आवश्यकता नहीं, वे शांत भाव रखें।'' तो क्षण एक के लिए विचलित होता हुआ उनका मन गुरु के अनुग्रह से धैर्य को प्राप्त हो गया। गुरु महाराज का एक-एक शब्द किसी गहन सूत्र से कम नहीं है। कभी उन्हें ऐसा प्रतीत होता कि मानो गुरुदेव प्रत्यक्ष ही उपदेश दे रहे हों। ''वीरसागर, आगम के अनुसार प्रवृत्ति करना, ऐसे ही समाधि धारण करना, किन्तु उसके पूर्व श्रमण परंपरा के प्रवाह को गतिमान करने हेतु सुयोग्य शिष्य को उत्तराधिकारी नियुक्त कर देना।'' तो कभी मन खेद से भर-भर जा रहा था। ''ओह! गुरुदेव की सल्लेखना एवं अंत बेला पर उनकी निकटता न पा सका।'' वीरसागर जी का मन स्वयं से वार्ता कर रहा था। ''हजारों की संख्या में एकत्रित जनता की प्रार्थना पर भी जिस आचार्य पद को मैंने ग्रहण करना नहीं चाहा, उसे इस 81 वर्ष की अवस्था में अनिच्छा होते हुए भी, गुरुदेव का प्रसाद समझकर स्वीकार करना पड़ेगा।'' मन का मन से संघर्ष चल रहा था। ''गुरुदेव की आज्ञा का उल्लंघन कैसे करता? किन्तु इस स्वेच्छाचारी युग में मुझ जैसे अपुण्यशाली से इस पद का निर्वाह कैसे होगा?''

वीरसागर महाराज ने स्मृति पटल पर अंकित गुरुचरणों में अपना माथा रखा तो उन्हें लगा जैसे उन्हें कोई अलौकिक शक्ति की उपलब्धि हो गई हो।

पिछले कुछ दिनों से महाराज ने जल लेना भी बंद कर दिया था जबकि वातावरण में पर्याप्त गर्मी थी। लोगों को लग रहा था कि खाली पेट महाराज को तड़पन होती होगी किंतु इस अनुमान की सत्यता पर महाराज ने कभी मुहर नहीं लगने दी। पर पानी की कमी और पेट की गड़बड़ी से तालू में छाले आने से सब स्पष्ट था। मस्तिष्क की शिराएँ वेग से फूल रही थीं। पैरों की सूजन पर झुर्रियों के हस्ताक्षर कोई भी पढ़ सकता था। कर्म रिपु के आदेशानुसार

क्षपकराज के नोकर्म रूप शरीर को संरक्षित करने वाली पुद्‌गल वर्गणाओं पर अंकुश लग चुका था। असाता का तांडव नृत्य पूरे चरम पर था, उसकी हर एक ताल पर क्षपक की काया निढाल हुई जा रही थी। नियति ठहाका मारकर हंसना चाहती थी किन्तु शान्तिसागर महाराज की विशुद्ध परिणति के समक्ष उन्हें विचलित करने में ये सब लोकमान्य प्रतिकूलताएँ आत्म-समर्पण की स्थिति में थीं।

पं. जगन्मोहन लाल जी पधार चुके थे। उन्होंने महाराज से जल लेने का निवेदन किया किन्तु महाराज की ओर से उत्तर न आया।

''महाराज आपका यह शरीर हम लोगों की दृष्टि से कल्याणदायी तथा ममत्व की वस्तु तो है ही यह आपके लिए भी उपेक्षा का पात्र नहीं है।'' दिवाकरजी पूर्व से ही महाराज के निकट बैठे थे, उन्होंने कहा।

''यह रत्नत्रय का साधक शरीर जब तक रहेगा तब तक ही महाव्रत सुरक्षित हैं।'' पं. जगन्मोहन जी ने दिवाकर जी की बात को आगे बढ़ाया। ''अभी आप छठवें-सातवें गुणस्थान का आनंद ले रहे हैं, यह शरीर छूटा तो चतुर्थ गुणस्थान में रहना होगा। इससे तो आपकी हानि ही है।''

''महाराज इसलिए आपको जल ले लेना चाहिए।'' दिवाकर जी ने भी अपनी भावना व्यक्त कर दी।

''किन्तु हमने जल का त्याग कहाँ किया है।'' उस नि:शक्त शरीर में सशक्त मुस्कान फैल गई थी।

''चार दिन हो चुके हैं, आपने जल नहीं लिया। सर्वत्र चिंता व्याप्त है। हम सभी की प्रार्थना पर ध्यान दीजिए महाराज।'' लक्ष्मीसेन जी एवं जिनसेन जी ने निकट आते हुए निवेदन किया।

''चिंता तो हमें भी है।''

महाराज का वाक्य सुनते ही सबके चेहरे खिल उठे। संकेतों ही संकेतों में महाराज के पड़गाहन की व्यवस्था हो गई।

''अब बिना सहारे खड़ा होना कठिन हो गया है ऐसे में निर्ग्रंथ मुनि

आहार ग्रहण के लिए उठता है तो वह अपनी चर्या में दूषण उत्पन्न किए बिना नहीं रहेगा।''

सभी के चेहरे मुरझा गए। ''अब क्या महाराज जल भी नहीं लेंगे?'' रह-रहकर सभी के मस्तिष्क में एक ही बात गूंजने लगी किन्तु समझने वाले समझ गए कि ''शांतिसागर महाराज जैसा आगम के अनुसार चर्या करने वाला तपस्वी साधु जीवन के उपसंहार के समय अपनी चर्या में दोष कैसे लगा सकता है।''

शांतिनाथ भुजबली वैद्यराज भी वहां उपस्थित थे। वे समझ रहे थे कि ''जल ग्रहण की प्रक्रिया में महाराज की जितनी शक्ति का व्यय होता है उसका बहुत थोड़ा अंश ही जलग्रहण से उन्हें प्राप्त हो पाता है।'' फिर भी गुरुभक्तों का मन कहाँ मानता है उन्होंने महाराज की नाड़ी देखना चाही।

''नाड़ी देखने से क्या लाभ होगा? क्यों व्यर्थ के काम में लगे हो। इस शरीर में कोई ज्वर आदि रोग नहीं हैं।''

''महाराज मैं अपने लाभ के लिए ऐसा कर रहा हूँ। इतने लंबे अंतराल तक बिना कुछ खाये-पिये कोई शरीर स्वस्थ भी रह सकता है यह चिकित्सा जगत् के लिए आश्चर्य एवं शोध का विषय है।''

''तुम संसार भर का कल्याण करते फिरते हो, कुछ अपनी आत्मा के हितार्थ भी सोचो।'' महाराज बड़े धीमे-धीमे किन्तु दृढ़ स्वर में बोले ''दूसरे के कपड़े धोते-धोते समय क्यों गँवा रहे हो, अपनी आत्मा को स्वच्छ करने के लिए व्रत, नियम, संयम आदि धारण करने में ही तुम्हारा लाभ है।''

वैद्यराज महाराज की नाड़ी देखने आए थे किन्तु महाराज ने उन्हीं की नाड़ी देख ली। वैद्य ने यथायोग्य व्रत तो ग्रहण कर लिए किन्तु महाराज ने फिर आगे जल ग्रहण न किया। ''महाराज, आज तक धर्म के क्षेत्र में आप ही समस्त समाज के बड़े आश्रय थे। समय-समय पर आप ही निर्भयतापूर्वक समाज का मार्गदर्शन किया करते थे। अब आप हमें छोड़कर जा रहे हैं। आपके बाद हम किसका आश्रय लेंगे?'' पं. जगन्मोहन लाल जी ने बड़े

करुण स्वर में कहा।

''जिसका आश्रय हम लेते थे, उसका।'' करुणा के सागर महाराज ने सस्मित उत्तर दिया।

दु:खी पंडित जी के मुख पर मुस्कान छा गई।

''लेकिन हम समझ नहीं पाए महाराज।'' संघपति ने प्रार्थना के हाथ जोड़ लिए, मानो कह रहे हों ''ऐसी रहस्यपूर्ण बातें हम भोले प्राणियों को समझ नहीं आती, कुछ स्पष्ट कर देवें तो अच्छा होगा।''

''हम जीवन भर किसके आश्रित रहे?'' महाराज ने दृष्टि पंडित जी की ओर से संघपति की ओर कर दी।

''प्रश्न के बदले वही प्रश्न?'' संघपति कुछ क्षण के लिए महाराज की इस शैली से जैसे दुविधा में पड़ गए।

''केवल धर्म के न!'' महाराज बोले ''रत्नत्रयरूपी धर्म ही सबके लिए अभयप्रद है। इसलिए कहता हूँ आप लोग भी उसी का आश्रय लें।''

तभी ऐसे धर्ममूर्ति शांतिसागर महाराज के दर्शनार्थ अक्किवाट से पिहतास्रव मुनिराज पधारे। उन्हें देखकर महाराज को बड़ा हर्ष हुआ। पंचेन्द्रिय के विषयों में आसक्त सर्व कषायों से संयुक्त जीव भी जब मुनिमुद्रा को देखकर गदगद हो जाता है तब फिर अतीन्द्रिय आत्मानुभवन की ओर अग्रसर, अप्रमत्त दशा के अधिकारी योगी अन्य सदृश योगियों को देखकर किस परम अह्लाद को प्राप्त होते होंगे यह महाराज की प्रतिक्रिया देखकर जाना जा सकता था। शरीर नि:शक्त था किन्तु मुनिराज के प्रति अगाध वात्सल्य भाव झलक रहा था। महाराज ने न केवल मुनिराज से यथायोग्य समाचार किया किन्तु उनके साथ मधुर संभाषण भी किया। मुनिराज के साथ प्रारंभ हुए वार्तालाप ने धर्मोपदेश का रूप ले लिया। महाराज ने इष्ट-स्मरण करते हुए णमोकार मंत्र की महिमा बतलाई। फिर बोले ''अनंतकाल से जीव, पुद्‍गल दोनों भिन्न-भिन्न हैं। यह सब जगत् जानता है किन्तु विश्वास नहीं करता। जैनी होकर भी जिनधर्म के इस सार को वह स्वीकार नहीं कर पाता।''

बंबई वाले निरंजन लाल जी साथ में रिकार्डिंग मशीन लाए थे। उपदेश

उसमें रिकॉर्ड हो रहा था। ''पुद्गल के पक्ष में पड़ने के कारण जीव दु:खी होता है? सुख प्राप्ति की इच्छा हो तो मिथ्यात्व का त्याग कर सम्यग्दर्शन को धारण करें। दर्शन मोहनीय को समाप्त करने आत्मचिंतन करें।'' संघपति गेंदनमल जी महाराज के उपदेश को इस तरह ध्यान लगाकर सुन रहे थे जैसे यह उन्हीं के लिए था। ''आत्मचिंतन के लिए दो घड़ी जघन्य कही हैं किन्तु हमारा कहना है कि उतना न हो सके तो कम से कम पाँच मिनिट अवश्य ही आत्म-चिंतन करें।''

विद्वत्-वर्ग भी उपदेश का साक्षी था। महाराज ने कहा ''सम्यग्दर्शन प्राप्तकर संयम के पीछे लगना चाहिए। संयम धारण करने में डरो मत क्योंकि बिना संयम के (सप्तम गुणस्थान) आत्मानुभव नहीं। बिना आत्मानुभव के निश्चय सम्यग्दर्शन नहीं। निर्विकल्प समाधि भी तभी होगी।'' पिहितास्रव मुनिराज के साथ-साथ क्षुल्लक द्वय भी वहां उपस्थित थे। महाराज ने अंत में सारभूत रूप में कहा ''सम्यग्दर्शन धारण करो, संयम धारण करो, तब आपका कल्याण होगा। इनके बिना कल्याण नहीं होगा।''

महाराज का उपदेश रिकॉर्ड होने के बाद फिर सुना गया। हजारों नहीं, लाखों ने सुना, आज तक भी सुना जा रहा है, आगे भी सुना जाता रहेगा। जब तक धर्म रहेगा, तब तक वीतराग पुरुषों का उपदेश जीवंत रहेगा अथवा यूं कहें कि जब तक जिनवाणी की अमृतवृष्टि होती रहेगी तब तक धर्म की सृष्टि बनी रहेगी। मराठी का यह उपदेश वे भी सुन रहे थे जिन्हें मराठी समझ नहीं आती थी। सिंह को क्या चारण ऋद्धिधारी मुनियों की भाषा समझ आयी होगी? उस सिंह को क्या समझ आया, आज ये संपूर्ण जगत् समझ सकता है। मुनि के उपदेश ने एक सिंह को महावीर बना दिया। भाषा से परे भाव-भासना तक पहुँचने वाले अनेकानेक श्रोताओं को इस उपदेश से बड़ा लाभ हुआ।

महाराज की साधना भी आत्म-लाभार्थ शिखर की ओर थी। महाराज की इस साधना और तपस्या के प्रभाव से अनवरत चमत्कार होते रहते थे किन्तु महाराज उससे निरपेक्ष ही रहते थे। सल्लेखना का 28 वां दिन था, शरीर

की स्थिति अत्यंत क्षीण थी किन्तु विशिष्ट लोगों ने निवेदन किया ''एक व्यथित परिवार आपके दर्शन चाहता है।''

''भगवन एक दिन मेरी स्त्री ने कहा कि कोई उसे जला रहा है। मुझे हंसी आ गई क्योंकि वहाँ दो के अतिरिक्त कोई तीसरा था ही नहीं, फिर भी कौतुकवश मैंने उन स्थानों को देखा तो वहां दाहजन्य फफोले पड़े हुए थे।'' महाराज के निकट आते ही परिवार के मुखिया ने बिना औपचारिकता के सीधे-सीधे अपनी व्यथा प्रकट कर दी।

महाराज ने बड़ी कठिनाई से पलकों को उठाकर उस दु:खी जीव को देखा। उस बंधु ने आगे बतलाया कि ''एक दिन मेरी पत्नी अचानक चिल्लाने लगी। मैंने पूछा क्या हुआ तो वह बोली कोई मेरी पीठ पर लाठियों से प्रहार कर रहा था। जब मैंने उसके पृष्ठ भाग को देखा तो सचमुच पीठ नीली पड़ गई थी, उसमें सूजन भी बहुत थी।''

महाराज ने उठने का संकेत किया तो निकट खड़े जैन मित्र के संपादक रहे कापडिया जी के अनुज ने उन्हें सहारा दिया। हालांकि सत्य तो यह है कि ऐसे महामुनियों को कौन सहारा दे सकता है? सारा संसार ही आप योगियों के सहारे अपना कल्याण कर रहा है।

अब तक वह स्त्री भी कुटिया में आ चुकी थी। उसने बड़ी दीनता-पूर्वक निवेदन किया। ''महाराज मैं बड़े कष्ट में हूँ। भूखी रहते हुए भी भोजन नहीं कर पाती। यदि कोई बलपूर्वक एक ग्रास भी खिला दे तो मूर्छित हो जाती हूँ।''

''अनेक प्रकार की चिकित्सा करते हुए तनिक भी लाभ नहीं मिल पा रहा है महाराज।'' कहते हुए उसका पति रो पड़ा।

महाराज ने बड़ी कठिनाई से पीछी उठाई किन्तु बड़ी सरलता से उनके ऊपर रख दी।

''अच्छा! अब तुमको कष्ट नहीं होगा।'' क्या आपने भी यही सुना स्त्री ने कुटिया से बाहर निकलते हुए अपने पति से पूछा।

उस पुरुष ने कापडिया जी की ओर देखा तो वे सस्नेह बोले ''हाँ हमने

भी यही सुना है।''

उस महिला ने तलहटी में आकर भरपेट भोजन किया। वह अनेक दिनों तक वहां रही, उसके जीवन से कष्ट, दु:ख, पीड़ा जैसे शब्द ही विलुप्त हो गए।

सृष्टि का भी यह शाश्वत नियम है जो वस्तु उत्पन्न होती है, एक दिन वह लुप्त भी होती है। एक दिन आत्मा ने मनुष्य, पर्याय का यह चोला धारण किया था अब वह अत्यंत जीर्ण हो चुका है समाप्ति की ही ओर है। संकेत दिन-प्रतिदिन स्पष्ट होते जा रहे थे। कुलभूषण- देशभूषण भगवंत भी स्वप्न-दर्शन देकर मानो महाराज को ऊपर आने के लिए आमंत्रित कर रहे थे।

महाराज यम सल्लेखना धारणकर पिछले पैंतीस दिनों से निजात्मा में लीन बहिरंग दृश्यों के दृष्टा बने हुए थे। एवं दूसरी ओर एक करवट पर लेटी उस दिव्य आत्मा के दर्शन कर हजारों लोग कृतकृत्य हो रहे थे। नाड़ी-विशारदों को अपना नाड़ी ज्ञान थोथा लगने लगा था किन्तु महाराज का आत्मिक ज्ञान वास्तविक था।

उनका मन सिद्धालय में जाकर अनंत सिद्धों के साथ परमात्म-स्वरूप में निमग्न था अत: उनके चारों ओर अखंड शांति थी। शरीर चेष्टा रहित था। श्वासोच्छवास के गमनागमन से देह में देही की उपस्थिति ध्वनित हो रही थी। तिल के मध्य तेल होता है, ईंधन में अग्नि विद्यमान रहती है, दुग्ध में घृत की उपस्थिति का ज्ञान जैसे पारखी कर लेते हैं वैसे ही समय रहते महाराज ने शरीर के मध्य अपनी अमूर्त आत्मा की आकृति देख ली थी, इसलिए वे पर- समय से अत्यंत पृथकभूत स्व-समय की आराधना में लीन हो गये थे।

महाराज के निश्चेष्ट शरीर को देखकर उपस्थित लोगों को भ्रांतियाँ हो रही थीं अत: मानो उनके भ्रम-निवारण हेतु उनके द्वारा उच्चारित णमोकार को महाराज ने भी अपने होठों से स्पंदित किया। सबके चेहरे खिल उठे। जब महाराज के नेत्र खुले तो ऐसा लगा जैसे कुंथलगिरि पर स्वर्ग उतर आया हो। कैसी तो अलौकिक दृष्टि थी वह। उनकी नेत्र ज्योति से प्रकट हो रहे अद्‌भुत प्रकाश-पुंज, जिसे देखते दर्शकों को अपने नेत्रों पर विश्वास नहीं हो रहा था

किन्तु वह दिव्य आत्मा निज चैतन्य ज्योति में तल्लीन हो रही थी। देखते ही देखते दृष्टा, दृश्य से ओझल हो गया। कुछ क्षण पूर्व जहां स्वर्ग की परिकल्पना साकार हो उठी थी अब वहां गहन सन्नाटा छा गया। देवता के बिना कहीं स्वर्ग होता भी तो नहीं है वे जहां पहुँचते, वहां स्वर्ग बन जाता है। महाराज का साक्षात् स्वर्गारोहण हो चुका था, बहुतों को वे स्वर्ग का मार्ग दिखा चुके थे और स्वयं अपवर्ग के मार्ग पर अग्रसर हैं।

❀❀❀

परिशिष्ट : एक

चारित्र चूड़ामणि आचार्य श्री वीरसागर जी
(चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागर जी (दक्षिण) के प्रथम पट्टाचार्य)

महाराष्ट्र प्रांत के औरंगाबाद शहर के ईर नामक ग्राम में आषाढ़ सुदी पूर्णिमा वि.स. 1933 को आपने जन्म धारण किया। गंगवाल गोत्री आपको हीरालाल नाम दिया, जिसे भविष्य में आपने सार्थक भी कर दिया।

आठ वर्ष की वय में शास्त्रोक्त विधि से आपका उपनयन संस्कार हुआ। अल्प वय से ज्ञान पिपासु आपने अनेक ग्रंथों का अध्ययन करते हुए युवावस्था में पहुँचते ही कचनेर अतिशय क्षेत्र में एक धार्मिक पाठशाला का संचालन प्रारंभ कर दिया। आगे चलकर आपने ज्ञानदान हेतु औरंगाबाद में एक विद्यालय का श्री गणेश भी किया।

अनंतर वैराग्य की दृढ़ता को देखते हुए ऐलक पन्नालाल जी ने आपको आषाढ़ सुदी एकादशी वि सं. 1978 को ब्रह्मचर्य प्रतिमा के व्रत प्रदान कर दिए। नांदगांव निवासी खुशालचंद जी ने भी सच्ची मित्रता निभाते हुए सप्तम प्रतिमा के व्रत अंगीकार कर लिए। तत्पश्चात् आचार्य शांतिसागर जी रूपी महानिधि को पाकर आपका वैराग्य सार्थक हो गया। आचार्य महाराज से आपको कुंभोज में फाल्गुन सुदी सप्तमी के दिन क्षुल्लक दीक्षा प्राप्त हो गई। इस तरह ब्रह्मचारी हीरालाल जी क्षु. वीरसागर जी तथा ब्रह्मचारी खुशालचंद जी क्षु. चन्द्रसागर जी नाम से प्रसिद्ध हो गए।

क्षुल्लक अवस्था के छह माह ही व्यतीत हुए थे कि आपको आचार्य शांतिसागर महाराज के प्रथम मुनि शिष्य बनने का गौरव प्राप्त हो गया। इसी समय मुनि शांतिसागर जी को आचार्य पद से भी सुशोभित किया गया। गुरू आज्ञानुसार धर्म प्रभावना हेतु आप मुनि आदिसागर जी के साथ विहार करते हुए स्वतंत्र रूप से प्रथम चातुर्मास हेतु ईडर (गुजरात) पधारे। तत्पश्चात् आपने राजस्थान के विभिन्न स्थानों पर तप:साधना एवं धर्म प्रभावना की।

आचार्य शान्तिसागर जी ने सल्लेखना काल में मुनि वीरसागर जी को

आचार्य पद की वृहत जिम्मेदारी सौंपी। यद्यपि वे पूर्व में भी आचार्य पद की योग्यता को धारण करते थे पर उन्होंने कभी उसे स्वीकार नहीं किया किन्तु गुरू आज्ञा अनुलंघनीय होती है, यह मानकर उन्होंने आचार्य शान्तिसागर महाराज की समाधि के उपरान्त वि.सं. 2012 को जयपुर में आचार्य महाराज द्वारा भेजे गए पिच्छी, कमण्डल को ग्रहण कर अंततः आचार्यत्व का उत्तरदायित्व स्वीकार कर लिया।

वि.सं. 2014 के खानिया (जयपुर) चातुर्मास में विधिपूर्वक सल्लेखना धारण करते हुए आश्विन मास की अमावस्या को एक धर्मप्रिय, दृढ़धर्मी, गंभीर, शास्त्रज्ञ, विशुद्ध आत्मा ने महाप्रयाण किया।

***

आचार्य श्री शिवसागर जी
(आचार्य श्री शांतिसागर जी परंपरा के द्वितीय पट्टाचार्य)

श्री पार्श्वनाथ विद्यालय अतिशय क्षेत्र कचनेर में आपने प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त की। तीसरी कक्षा तक ही आपका अध्ययन हो पाया कि आपके माता-पिता प्लेग की चपेट में आ गए। आपके बड़े भाई का विवाह हो चुका था किन्तु कुछ समय के उपरांत वह भी स्वर्गवासी हो गए। मात्र 13 वर्ष की अल्प वय में आपके ऊपर गृहस्थी संचालन का भार आ पड़ा जिसका आपने कुशलतापूर्वक निर्वहन करते हुए अपने वैराग्य को दृढ़ किया। आचार्य शांतिसागर जी के प्रथम दर्शन प्राप्त होते ही 28 वर्ष की वय में आपने द्वितीय प्रतिमा के व्रत ग्रहण कर लिए।

आपके वैराग्य भाव दृढ़ से दृढ़तर होते रहे अत: प्रारंभिक शिक्षा गुरू ब्र. हीरालाल जी को मुनि वीरसागर जी के रूप में जब पाया तो मुक्तागिरी में प्रथमत: वि.सं. 1999 में सप्तम प्रतिमा एवं तदोपरांत वि.सं. 2000 में सिद्धवर कूट पर क्षुल्लक दीक्षा प्राप्त कर शिवसागर नाम प्राप्त किया। फिर कुछ वर्ष उपरांत आपको मुनि वीरसागर जी से ही दैगम्बरी दीक्षा प्राप्त हो गई।

आचार्य वीरसागर जी की समाधि के उपरांत आपने वि.सं. 2014 से आचार्यत्व को सुशोभित किया। ग्यारह वर्षीय आचार्य काल में ही आपके द्वारा अनेक भव्य जीवों को मुनि, आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक दीक्षाएँ प्राप्त हुईं तथा सैकड़ों श्रावकों को अनेक विध व्रत प्रतिमा आदि का लाभ हुआ। आपके आचार्य काल का एक महत्वपूर्ण कार्य खानिया तत्व चर्चा है।

श्री शांतिवीरनगर, महावीर जी के पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव हेतु आप पधारे थे। मुनि धर्मसागर जी वहाँ पूर्व से उपस्थित थे। यहाँ आने के कुछ दिन बाद ही आपको ज्वर आया। वि.सं. 2025 फाल्गुन कृष्ण अमावस्या के दिन दोपहर को आत्म साधना पूर्वक ऐसे निष्परिग्रही, निर्मल चित्त धारक, निस्पृही संत ने समाधि मरण को प्राप्त किया।

***

आचार्य श्री धर्मसागर जी
(आचार्य श्री शांतिसागर जी परंपरा के तृतीय पट्टाचार्य)

बूंदी जिला के अंतर्गत गम्भीरा ग्राम में धर्ममय जीवन व्यतीत करने वाले श्रेष्ठी बख्तावरमल जी एवं श्रीमती उमराव बाई ने धर्मनाथ तीर्थंकर के केवलज्ञान कल्याण की तिथि पौष मास पूर्णिमा वि.सं. 1970 को जिस शिशु चिरंजीलाल को जन्म दिया उन्होंने ही भविष्य में आचार्य धर्मसागर इस सार्थक नाम को प्राप्त किया।

अल्पवय में ही माता-पिता की मृत्यु के कारण आजीविका हेतु पुरुषार्थ करना पड़ा। आपने पहिले आ.क. श्री चन्द्रसागर जी से शुद्ध भोजन का नियम लिया फिर उन्हीं से सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण कर लिए। एवं अंतत: 30 वर्ष की उम्र में चैत्र शुक्ला सप्तमी वि.सं. 2001 को क्षुल्लक दीक्षा धारण कर ली। आ.क. चन्द्रसागर जी के समाधिस्थ होने के उपरांत आप आचार्य वीरसागर जी की शरण में आ गए। चूँकि आचार्य वीरसागर जी से आप पूर्व में दो प्रतिमा के व्रत ले चुके थे अत: वे आपके वैराग्य से परिचित थे अत: पहिले ऐलक दीक्षा एवं फिर कार्तिक शुक्ला 14 वि.सं. 2008 को फुलेरा में आपको निर्ग्रंथ दीक्षा प्रदान कर दी।

आचार्य शिवसागर जी के उपरांत आपने पट्टाचार्य पद का उत्तरदायित्व स्वीकार किया। दिल्ली में सम्पन्न हुए महावीर भगवान के 2500 वें निर्वाण महोत्सव पर आप आचार्य विद्यानन्दी के साथ वहाँ उपस्थित रहे। धर्म प्रभावना हेतु आपके द्वारा वहाँ अनेक दीक्षाएँ भी सम्पन्न हुयीं। आपके करमकमलों द्वारा कुल 32 मुनि, 20 आर्यिका, 1 ऐलक, 7 क्षुल्लक एवं 4 क्षुल्लिका दीक्षाएँ हुईं थीं एवं अनेक श्रावकों को 12 व्रतों की अमूल्य निधि प्राप्त हुई थी।

सीकर चातुर्मास के उपरांत आपने अपने शरीर की स्थिति देखकर सल्लेखना का क्रम प्रारंभ कर दिया। दूध एवं जल के अतिरिक्त शेष आहार को त्यागकर आपने काय साधना को गति प्रदान की एवं अंतत: चारों प्रकार

के आहार का भी त्याग कर दिया। 43 वर्षों की कठोर तपस्या के बाद आपने णमोकर की आराधना पूर्वक वैशाख कृष्ण नवमी वि.सं. 2044 मुनिसुव्रतनाथ भगवान के केवलज्ञान के दिवस पर स्वर्ग की ओर प्रयाण कर दिया।

***

आचार्य श्री अजितसागर जी
(आचार्य श्री शान्तिसागर जी परम्परा के चतुर्थ पट्टाचार्य)

विक्रम संवत् 1982 में भोपाल (म. प्र.) के निकट ''आष्टा'' कस्बे से जुड़े भौरां ग्राम में परम पुण्यशाली श्रावक श्री जबरचंद्र पद्मावती पुरवाल के घर माता रूपाबाई की कोख से आपका जन्म हुआ। जन्म के बाद माता पिता ने आपका नाम रखा राजमल।

सत्रह वर्ष की अल्प आयु में ही आचार्य श्री की सत्प्रेरणा से प्रभावित होकर आप संघ में शामिल हो गये और जैनागम का गहन अध्ययन प्रारंभ कर दिया। विक्रम संवत् 2002 में ही आपने झालरापाटन (राजस्थान) में आचार्य श्री वीर सागर जी महाराज से सातवीं प्रतिमा के व्रत अंगीकार कर लिए।

इस पवित्र ब्रह्मचर्यावस्था में आकर आपने अपने अथक श्रम से जिस आगम का ज्ञान प्राप्त किया उससे आपकी समाज के बीच उचित प्रतिष्ठा हुई। सफलता पूर्वक अनेक पंच कल्याणक प्रतिष्ठाओं में व्रत विधान कराने के कारण ''प्रतिष्ठाचार्य'' तथा आत्मकल्याण की ओर प्रवृत्त अनेक श्रावक श्राविकाओं को आगम की उच्च शिक्षा देने के कारण 'महापंडित' तथा अपनी विद्वता पूर्ण प्रवचन लेखन शैली के कारण ''विद्यावारिधि'' के पद से समाज ने आपकी साधना को अलंकृत किया।

सीकर में पूज्य आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज से समस्त अंतरंग और बहिरंग परिग्रह का त्याग करके कार्तिक सुदी चतुर्थी संवत् 2018 की शुभ तिथि व शुभ नक्षत्र में आपने दिगम्बर मुनि दीक्षा धारण कर ली और आपका नाम हुआ मुनिश्री अजितसागर जी।

विद्याव्यसनी मुनिश्री संघ में पठन-पाठन के ही कार्य में संलग्न रहते थे। एक क्षण भी व्यर्थ न गँवाते थे। व्याकरण-जैन न्याय-दर्शन-साहित्य तथा धर्म आदि में निष्णात ''ज्ञानध्यानतपोरक्त:'' साधु थे । विधिवत् शिक्षण के बिना ही अपने श्रम और विलक्षण प्रतिभा से आपने जो ज्ञानार्जन किया उसका फल भी प्राप्त किया था। जिसे देखकर अच्छे-अच्छे विद्वान भी आश्चर्यान्वित

हो नतमस्तक हो जाते थे।

अध्यापन के अतिरिक्त आपकी रुचि दुष्प्राप्त एवं अप्रकाशित प्राचीन ग्रंथों के प्रकाशन की भी रहती थी। वर्षायोग में या विहार मार्ग में जहाँ भी आप जाते थे ग्रंथ भण्डारों का अवलोकन करते और अप्रकाशित रचनाओं का संशोधन कर उन्हें प्रकाशित करने की प्रेरणा देते थे। करीब 4280 श्लोक वाले ''सर्वोपयोगी श्लोक संग्रह'' का प्रकाशन एक महनीय कार्य रहा।

जून 1987 को उदयपुर में विशाल जनसमूह के समक्ष चतुर्विध संघ के सान्निध्य में आ. कल्प श्री श्रुतसागर जी महाराज की अनुमोदना से आपको आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया गया।

3 वर्ष की आचार्यत्व की अवधि में करीब 17 मुमुक्षु जीवों को संसार-सागर से पार कराने वाली दीक्षा प्रदान करने वाले आचार्य श्री का वैशाख शुक्ला पूर्णिमा वि.सं. 2047 को समता से समाधि पूर्वक मरण हुआ।

***

वात्सल्य वारिधि आचार्य श्री वर्धमानसागर जी
(आचार्य श्री शान्तिसागर जी परम्परा के पंचम पट्टाचार्य)

मध्यप्रदेश के खरगोन जिलान्तर्गत सनावद नगर में माँ मनोरमा ने भाद्रपद शुक्ला सप्तमी दिनांक 18-9-1950 को तेरहवीं संतान के रूप में एक पुत्र को जन्म दिया... जिसका नाम रखा गया ''यशवंत''। आपके पिता पोरवाड़ जाति पँचोलिया गोत्री प्रसिद्ध श्रेष्ठी श्री कमलचंद जी थे।

यशवंत एक वर्ष का हुआ तो मामा के यहाँ भेज दिया गया। यशवंत पाँच वर्ष बाद अपने माता-पिता के पास सनावद आया और यहाँ के स्कूल में पढ़ाई शुरू की। स्कूली शिक्षा के साथ जैन पाठशाला में धार्मिक शिक्षा भी होती रही, यशवंत पढ़ाई में अच्छे नंबर लाता जिससे सभी इसकी प्रशंसा करते। इसी बीच यशवंत 10 वर्ष का हुआ तो सिर से माँ का साया उठ गया।

यशवंत शनैः शनैः बड़ा हुआ और वह स्कूली शिक्षा के बाद कॉलेज की शिक्षा ग्रहण करने लगा। इसी बीच यशवंत को आचार्य श्री विमलसागर जी एवं आचार्य श्री महावीरकीर्ति महाराज का आशीर्वाद मिला ''धर्म मार्ग में खूब आगे बढ़ो।'' पश्चात् मुनि श्री धर्मसागर जी सहित दो मुनिराजों का दर्शन हुआ। 1965 में आर्यिका श्री सुपार्श्वमति माताजी का चातुर्मास सनावद में हुआ, उनका भी सान्निध्य मिला इस कारण यशवंत कॉलेज की शिक्षा पर कम और धार्मिक शिक्षा पर ज्यादा ध्यान देने लगा।

1967 में आर्यिका श्री ज्ञानमति माताजी के चातुर्मास का सान्निध्य मिला और यहीं से यशवंत धर्म मार्ग पर चलने को अधीर हो गये। चातुर्मास के पश्चात् माताजी के साथ विहार किया तो मुक्तागिरि पहुँचने पर यशवंत ने 5 वर्ष का ब्रह्मचर्य व्रत एवं शुद्ध भोजन करने का नियम लिया। फिर 1968 में आचार्य श्री शिवसागर जी के संघ में आये। तथा कुछ ही दिनों में आजीवन गृह का त्याग कर दिया। संघ में रहकर ब्र. यशवंत ने ग्रंथों का अध्ययन प्रारंभ किया, कभी आर्यिका श्री ज्ञानमती जी से तो कभी मुनि श्री अजितसागर जी

से। इस प्रकार जिनागम के प्राय: सभी ग्रंथों का गहन अध्ययन किया। आ. श्री शिवसागर जी का संघ जब 1968 में महावीर जी में था तभी ब्र. यशवंत ने आचार्य श्री शिवसागर जी के समक्ष अपनी प्रार्थना रखी।

गुरु आज्ञा मिली कि जाओ पहले श्री सम्मेद शिखर जी की यात्रा करके आओ। जिस दिन यशवंत यात्रा पूर्ण कर पहुँचे ही थे कि उसी दिन दोपहर में 3.30 पर आचार्य श्री शिवसागर जी की समाधि हो गई। पश्चात् संघ के नायक बने आ. श्री धर्मसागर जी। ब्र. यशवंत ने आचार्य श्री धर्मसागर जी से 24-2-1969 को फाल्गुन शु. अष्टमी को मुनि दीक्षा ली, नाम रखा मुनि श्री वर्धमानसागर जी।

महावीर जी से कुछ दिन पश्चात् संघ का विहार हुआ जयपुर के लिए ज्येष्ठ मास में संघ खानिया जी जयपुर पहुँचा। यहाँ पहुँचते ही मुनि वर्धमान सागर जी के नेत्रों की ज्योति चली गयी और 52 घंटों के पश्चात् जिन भक्ति के माध्यम से वापिस आ गयी।

मुनि दीक्षा के पश्चात् 1969 से 1990 तक आचार्य पद के पहले करीब 20 वर्ष मुनि अवस्था में रहकर इस योगी के द्वारा संपूर्ण भारत वर्ष में अद्‌भुत धर्म प्रभावना हुई।

वैशाख शुक्ला पूर्णिमा वि.सं. 2047 को आचार्य श्री अजितसागर जी महाराज का समाधि मरण हुआ उसके पूर्व एक लिखित पत्र आचार्य श्री अजित सागर जी महाराज ने महासभा के अध्यक्ष श्री निर्मल कुमार जी सेठी को सौंप दिया था जिसमें आचार्यपद मुनिश्री वर्धमान सागर जी को देने की बात लिखी थी। सभा में पत्र पढ़ा गया और आषाढ़ शुक्ला 2/ 24 जून सन् 1990 को मुनिश्री वर्धमानसागर जी पारसोला में आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुये।

सन् 1990 से अभी तक का आचार्यत्व का दीर्घकाल आचार्य श्री वर्धमानसागर जी के व्यक्तित्व से व्याप्त है। उनके व्यक्तित्व की अमिट चैतन्य मुद्रा इन वर्षो के कालखण्ड पर अंकित है। धर्म की धुरा वृद्धिंगत हो और अपने मन की आसक्ति भी दूर हो इस कारण संपूर्ण भारत में विहार हुआ।

आकाश में विचरण करने वाले पक्षी के स्वच्छंद विहार की तरह इनका विहार अत्यंत उन्मुक्त एवं अनिर्बंध है। कर्नाटक, महाराष्ट्र, गुजरात, सौराष्ट्र, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, दिल्ली, बंगाल, बिहार, राजस्थान, छत्तीसगढ़,

तमिलनाडु आदि अनेक राज्यों में आचार्य श्री ने संघ सहित हजारों मीलों का विहार करते हुए विस्तृत भारत भूभाग को पवित्र किया और आगे भी करते रहेंगे। गोमटेश्वर बाहुबली भगवान के तीन द्वादश वर्षीय अभिषेक का गरिमामयी कार्यक्रम आपके ही आचार्यत्व में सानंद एवं निर्विघ्न रूप से सम्पन्न हुआ। इसी तरह आपके सान्निध्य में दक्षिण भारत की एक अन्य प्रसिद्ध धर्मनगरी धर्मस्थली में तीन बार महामस्तकाभिषेक कार्यक्रम का आयोजन पूर्ण हुआ। दक्षिणापथ की ही भाँति उत्तरापथ में भी आपश्री की साक्षात् सन्निधि में श्री महावीर जी अतिशय क्षेत्र पर 2022 में भव्य रूप से महामस्तकाभिषेक का आयोजन हुआ।

आचार्यश्री ने अपने इस कालखण्ड में करीब 37 मुनि दीक्षा, 41 आर्यिका, 1 ऐलक, 14 क्षुल्लक, 11 क्षुल्लिका दीक्षाएँ दीं और करीब 67 सल्लेखनायें आपके निर्यापकत्व में हुईं। 55 वर्षायोग लगभग 61 पंचकल्याणक प्रतिष्ठाओं और सैकड़ों विधानों के माध्यम से अपूर्व धर्म प्रभावना हुई।

आचार्य श्री का पद विहार जहाँ हुआ, वे जहाँ-जहाँ गये, जो-जो इनके सान्निध्य में आया उन सबका कल्याण हुआ। परमपूज्य आचार्य श्री शान्तिसागरजी तो स्वयं एक महान रत्नत्रय स्वरूप आदर्श निर्दोष कठोर तपस्विता को धारण करने वाले असाधारण साधु थे... किंतु उनकी परम्परा में जो शिष्य प्रशिष्य हुए वे सभी आज भी गुरु की तरह ही निरपेक्ष-निर्मोह वृत्ति के धारक आदर्श साधु हैं। वर्तमान पट्टाचार्य श्री वर्धमानसागर जी महाराज आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज जैसे ही निर्मोही-निरपेक्ष साधु हैं। इसीलिए आज भारत भूमि की संपूर्ण श्रमण परम्परा में आचार्य श्री वर्धमान सागर जी का नाम विशेष रूप में शोभायमान है।

***

परिशिष्ट : दो

मुनिकुल पितामह

–आचार्य कुंथुसागर

मुनिकुल पितामह, मुनी परम्परा के उन्नायक बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य परम तपस्वी महायोगी महामना आचार्य श्री शांतिसागर जी गुरुदेव जिन्होंने अपने काल में धर्म की सुरक्षा हेतु जिनमंदिरों की पवित्रता बनी रहे इस उद्देश्य से जो क्रांतिकारी महान कार्य किये हैं , वे आज भी समाज के प्रतिष्ठित पदाधिकारीगण तथा श्रावक एवं साधु वर्ग के लिए भी अनुकरणीय हैं।

आप महात्मा के प्रबल पुरुषार्थ के कारण ही आज दिगम्बर जैन संत समूचे भारत में पदविहार कर अपनी त्याग चर्या एवं जिनागम ज्ञान के माध्यम से जिनधर्म की प्रभावना, जिनागम का ज्ञान, एवं धर्म प्रबोधक प्रवचनों से जिनेन्द्र की वाणी को जन-जन तक पहुँचा रहे हैं।

आपके गुणों एवं संयम, तप, त्याग आदि के प्रभाव से आपको सन् 1924 में आचार्य पद प्राप्त हुआ। यह स्थान कर्नाटक का समडोली था। सम्प्रति हम सभी का सौभाग्य है कि हम ऐसे महान संत की आचार्य प्रतिष्ठापना के 100 वर्ष पूर्ण होने के साक्षी बनने जा रहे हैं। आपके उपकारों का स्मरण करने हेतु देशभर में विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन किया जाने वाला है। इस कड़ी में आपके व्यक्तित्व को रूपायित करती हुई एक हृदय को छूने वाली कहानीनुमा पुस्तक प्रकाशित होने जा रही है।

यह एक अच्छा कार्य है। मैं इस कार्य की अनुमोदना करता हूं और इसके आयोजक, संयोजक तथा सभी समाज को आशीर्वाद देता हूं। आप भी आचार्य महाराज जैसे गुणग्राही बनें तथा हर साधु को एक समान मानते हुये सभी की पक्षपात, पंथवाद, मनवाद से रहित हो सेवा भक्ति करें तभी हमारा यह महोत्सव मनाना सार्थक हो सकता है। क्योंकि आज आचार्य महाराज के पावन चरण भले ही हमें प्राप्त न हों पर उनका आचरण सर्वविदित है, उसी आचरण को अपनाकर अपना एवं पर का कल्याण करें।

आशीर्वाद

आचार्य कुंथुसागर

प्रेक्षाकारी महापुरुष

-श्रमणाचार्य विशुद्धसागर जी

महान आचार्यों की दीर्घा में धरती के देवता सिंहवृत्ती के धारक वीरचर्या सम्पन्न, आत्माराधक, दीर्घ-विहारी, नि:संगता के मार्ग-पोषक, मृदुल चर्या शोषक, पग विहारी, आगम संरक्षक, कुशल संघ संचालक, पंथ-सम्प्रदायों से भिन्न जीने वाले, सम्पूर्ण भारत विहारी, घोर उपसर्गों में भी प्रसन्न चित्त से क्षमा धर्म धारक, विषमताओं को समता में संक्रमण करने वाले, सर्व राष्ट्र एवं समाज के हित-प्रेक्षाकारी, प्रज्ञा-संपन्न, निर्मल समाधि साधक, अनशनादि तपों के तपोानिधि आचार्य प्रवर 108 श्री शांतिसागर जी महाराज हुए, जिन्होंने अपने जीवन में संपूर्ण भारत भूमि पर विहार कर वर्द्धमान महावीर की मुद्रा को जयवंत किया है।

जहाँ निर्ग्रन्थों का विहार विरुद्ध हो रहा था, उसे अविरुद्ध किया। आचार्य श्री शांतिसागर जी ने ताम्रपत्रों पर आगम को उत्कीर्ण कराकर श्रुत संरक्षण किया। सल्लेखना समाधि के पूर्व आचार्य पद (स्व पट्ट) अपने योग्य शिष्य वीरसागर जी को विधिवत प्रदान कर, नि:संगता का आदर्श प्रकट किया तथा भेदभाव शून्य श्रमण परम्परा का पक्ष कर एक मात्र जैनत्व पर लक्ष्य कर वात्सल्यपूर्ण मंगल उपदेश प्रदान किया। निर्मल समाधि कर विश्व को चमत्कृत किया। ऐसे महनीय आचार्य प्रवर श्री शांतिसागर जी महाराज के शताब्दी महोत्सव पर त्रय भक्ति पूर्वक प्रणुति, इस भावना के साथ कि मुझ (विशुद्धसागर) अल्पधी की आत्म-साधन समाधि भावना निर्विकल्प हो। आचार्य प्रवर 108 श्री वर्धमान सागर जी के श्री चरणों में नमोऽस्तु ।

"ॐ नम: सिद्धेभ्य:"

इतिशुभम् भूयात। ग्रीष्म वाचना

इचलकरंजी (महाराष्ट्र)

31 मई 2024

आचार्य श्री धर्मसेन महाराज जी

जिनेन्द्र भगवान का सर्वोत्तम धर्म शासन अनादिकाल से चलता आया है। संसारी जीव मोहनीय कर्म के अधीन होकर जन्म-मरण करते हुए भटक रहा है। देशनालब्धि की प्राप्ति कराने के लिए ऐसे महान पुण्यात्मा का जन्म इस धरती पर होता है। ऐसे महान सन्त आचार्य शान्तिसागर जी जन्म लेकर हम सभी संसारी जीवों को देशनालब्धि के कारण बने। दक्षिण देश में मुनियों का अभाव होने से धर्मकार्य बहुत कम था। पच्चीस-पचास साल में एक बार पंचकल्याणक होते थे। दक्षिण से उत्तर तक सभी श्रावक एवं पण्डित वर्ग आगम में पढ़ते थे कि दिगम्बर साधु कैसे होते हैं, लेकिन किसी भी जीवात्मा ने मोह कर्म को तिलांजलि देकर मुनिचर्या करने का पुरुषार्थ नहीं किया। लेकिन जो पुण्यात्मा होते हैं वे पूर्व जन्म का संस्कार लेकर आते हैं।

ऐसे पुण्यात्मा जीव हम सभी संसारी जीवों को देशनालब्धि का कारण बनते हैं। हम सब देखते हैं कि एक पुण्यात्मा कितने-कितने जीवों को संसार से छुटकारा दिलाने के लिए निमित्त बने हैं। आज भारत भूमि पर जितने दिगम्बर साधु दिख रहे हैं वे सब उनकी देन हैं। कितने श्रावक-श्राविका, ब्रह्मचारी, प्रतिमाधारी बन रहे हैं और पुण्य प्राप्त कर रहे हैं।

हम सभी साधु सन्त उनके जैसी साधना में संलग्न रहें, अन्त में सभी भव्यात्मा धर्म साधना प्राप्त करने का पुरुषार्थ करें, यही भावना है।

-आचार्य श्री धर्मसेन महाराज

विष्णु देव साय
मुख्यमंत्री

Vishnu Deo Sai
CHIEF MINISTER

मंत्रालय, महानदी भवन, नवा रायपुर
अटल नगर, रायपुर, 492002, छत्तीसगढ़
फोनः +91 (771) 2221000, 2221001
ई–मेल : cmcg@nic.in

Mantralaya, Mahanadi Bhawan,
Nava Raipur Atal Nagar,
Raipur, 492002, Chhattisgarh
Ph.: +91 (771) 2221000, 2221001
E-mail : cmcg@nic.in

Do. No. ...725...
Date ...05/08/2024...

संदेश

मुझे यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता हुई कि श्री वर्धमानसागर जी महाराज की प्रेरणा से शांतिसागर जी महाराज का आचार्य पद प्रतिष्ठापना शताब्दी समारोह अक्टूबर 2024 से अक्टूबर 2025 तक मनाया जाएगा।

इस पावन अवसर पर साहित्यकार श्री सुनील सांधेलिया जी ने आचार्य शांतिसागर जी महाराज की जीवन गाथा को औपन्यासिक शैली में प्रस्तुत किया है। कठोर साधक के रूप में शांतिसागर जी महाराज ने करीब 10 हजार उपवास किए। उनके जीवन से जुड़े हुए प्रसंग और उनके व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों को जानने और इनसे प्रेरणा लेने के लिए यह जीवन गाथा उपयोगी रहेगी।

आचार्य श्री शांतिसागर महाराज ने अपने वचनों से समाज का जो मार्गदर्शन किया है, उससे आने वाली पीढ़ियों को संस्कार और मार्गदर्शन मिलता रहेगा। समाज में व्याप्त अंधविश्वास को दूर करने में उनकी अहम भूमिका रही है, उनके वचन हम सबका मार्गदर्शन करते रहेंगे।

आचार्य श्री शांतिसागर जी के आचार्यत्व के 100 वर्ष पूर्ण होने पर आचार्य पद प्रतिष्ठापना शताब्दी समारोह के आयोजन एवं उनकी जीवन गाथा के प्रकाशन के लिए मेरी ओर से हार्दिक बधाई और शुभकामनाएं।

(विष्णु देव साय)

प्रति,

श्री प्रदीप कुमार जैन
आचार्य शांतिनगर फाउंडेशन
दैनिक विश्व परिवार भवन
1449 शंकर नगर, सेक्टर–1
रायपुर, छत्तीसगढ़ 492004

Bhupendra Patel
Chief Minister, Gujarat State

दि. २२/०७/२०२४

संदेश

भारत वर्ष संतों, आचार्यों, गुरुजनों, तपस्वीओं आदि की भूमि रही है। हमारे उच्च जीवन मूल्यों को दृढ करने में उनका अमूल्य योगदान रहा है। ऐसे महापुरुषों के आदर-सम्मान की हमारी पावन सभ्यता रही है। अपनी जीवनचर्या से ही इन महापुरुषोंने मानवजात को जीवनयापन की सही राह दिखाई है। हमारे आत्मदर्शी तत्वचिंतन का मर्म जन साधारण तक पहुँचाने में उनकी अहम् भूमिका रही है।

ऐसे ही परम तपस्वी २०वीं शताब्दी के प्रथमाचार्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराजने अपने तप, त्याग और संयमी जीवन से श्रमण परंपरा के मार्ग को प्रशस्त किया है, जो मुमुक्षुओं के लिए कल्याणकारी है। १० हजार से अधिक उपवास, समाज में व्यापक कुरितियों, अंधविश्वास को दूर करने का कार्य, आदि से संस्कृति और राष्ट्र के उन्नयन में आचार्यश्री का सराहनीय योगदान रहा है।

ऐसे परम श्रद्धेय आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज की अक्षुण्ण पंरपरा के पंचम् पट्टाचार्य वात्सल्य वारिधि श्री वर्द्धमानसागर जी महाराज की प्रेरणा से उनका आचार्य पद प्रतिष्ठापना शताब्दी समारोह अक्टूबर २०२४ से अक्टूबर २०२५ के दौरान आंतरराष्ट्रीय स्तर पर मनाया जायेगा यह प्रसन्नता की बात है। समस्त जैन समाज द्वारा इस पावन आयोजन की तैयारिर्यां हो रही है यह आवकार्य है।

आचार्य शांतिसागर जी महाराज के व्यक्तित्व पर उनकी जीवन गाथा को औपन्यासिक शैली में धारा प्रवाह स्वरूप रूप सें प्रस्तुत करने की आचार्य श्री वर्धमानसागर जी महाराज की मंगल कामना के फल स्वरूप आचार्य श्री शांतिसागर जी के आचार्यत्व के १०० वर्ष होने पर आयोजित हो रहे आचार्य पद प्रतिष्ठापना शताब्दी समारोह के पुनीत अवसर पर इस का प्रकाशन हो रहा है, यह प्रशंसनीय है। वरिष्ठ साहित्यकार सुनील सांधेलिया जी ने इसे लिखा है यह खुशी की बात है।

ऐसे नितांत तपस्वी श्री शांतिसागर जी महाराज के आचार्यत्व के १०० वर्ष पूर्ण होने पर आयोजित आचार्य पद प्रतिष्ठापना समारोह एवं उस पर हो रहे प्रकाशन के लिए वंदन सह अंतरतम् शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

आपका,

(भूपेन्द्र पटेल)

To,
Dr. Sunil Jain "Sanchay',
Acharya Shantisagar Foundation,
Nr. Gnan-Kusum National Convent School,
874/1, Gandhinagar, Naibasti Lalitpur-284403, Uttar Pradesh.
Email:- suneelsanchay@gmail.com
Mo. 9793821108
Apro/ug /2024/07/22/hv

Chief Minister's Office (ISO 9001:2015 Certified)
3rd floor, Swarnim Sankul-1, Sachivalaya, Gandhinagar - 382 010. GUJARAT, INDIA
Phone : +91 - 79 - 23250073-74, Fax : +91 - 79 - 23222101 www.gujaratindia.com

नायब सिंह
NAYAB SINGH

मुख्य मन्त्री, हरियाणा,
चण्डीगढ़।
CHIEF MINISTER, HARYANA,
CHANDIGARH

Dated 26-07-2024

संदेश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आचार्य शांतिसागर फॉउडेशन द्वारा आचार्य श्री शांतिसागर जी महामुनिराज का आचार्य पद प्रतिष्ठापना शताब्दी समारोह अक्तूबर, 2024 से अक्तूबर, 2025 तक अंतरर्राष्ट्रीय स्तर पर मनाया जा रहा है तथा इस अवसर पर एक ग्रंथ का प्रकाशन भी किया जा रहा है।

भारत प्राचीन काल से ही ऋषि–मुनियों व संत महात्माओं की धरा रही है। इतिहास इस बात का गवाह है कि हमारे समाज के विकास और उत्थान में आध्यात्मिक संतों का विशेष योगदान रहा है। उनके दिव्य संदेशों ने समस्त मानव जाति को नई स्फूर्ति एवं प्रेरणा दी है और पथ–प्रदर्शक की भूमिका निभाई है।

आचार्य श्री शांतिसागर जी एक महान जैन संत, सच्चे साधक और सरलता, निष्कपटता व करूणा की प्रतिमूर्ति थे। उन्होंने समाज में व्याप्त कुरीतियों, अंधविश्वास को दूर करने में प्रमुख भूमिका निभाई। आचार्य श्री शांतिसागर जी जैसे संत–मुनियों द्वारा स्थापित नैतिक मूल्यों का पालन और उनके बताए रास्ते पर चलकर मानव कुन्दन बनता है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि उनके जीवन पर लिखा जा रहा यह ग्रंथ युवाओं के लिए एक प्रेरणादायक ग्रंथ होगा।

मैं ग्रंथ के सफल प्रकाशन के लिए अपनी शुभकामनाएं प्रेषित करता हूँ।

(नायब सिंह)

आनंदीबेन पटेल
राज्यपाल, उत्तर प्रदेश

सत्यमेव जयते

राज भवन
लखनऊ - 226 027

12, जुलाई 2024

सन्देश

मुझे यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता हो रही है कि दिगम्बर जैन परंपरा के आचार्य श्री शांतिसागर जी के आचार्यत्व के 100 वर्ष पूर्ण होने पर आचार्य पद प्रतिष्ठापना शताब्दी समारोह का आयोजन किया जा रहा है। इस अवसर पर आचार्य जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर आधारित साहित्य का भी प्रकाशन किया जा रहा है।

भारत वर्ष की संस्कृति त्याग, तप, साधना, एवं संयम की संस्कृति मानी जाती है। आचार्य श्री शांतिसागर जी ने दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति को आगे बढ़ाते हुए समाज एवं संस्कृति के उन्नयन में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। मै आशा करती हूँ कि आचार्य जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर आधारित प्रकाश्य साहित्य जनोपयोगी सिद्ध होगा।

मैं आचार्यत्व के 100 वर्ष पूर्ण होने पर प्रकाशित होने वाले साहित्य के सफल प्रकाशन हेतु हार्दिक शुभकामनाएं प्रेषित करती हूँ।

आनंदीबेन
(आनंदीबेन पटेल)

कलराज मिश्र
राज्यपाल, राजस्थान

सत्यमेव जयते

Kalraj Mishra
Governor, Rajasthan

संदेश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि आचार्य शांतिसागर फाउण्डेशन, बैंगलुरू द्वारा चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी महामुनिराज का आचार्य पद प्रतिष्ठापना स्थापना दिवस अक्टूबर, 2024 से अक्टूबर, 2025 तक अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर मनाया जाएगा।

संत–महात्मा भारत वर्ष की अमूल्य निधि है। उनका आशीर्वाद सदा जीवन को संपन्न करता है। इस आलोक में आचार्यश्री के पद–स्थापना वर्ष के आयोजन के बारे में आपके स्तर पर जानना सुखद है।

मेरी मंगलकामनाएं हैं।

कलराज मिश्र
(कलराज मिश्र)

राज भवन, सिविल लाइन्स, जयपुर–302006
Raj Bhawan, Civil Lines, Jaipur-302006
दूरभाष : 0141–2228716–19, 2228611–12, 2228722

रमेन डेका
Ramen Deka

राजभवन, रायपुर
Rajbhavan, Raipur

सत्यमेव जयते

राज्यपाल, छत्तीसगढ़
Governor, Chhattisgarh

क्र./98 /पीआरओ/रास/2024
रायपुर, दिनांक 02 सितंबर 2024

–: संदेश :–

मुझे यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता हुई कि आचार्य शांतिसागर फाउंडेशन द्वारा आचार्य श्री शांतिसागर जी के आचार्य पद प्रतिष्ठापना शताब्दी समारोह के पावन अवसर पर उनकी जीवन गाथा प्रकाशित की जा रही है।

आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज ने अपने तप–त्याग और संयम पालन द्वारा मुनिचर्या का उत्तम मार्ग दिखाया। वे श्रमण संस्कृति के दैदीप्यमान नक्षत्र थे। उन्होंने अपना जीवन कठोर साधक के रूप में जीया और समाज में व्यापत कुरीतियों, अंधविश्वास को दूर करने में अपनी प्रमुख भूमिका का निर्वाह किया।

मुझे आशा है कि ऐसे युग पुरूष की जीवन गाथा के प्रकाशन से समाज को एक नई प्रेरणा मिलेगी।

पुस्तक प्रकाशन के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएं।

रमेन डेका

(रमेन डेका)

संदर्भ ग्रंथ

(1) चारित्र चक्रवर्ती — पं. सुमेरचंद्र दिवाकर

(2) आध्यात्मिक ज्योति — पं. सुमेरचंद्र दिवाकर

(3) आचार्य श्री शांतिसागर चरित्रम् — आ. श्री कुंथुसागर जी

(4) शांतिसागर चरित्र — पं. वंशीधर जी

(5) आचार्य शांतिसागर मुनि दीक्षा शताब्दी वर्ष 2019-2020 — आर्यिका विशुद्धमति माताजी

(6) श्री सिद्धसागर चरित्र — मधुकर गुंडप्पा

(7) परम पुरुष सिद्धप्पा — श्रीपाल शिवलाल शहा

(8) अजितमती साधना स्मृतिग्रंथ — बा. ब्र. रेवती दोशी

(9) आचार्य श्री शांतिसागर जी प्रश्नोत्तरी — ऐलक विज्ञान सागर जी

(10) जैन बोधक — आ. शांतिसागर विशेषांक 1951

(11) शांति सिंधु विशेषांक — 16 जुलाई वी.सं. 2463

(12) जैन मित्र — आ. शांतिसागर स्मारक विशेषांक 1957

(13) जैन गजट — आ. शांतिसागर विशेषांक

(14) संजद शब्दाची चर्चा (मराठी)

(15) स्वर्ग के सोपानों पर — श्री सोमसुन्दरम

(16) आचार्य शांतिसागर जी और भट्टारक परंपरा — नीरज जैन

(17) मेरी स्मृतियाँ — गणिनी आर्यिका श्री ज्ञानमति माता जी

(18) आचार्य श्री वीरसागर स्मृति ग्रन्थ

(19) अध्यात्म अमृत कलश-आचार्य श्री अमृतचंद्र स्वामी